श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

आत्मपरिचयन

प्रवक्ता:

अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:

खेमचन्द जैन सर्राफ,
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें।

प्रथम संस्करण १०००] सन् १९७५ [मूल्य ६) रु०

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी, सदर मेरठ
(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ
(३) श्रीमान् लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ, सहारनपुर

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभावों की नामावली—

१	श्रीमान् सेठ भंवरीलाल जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
२	,, वर्णीसंघ ज्ञानप्रभावना समिति, कार्यालय,	कानपुर
३	,, कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	,, सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	श्रीमती सोवती देवी जी जैन	गिरिडीह
६	श्रीमान् मित्रसैन नाहरसिंहजी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	,, प्रेमचन्द ओमप्रकाश, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	,, सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	,, दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	,, बारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	,, बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	ज्वालापुर
१२	,, केवलराम उग्रसैन जी जैन,	जगाधरी
१३	,, सेठ गैंदामल दगडूशाह जी जैन,	सनावद
१४	,, मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी,	मुजफ्फरनगर
१५	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६	श्रीमान् जयकुमार वीरसैन जी जैन,	सदर मेरठ
१७	,, मन्त्री, जैन समाज,	खण्डवा
१८	,, बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन,	तिस्सा
१९	,, विशालचन्द जी जैन रईस,	सहारनपुर
२०	,, बा० हरीचन्दजी ज्योतिप्रसाद जी जैन, ओवरसियर,	इटावा
२१	श्रीमती सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जैनसंघी,	जयपुर
२२	,, मंत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	श्रीमान् सेठ सगनूमल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
	,, बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी जैन,	,,
	,, बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	,,

२६	श्रीमान् सेठ फूलचन्द बजनाथ जी जैन, नई मण्डी,	मुजफ्फरनगर
२७	„ मुख्तारसिंह हुकमचन्द जी सर्राफ,	बड़ौत
२८	„ गोकुलचद हुकमचद जी गोधा,	लालगोला
२९	„ दीपचद जी जैन रिटायर्ड सुपरिटेंडेंट इंजीनियर,	कानपुर
३०	„ मन्त्री, दि० जैनसमाज, नाई की मंडी,	आगरा
३१	श्रीमती सचालिका, दि० जैन महिलासमाज नमक की मंडी	„
३२	श्रीमान् नेमिचन्द जी जैन, रुड़की प्रेस,	रुड़की
३३	„ मक्खनलाल शिवप्रसाद जी जैन, चिलकाना वाले,	सहारनपुर
३४	„ रोशनलाल के० सी० जैन,	„
३५	„ मोल्हड़मल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	„
३६	„ बनवारीलाल निरजनलाल जी जैन,	शिमला
३७	„ सेठ शीतलप्रसाद जी जैन,	सदर मेरठ
३८	दिगम्बर जैनसमाज „	गोटे गाँव
३९	श्रीमती माता जी धनवती देवी जैन, राजागंज,	इटावा
४०	श्रीमान् ब्र० मुख्त्यारसिंह जी जैन, "नित्यानन्द"	रुड़की
४१	„ लाला महेन्द्रकुमार जी जैन,	चिलकाना
४२	„ लाला आदीश्वरप्रसाद राकेशकुमार जैन,	„
४३	„ हुकमचद मोतीचद जैन,	सुलतानपुर
४४	„ ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन,	सदर मेरठ
४५	„ इन्द्रजीत जी जैन, वकील, स्वरूपनगर,	कानपुर
४६	श्रीमती कैलाशवती जैन, ध० प० चौ० जयप्रसाद जी,	सुलतानपुर
४७	श्रीमान् * गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, बजाज,	गया
४८	„ * बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबड़ा,	झूमरीतिलैया
४९	„ * सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बड़जात्या,	जयपुर
५०	„ * बा० दयाराम जी जैन आर. एस डी ओ	सदर मेरठ
५१	„ × जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	सहारनपुर
५२	„ × जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला

नोट —जिन नामोंके पहले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये हैं, शेष आने हैं तथा जिन नामोंके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, सभी बाकी है।

आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह रागवितान।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

सुख दुख दाता कोइ न आन, मोह राग दुख की खान।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ॥५॥

०O०

[धर्मप्रेमी बंधुओ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है। आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बंधुओं द्वारा।



आत्मपरिचयन

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

हम स्वयं ही आनन्दमग्न हैं, किन्तु अपने उस स्वभावका विश्वास न रखकर बाह्य पदार्थोंमें आनन्द हो या आनन्दमें बाधा होती है—ऐसी एक दृष्टि हो गई है। इस दृष्टिमें वह अपने आनन्दको खोता है। वह स्वयं आनन्दमयस्वभावकी निधि है। आनन्द कहीं बाहरसे नहीं आता है। स्वयं यह आत्मा ज्ञानमय है। ज्ञान किसीसे लेना नहीं है। इसी प्रकार यह आत्मा आनन्दमय है। कभी भी दूसरी जगहसे इसमें आनन्द लाया नहीं जाता है। यह खुद आनन्दस्वरूप है और इसी कारण किसीने इसे आनन्दमय ब्रह्म कहा है अर्थात् ब्रह्मका स्वरूप है आनन्दमय और इसीको किसीने ज्ञानका स्वरूप कहा है और किसीने इसे सत्का स्वरूप कहा है। इस तरहसे पृथक् पृथक् कहा है, किन्तु स्याद्वाददृष्टिने इसे सत्चिदानन्द बतलाया है। यह आत्मा अपने स्वभावमें केवल स्वभाव वाला है। अतः इसे कोई ब्रह्म कहते हैं और कोई आनन्दकी प्राप्ति कहते हैं, किन्तु वह तो सत्स्वरूप भी है, चित्स्वरूप भी है, आनन्दमय भी है, अतः उसे सच्चिदानन्दमय कहा है। जहां आनन्दका स्वरूप, चित्का स्वरूप पूर्ण विकसित है उसीका नाम परमात्मा है। प्रत्येक जीवका स्वरूपसे देखो कि ऐसे हैं कि नहीं। वह ऐसे ही है। इन जीवोंमें चैतन्य भी है, क्योंकि अगर चैतन्य नहीं होता तो ज्ञान और समझ इन जीवोंमें कहांसे आती? और आनन्द है कि नहीं? आनन्द भी है। यदि आनन्द न होता तो जीवोंमें आनन्द आता कहांसे? इस तरह यह सच्चिदानन्दमय आत्मा है। मतलब यह है कि जैसा यह स्वयं है अद्वैत वैसा ही अनुभव करना चाहिये। परपदार्थ भी अद्वैत है। किसीमें कोई दूसरा मिला नहीं है। दूध और पानी मिला हो फिर भी दूधमें दूध ही है और पानीमें पानी ही है। दूधमें पानी नहीं गया और पानीमें दूध नहीं गया। और यहां तक कि दूधके जितने परमाणु हैं वे सब पृथक् पृथक् उसी दूधमें हैं और पानीके परमाणु पानीमें पृथक् हैं, वे स्वयं सत् हैं। यही बात है कि एकसे दूसरेमें परमाणु नहीं आते। प्रत्येक पदार्थ अपनी अपनी सत्ता लिए हुए है, प्रत्येक पदार्थ अद्वैत है।

अद्वैत कहते उसे है जो दूसरेसे न लगा हो। जो दो चीजोंसे मिलता है उसे द्वैत कहते हैं और जो दूसरेसे नहीं मिला है, शुद्ध वस्तु अपने आप एक ही है उसे अद्वैत कहते हैं। जगतके सब पदार्थ शुद्ध वस्तु अपने आपमें अपनी सत्ता लिए हुए हैं। इस तरह सभी अद्वैत हैं। सब पदार्थोंको अद्वैत निरखना है। प्रत्येक पदार्थ अपनेमें एक ही है इसमें दूसरेका प्रवेश नहीं है। इसलिए सबको अद्वैत निरखना और इसी प्रकार अपने आपमें भी अद्वैतका अनुभव करना बस इसीके मायने सिद्धि है। और इसका अनुभव करना कि यह मेरा भया है यह तो मेरा बच्चा है, यह तो मेरा घर द्वार है यह मेरा क्षेत्र है, यह मेरा शरीर है मैं दुखी हूं इस प्रकार द्वैतका अनुभव करना इसीको असिद्धि कहते हैं। इसीके मायने संसार है। पदार्थ जैसा है वैसा न अनुभव करना वैसा न मानना बस इसीका नाम है जन्मजालका रुलना। जो अपनेको नाना वेशोंरूप ही अनुभवता है उसे शान्ति नहीं मिलती है, क्योंकि नानारूप इसके बन गए, सो एक तो ये सब पराये और फिर हैं नाना, सो उनकी संभाल कैसे हो? मुक्तिका रास्ता और कोई दूसरा नहीं है। यही अपने आपको जैसा शुद्ध, अकेला स्वरूप है वैसा मान जाना, बस यही मोक्षका रास्ता है मुक्तिका पथ यही है। अभी धर्मपालनके लिए बहुत बहुत काम किए जाते हैं, करें तो, किन्तु अपने आपके इस अद्वैत स्वरूपका अनुभव नहीं है तो धर्मपालन नहीं हुआ, शान्तिका मार्ग नहीं मिला, मोक्षका मार्ग नहीं पाया। धर्म एक ही होता है, धर्म पचासों नहीं होते। दुनियामें ये जो मजहब हैं वे तो मत हैं धर्म नहीं है। आज जो दुनियामें प्रसिद्ध है, यह अमुक सम्प्रदाय है, यह अमुक मजहब है वे सब मत कहलाते हैं धर्म नहीं होते है। मत अनेक होते हैं, पर धर्म अनेक नहीं होते।

धर्म अनेक हो ही नहीं सकते हैं। अब हम धर्मपालन करना है या मत पालन करना है। अगर मत पालन करना है तो मतपालन किया जाय और यदि धर्म पालन करना है तो धर्म पालन किया जाय। धर्म है वस्तुका स्वरूप, वस्तुका अनुभव। यह मैं आत्मा कैसा हूं, क्या हूं, किस स्वभाव वाला हूं? जैसा हूं तैसा ही मानना इसीके मायने है धर्मका पालन। जैसे जातियां अनेक हो गईं—हिन्दू मुसलमान, ईसाई आदि। इन सबके रहन सहन प्रकार अनेक हो गए, बुद्धि अनेक हो गई। एकसा ही उन मनुष्योंका जन्म हुआ। एकसा ही उनका मरण होता है। इसी तरह इन सब लोगोंने अपने अपने मतको बदल दिया है, पर ये हैं सब एक किस्मके आत्मतत्त्व। जैसे उन सबने अपने अपने मत बदल दिए हैं पर स्वरूप को तो नहीं बदल पाया है। उन्होंने अपना आकार तो नहीं बदल लिया है।

ऊपरकी चीजोंका फर्क बना लिया है कि कोई चोटी रखाता है, कोई नहीं रखाता है। यह सब कुछ हो जाता है, पर उनका स्वरूप नहीं बदल जाता है। जैसे मनुष्यका स्वरूप

नहीं बदलता है, इसी तरह चाहे जितनी ही कल्पनाएँ आ जावें चाहे जितने ही मत बन जावें उनकी आत्माका स्वरूप नहीं बदलेगा। उसकी आत्माका एक ही स्वरूप है, एक ही स्वभाव है। कोई ऐसे भी जीव है जिनका यह मत है कि आत्मा परमात्मा कुछ नहीं है आत्माका अस्तित्व कुछ नहीं है। वे आत्माको मना कर रहे हैं, आत्माका विरोध कर रहे हैं। आत्मा ही आत्माका निषेध कर रहे हैं सो निषेध करनेसे सत् तो नहीं मिट गया। वस आत्माकी अन्यरूपसे कल्पनाएँ कर लें तो कल्पनाएँ कर लेनेसे आत्मामें वह कुछ नहीं हो जायगा। आत्मा वही है। जैसे रस्सीको देखकर भ्रम हो जाय कि यह सर्प है तो भ्रम हो जानेसे कहीं रस्सीकी डोर सर्प नहीं बन जावेगी। वह तो रस्सी ही रहेगी। हम जितनी ही चीजोंके बारे में कितनी ही कल्पनाएँ कर डालते हैं परन्तु इतनी कल्पनाएँ कर लेनेसे ही वह चीज वैसी नहीं हो जाती। वह तो सत्तासे स्वतः सिद्ध जैसी है वैसी ही है, हम इस आत्माके बारेमें कितनी ही कल्पनाएँ कर लें, तो कल्पनाके अनुसार हम नाना नहीं बन जावेंगे। हमारा तो एक स्वरूप है जो अनादिसे है व अनन्त काल तक रहेगा। यह निगोद कीड़ा जैसी पर्यायोंमें भी पहुंचा है, इस आत्माका प्रदेश आकार भी बदला बदल गया है, फिर भी निगोद जैसी निम्न अवस्थाओंमें भी इस आत्माका स्वरूप वही एक रहा है, वह नहीं बदल गया। उसका जो स्वत्व है सोई है, वह नहीं बदला। ऐसी आत्माका वह अद्वैत स्वरूप जिनके ज्ञानमें आया है, जिसने द्वैतका अनुभव किया है उनको प्रसिद्धि होती है।

इस एकको जिसने चाहा है उसको सवस्व मिला है और उस एकको छोड़कर जिसने नाना पदार्थोंमें चित्त लगाया है उनको कुछ नहीं मिला है। एक ऐसा कथानक है कि एक बार एक राजा किसी दूसरे राजासे लड़ाई करने गया। दो एक माह तक युद्ध होता रहा उसमें उस राजाकी विजय हो गई। इसके बाद वहाँपर राजाने बड़ा उत्सव मनाया और खुशीमें देशकी सब रानियोंको पत्र लिखा कि जिसको जो कुछ चाहिए हमारेको पत्र लिखें। तब किसी रानीने साड़ी लिखा, किसीने जेवर लिखा, किसीने अमुक खिलौनेको लिखा, किसीने कुछ लिखा, किसीने कुछ लिखा। जो सबसे छोटी रानी थी उसने अपने पत्रमें लिख दिया केवल १ एकका अंक और कुछ नहीं लिखा। पत्रको लिफाफेमें भरकर भेज दिया। जब राजाने पत्रोंको खोला तो किसीमें कुछ लिखा था, किसीमें कुछ। मगर छोटी रानीके पत्रमें केवल १ का अंक लिखा था। राजा इस केवल १ का अर्थ न समझ सका। उसको समझमें उस वक्त १ का मतलब न आया। उस राजाने मन्त्रीसे पूछा कि इस छोटी रानीने क्या मंगाया है? मन्त्री पत्रको देखकर कहता है कि छोटी रानीने केवल एक आपको ही चाहा है और कुछ नहीं चाहा है। राजा सभी रानियोंको किसीको साड़ी, किसीको गहना, किसीको खिलौने लेकर अपने देश जाता है। जब वह वहां पहुंचता है तो जहाँ जो कुछ देना था उनके

घर पहुंचा दिया और छोटी रानीके महलमें स्वयं पहुंच गए। उसने केवल राजाको चाहा था पर अब यह बतलाओ कि राजाकी सारी चीजें, सारा वैभव, हाथी, सेना, शासन, इज्जत इत्यादि सब कुछ उसके महलमें पहुंच गए या नहीं। इस जगतमें जितनी भी व्यवस्थाएँ चल रही है वह सब चैतन्य ज्योतिका ही तो प्रसार है। एक चैतन्य ज्योतिको जिसने चाह लिया, एक अद्वैत स्वभावको जिसने चाह लिया उसको सर्वसिद्धि है।

प्रियतम आत्मन्! इस आत्मानुभवकी ओर आवो, बाहरकी ओर दृष्टि कम करके अपनी प्रकृति, रहन सहनको सात्त्विक बनावो और मुख्य प्रयोजन जो आत्मसिद्धिका है उसे करो। बनावट, दिखावट, सजावट न करके मर्ममें दृष्टि दो तो बस यही धर्मका पालन है। शांति भी इसी उपायसे प्राप्त होगी, मोक्षमार्ग भी इसी उपायसे मिलेगा। दर दर पदार्थोंमें भटकना, नाना प्रकारकी कल्पनाएँ करके उपयोगको बाहर फसाना, यह सब अशांतिके साधन है, अधर्मका पालन है, धर्मकी उपेक्षा है। अपने इन २४ घंटोंमें जब कि प्रायः सारा समय दुरुपयोगमें जाता है, मोह, राग, द्वेषोंमें जाता है, नाना कल्पनाओंके विकल्पमें जाता है। भाई! १५ मिनटका संकल्प करके, सत्यका आग्रह करके, असत्यका असहयोग करके अपने आपकी भी व्यवस्था बना लो। एक आध मिनट लगानेमें कुछ बिगड नहीं जायगा। एक अमूल्य तत्त्वकी प्राप्ति होगी। अद्वैतका ही अनुभव हो, उसे ही सिद्धि कहते हैं। जगतके जीव अहंकार भरे हुए है। मैं परिवार वाला हूं, धन वाला हूं, इज्जत वाला हूं, यह मैं अमुक हूं, उत्तम हूं, शुद्ध हूं। नाना प्रकारकी कल्पनाएँ लिए हुए यह प्राणी विचर रहे हैं। अरे तू तो वह स्वरूप है जिसका स्वरूप सबमें एक है। यदि मैंने अपने ही स्वरूपको माना तो धर्मका पालन किया और यदि अपने अद्वैत स्वरूपको छोडकर यदि नाना रूपोंमें माना तो अभी धर्मसे बाहर है। अपने धर्मसे अर्थात् अपने आत्मस्वभावसे स्नेह करो। जगतमें कहाँ भटक रहे हो? शरण कहीं नहीं मिलेगी, हर एकसे धोखा मिलेगा, हर एकसे बहकावा मिलेगा शरण कहीं नहीं मिलेगी। शरण तुझे अपने आपमें बसे हुए उस सहज परमात्मतत्त्वकी शरण लेना है। यही मुक्तिका मार्ग है। दूसरा कोई मुक्तिका मार्ग नहीं है। जैसे कहते हैं—"सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्राणि मोक्षमार्गः।" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, चारित्रकी एकता ही मोक्षका मार्ग है। जहाँ दर्शन, ज्ञान, चारित्रमें विकल्प भी नहीं उठते इसका एकरस उपयोग हो जाता वही एक मोक्षका मार्ग है जो कि सर्वसिद्धि है। जो इस आत्माके सहज चैतन्यस्वरूपकी श्रद्धा पा लेगा, वह ही अपने स्वरूपमें रम जायगा। ऐसी स्वाधीन शाश्वत सत्यकी श्रद्धा बिना मोक्षका मार्ग नहीं मिलता, किसी बहकावे व किसी जाल बच्चोंकी उलझनमें पडकर शांति नहीं मिलेगी और आगका रास्ता भी बंद हो जायगा। बाहरी चीजोंमें पडकर इस आत्माका हित कुछ नहीं है। हित तो यह स्वरूप है यह तो धर्मकी साक्षात् मूर्ति है।

यह चैतन्यस्वरूप ही आत्मा धर्मकी मूर्ति है वह भगवान स्वरूप है, वही कल्याण है। मैं इस एकको छोड दू तो संसारमें भटकते हुए कुछ पता भी नही लगेगा। कितनी योनियां है, कितने शरीरके कुल हैं, कितने जगतमें जीवोंके स्थान है, किस स्थानमें, कितनी बार वहां जन्म लूगा ? कितने कितने शरीरोमें कितने बार जन्म लेते रहेंगे—कुछ पता तक भी न रहेगा। अभी मनुष्य है ज्ञान साफ है, स्वाधीन हैं हम दूसरोकी बात समझ लेते हैं, दूसरोको अपनी बात समझा देते हैं। पशु पक्षियोंको देखो ऐसा जन्म हो तो क्या पल्ले पडेगा ? इनके अक्षरमय भाषा नही है। दूसरोकी बात वह दूसरोमें क्या कहेंगे ? उनमें धर्मकी चर्चा क्या होगी। कीडे मकौडे बहुतसे जीव हैं, पर वे क्या कर सकते हैं ? उन जीवोंके मुकाबलेमें देखें तो हमारी अब कितनी उच्च अवस्था है ? हम और आप सम्यक्दर्शनके पात्र हैं, सम्यग्ज्ञानके पात्र है और सम्यक्चारित्रके पात्र है। अपनेमें पुरुषार्थ करनेकी योग्यता है हम कुछ अपना हित बाहर कहीं नही निरखना चाहिए। घर-द्वार, धन वैभव इत्यादिमें ज्यादा दृष्टि नही रखनी चाहिए। यद्यपि इस गृहस्थावस्थामें सबका प्राय यह निर्णय रहता है कि इनके बिना गुजर चल ही नही सकता है। परन्तु जब यह घर द्वार धन वैभव छूट जावेंगे तो क्या इसके बिना गुजारा चलेगा नही ? चलेगा। धन वैभवके बिना, घर द्वारके बिना आत्माका गुजारा चल जायगा, पर सम्यक्ज्ञान बिना आत्माका गुजारा नहीं चलेगा। इस अपने सम्यग्ज्ञानको छोडकर यदि परपदार्थोंको महत्त्व देगा तो अशान्ति, कर्मोपासना तथा कर्म बन्धना ही रहेगी और यदि अपने इस शुद्ध स्वरूपको महत्त्व देगा वही रमेगा वही पहचानेगा वही झुकेगा तो उसके बन्धन कटेंगे, शान्तिका मार्ग मिलेगा और भविष्यमें इसको जब तक ससार है उत्तम उत्तम भव समागम मिलेगा और निकट समयमें मुक्ति प्राप्त होगी। इसलिए अपने आपका सम्यग्ज्ञान करो, प्रमादी मत हो। इस अपने स्वरूपको देखकर प्रसन्न रहो। यह मेरा शाश्वत ज्ञानदर्शन चैतन्यस्वरूप है सदा सबसे अलग है यह सब अहंकारोंसे दूर है मैं अपने स्वरूपमें हू। एक अपने आपमें सही स्वरूपका पता लग जाय तो इससे बढकर कुछ जगतमें नही है। इस तरह अपने अद्वैतका अनुभव करो। यही मोक्षका मार्ग है और ऐसा ही अद्वैत सब पदार्थोंमें है। उन सबमें भी उनके अद्वैत स्वरूपका बोध करें। इसीका नाम ही सिद्धि है। आत्माके ध्यानमें, चितनमें, मननमें, अध्ययनमें, अनुभवमें अधिकसे अधिक पुरुषार्थी बनकर अपने जीवनको सफल बनावें।

आत्माके शुद्ध स्वरूपको आत्माका एकत्व कहते है अर्थात् जो आत्माका अपने आप अपनी सत्ताके कारण जो कुछ सर्वस्व है वह आत्माका एकत्व है। इस एकत्वमें दृष्टि जाना यही मगल है, इस एकत्वमें दृष्टि जाना यही सर्वोत्तम है और इस एकत्वमें दृष्टि जाना यही शरण है। आत्माके केवल स्वरूपकी निगाह होना यही रक्षाका सबसे बडा दृढ किला है। जैसे

जड़ मजबूत किलेके भीतर राजा लोग अपनको सुरक्षित अनुभव करते है, इसी प्रकार इस निज सहज स्वरूपमे ही यह मै हू ऐसा अनुभव करने वाला ज्ञानी अपनेको सुरक्षित अनुभव करता है। जब इस दृष्टिसे जावेगा तब इस नाना विकल्प जाल और उसकी रक्षा करने वाला कोई नही होगा। उसको सुख शांति और आराम मिलनेका साधन व मार्ग नही मिलेगा। इसी इस एकत्वका शरण न कर बिना ही इतना बड़ा जगजाल बिछाया, इससे सैकडो आपदाए घिर गई। परन्तु जो आत्मा अपने इस स्वरूपके किलेमे प्रवेश करके बैठता है उसकी सारी विपदाएँ खतम हो जाती है। एक भी सकटमे पाव वह नही रहता है। यदि इस जीवने आज तक ऐसा काम नही किया है तो इसीका फल है कि उसका ससारमे जन्ममरणका चक्र बना रहा आया। यहांका परिवार यदि अच्छा लगता है बच्चोका, घरका यदि मोह लगा हुआ है तो खूब एकदम खुले दिलसे डटकर मोहको कर लो, खूब मोह कर लो, १०के बीचमे मोह कर लो, अधकचड़े क्यो रहते हो? अच्छा आजसा तो मोह करके फिर बताओ कि क्या अपने मे लाभकी व्यवस्था हो जायगी? यदि इसमे सार नजर आता है तो इसमे ही लग जावो। फिर अपने आपमे ही पता पड़ जायगा कि मुझे इससे हानि मिली है कि लाभ मिला है। इससे कुछ नही मिलेगा क्लेश ही मिलेगे, आत्मबल ही घटेगा नाना शल्य बढ़ेगे। बाहर दृष्टि एकदम फैल जायगी, फिर आनन्दका उपाय बनना कठिन हो जायगा। अनेक खोटी परिस्थितियाँ आ जायेंगी, यदि बाह्यमे मोह कर लिया तो। बाह्यमे कोई मंगल नहीं है, कोई सुख सुख देने वाला नहीं है। मंगल वह होता है जो मंगल है। मंग अर्थात् सुखको जो लावे वह मंगल कहलाता है। आनन्दको, सुखको जो लावे उसे मंगल कहते है।

आप लोग णमोकार मंत्र पढकर फिर चत्तारिदडक पढते है। उसमे यही तो बोला जाता है—"चत्तारि मंगल—अरहन्ता मंगल, सिद्धा मंगल, साहू मंगल, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगल" अर्थात् चार मंगल है—अरहत मगल है, सिद्ध मगल है, साधु मगल है और केवली भगवानके द्वारा प्रणीत धर्म मगल है। मगलका अर्थ है जो मंग लावे व म गलावे। म का अर्थ है पाप। जो पापको गलावे वही परिणाम मंगल हो सकता है। पापको बढाने वाला जो परिणाम है वह मोह और अज्ञानसे भरा अर्थात् विषयोमे लगा हुआ रुचिकर तो होता है, परन्तु उसका परिणाम खोटा ही निकलता है। यहाँ किसीका कुछ करने वाला कोई नहीं है। आत्मा और कर्म इन दोनोंमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव चल रहे है। जैसे परिणाम हों वैसे ही कर्म इसमें बँधेंगे। जैसा जिन कर्मोंका उदय आवेगा वैसे आत्मामे भाव होंगे। ज्यों ही आत्माने खोटा भाव किया त्यों ही आत्मामें कर्मके बंधन हुए और वह बंधा हुआ कर्म जब अपना समय पायगा, अपने उदयकालमे आयगा उस समय ही आत्मामे दुःख और खोटा परिणाम उदयमे आ जायगा। न इस आत्माको कोई समझाने वाला है। कर्मका खोटा उदय आ

रहा है तो खोटा बन जावो और न समझ समझाता है कोई कि आत्मामें खोटा भाव आ रहा है तो तुम बँध जावो। परन्तु ऐसा प्राकृतिक सुयोग है कि जहाँ आत्मामें खोटा भाव आया कि कर्म बँध गए। तात्पर्यकी बात यही यह समझनी चाहिए कि यहाँ करने हरने वाले कोई नहीं हैं जिनकी भक्ति करें जिनकी मिन्नत करें तो कुछ अपनी गुंजाइश निकाल लें। यहाँ तो ओटोमेटिक सब हो रहा है तो खोटे भाव करके बन्ध लो, दुर्गति प्राप्त कर लो, अच्छे भाव कर लो, तो सद्गति पा लो, यह तो जिस समय जिया उस ही समयपर निर्भर है। इस कारण सदा अपने परिणामको स्वच्छ व सरल बनानेका यत्न होना चाहिए। परिणामकी निर्मलताके लिए क्या करना है? जैसा यह मैं हूँ तैसा समझ लेना है। यह मैं आत्मा सबसे निराला है ना। है तो सबसे न्यारा, सबसे निराला मान लो, बस यह मौलिक यत्न आवश्यक है। अच्छा देखो यह चौकी चौकीसे न्यारी है कि नहीं, पुस्तकसे न्यारी है कि नहीं। है ना न्यारी, फिर न्यारा माननेमें कौनसा हर्ज होता है? है नहीं यह शरीर सबसे न्यारा? जो बैठे हैं इन सबसे यह शरीर जुदा है कि नहीं। है जुदा तो जुदा मान लो, इसमें कौनसी कठिनाई पड़ती है? अब जरा भीतरकी बात परख लो कि यह मैं आत्मा जो दुःखी होता, सुखी होता, विकल्प करता है, समझनेकी चेष्टा करता है। यह आत्मा है ना सबसे न्यारा। यदि न समझमें आए यह बात तो फिर धर्मके लिए और काम छोड़ दो पहिले यह निर्णय कर लो—यह बताओ कि मैं सबसे न्यारा हूँ कि नहीं? भैया! इस निर्णय बिना तो धर्मका पालन ही नहीं होगा। अपने आपकी ठीक समझ बना लो। यह काम सबसे बड़ा है और यह बात स्वाधीन है। जरा विकल्प छोड़ करके सबका विश्राम लेकर देखो कि तुरन्त समझमें आ जाता है। यदि कोई ज्ञान ज्ञानका निर्णय भी कर लो भी ज्ञान ही तो यह है, जो निर्णय करेगा। हम ज्ञानसे इस ज्ञानको हम ज्ञानके अन्दर ले जाएँ और देखें कि इस ज्ञानका स्वरूप है क्या? जिस ज्ञानके द्वारा हम सारी दुनियाको जाना करते हैं वह ज्ञान खुद कैसा है? मैं ज्ञानके स्वरूपको देखनेमें लग जाऊँ तो सब ओरके विकल्प हट जावेंगे, क्योंकि हम ज्ञानस्वरूप ही ज्ञानके स्वरूपको देखनेमें लग उठ और कुछ विशेष अन्तरमें प्रवेश करके देखें तो शरीरकी सूरत भी भूल जायगी। शरीर है या नहीं है। यह भी भान न रहेगा वहाँ केवल ज्ञानज्योति, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानतत्त्व ही अनुभवमें आयगा। वह ज्ञानघन पदार्थ देखो जुदा है सबसे या नहीं। इसका ठीक निर्णय कर लें। समझमें आवे कि जुदा है तो बस ऐसा मान लो। यही धर्मका पालन है और समझमें न आवे कि जुदा है तो अच्छी तरहसे पहिले इसीके निर्णयमें लग जावो। अगर जुदा नहीं है तो ऐसा ही मानते रहो। जैसा है, तैसा मान लो। यद्यपि आत्मा जुदा है ऐसा ज्ञान होनेपर भी गृहस्थीमें जुदी-जुदी व्यवस्थावोंमें भी यह ज्ञानी लग जाता है तो भी आत्मा जुदा है। यह उसका आत्मा अपनी ज्ञानमें इस तरह रहा करता है। यह तो लोक

ने निज है। जैसा जुदा जुदा परिवार है और यह उठकर उसी परिवारमें जायगा, दान भी करेगा, उसी दूकानमें जायगा। यह सब व्यवस्था है। जैसा सबका काम ठीक चले तो सब लोगोंने मिलकर व्यवस्था बना ली कि य उतने लोगोंकी व्यवस्था करेंगे, य उतने लोगोंकी। यह बात परिवारके रूपमें हो हुई। सो सब जुदा जुदा घर रह हैं सब काममें व्यस्त (निजी) हो रहे हैं, केवल लोकव्यवहारमें उच्छृंखलता न आ जाये, इसके लिए व्यवस्था बना रखी, इस व्यवस्थामें ज्ञानी भी पड़ रहे हैं। लेकिन प्रतीतिमें यह रहता है कि मैं तो अपनेमें पा रहा हूं अपनेको सबसे निराला, चैतन्यमात्र एक पदार्थ, जिसका कुछ नाम नहीं है, जिसका कुछ आकार प्रकार नहीं है। यह मैं एक चैतन्य वस्तु हूं, इसके सिवाय अन्य किसी पदार्थसे इसका रंच भी सम्बंध नहीं है। ऐसा देखना बस यही मंगल है। पापके कामसे पाप नहीं कटे और पापके काममें सुख नहीं मिलेगा। करोड़ोंका धन मिल जाय तो उससे सुख नहीं मिलेगा। कितना ही वैभव जमा तो शान्ति नहीं मिलती। अगर बाह्य पदार्थोंसे शांति होती तो तीर्थंकर चक्रवर्ती जैसे महापुरुषोंको लोकवैभवमें शांति क्या न मिल जाती? उन्हें ज्ञान जगा तब वे लोक व्यामोह छोड़कर अपने एकत्वस्वरूपमें उपयुक्त हो गये।

देखो मंगल पाठ पढ़ते हैं तब अरहंत सिद्ध साधुको मंगल कहकर फिर अपने एकत्व को मंगल कहकर विश्राम पाते हैं। "अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं" चार मंगल है ना। अरहंत भगवान मंगल हैं। चार घातिया कर्मोंसे रहित, मोहसे अन्तत पर परमपवित्र ज्योति आत्मा अरहंत भगवान हैं यह जिसके स्वरूपके स्मरण से भव भवके पाप कट जाते हैं वह अरहंत मंगल है। जिसके स्वरूपके स्मरण करने व अपने स्वरूपका ज्ञान करनेमें और वर्तमानमें जो कुमति हो रही है उसकी सहे नजर रखनेसे जो ग्लानि भी मिला हुआ पछतावा होता है उससे जो आंसू बहता है उससे मानो भक्तके कितने ही पापकर्म धुल जाते हैं। वह मंगल है। बहुत शुद्ध चित्त होकर ध्यान तो बनाओ कि आसमानमें मध्यमें ५ हजार धनुष ऊपर, माने २० हजार हाथ ऊपर एक प्रभु विराजमान है। जिनकी पूर्ण महिमाके कारण स्वर्गके देवता लोगोंने आकर एक बड़ा मंडप बनाया है जिसके आगे आजतक कोई लोकोंका वैभव नहीं हो सकता। १० १२ कोसमें २४ कोसमें एक मंडप बना हुआ है जिसमें कई गोलोंमें कितने ही सुंदर कोट, खातिका, वाटिका, चैत्यालय आदि रचे हैं, बीचमें प्रभुका दरबार है, स्फटिक भित्तिकाओंसे घिरी १२ सभायें हैं। इसे समवशरण कहते हैं। समवशरणका अर्थ है जहां जीवोंको अच्छा पूरा शरण मिले। इसके नीचे कितने ही सोपान लगे हुए हैं। बहुतसे पर्वत जहां नीचे आ गए हैं। उस मण्डपकी ओर जिसमें कि कहते हैं समवशरण, अच्छी तरहसे पूरा जहां शरण मिलता है। ऐसेमें समवशरणकी ओर देवता तथा मनुष्य लोग मनमें पुलकित होकर धर्मभावनासे उनके उपदेशको सुनते जा रहे हैं। देखो ना,

आनन्दमें नाना प्रकारके गुणानुवाद करते हुए नृत्य बाजेके साथ चले आ रहे है, हर्षित हो रहे है ये देवाङ्गना व देवता लोग। ये लोग प्रभुके गुणानुवादोंके पीछे अपने परिवारको भूल गए है। देखो भैया यहाँ ही जब आप किसी त्यागीका आदर करते हैं तो पहले अपने त्यागी को ही अपना मानते हैं, पहिले त्यागीको जिमाते है, चाहे बच्चे भूखे पडे रहे। फिर तो यहाँ तीन लोकके नाथकी बात कही जा रही है। ये अपने प्रभुके पीछे अपने परिवारको त्यागकर चले जा रहे हैं। इन्होंने अपने परिवारको भूलकर उस प्रभुको कितना अधिक माना होगा? उनका विश्वास है कि मेरा शरण मेरा प्रभु है, मेरे समस्त संकटोंको टालने वाला मेरा प्रभु है। कितने ही प्रकारके बीन वादित्रके दिव्य शब्द होते चले आ रहे हैं। धन्य है उन परम आत्माओंको जिनके विकासके कारण दुनियाके लोग एक चित्त होकर, आकर्षित होकर जिनका चरणागमन प्राप्त कर रहे है। यही अरहंत भगवान मंगल हैं। जो इस शरीरके झंझटसे सदा के लिए मुक्त होकर ज्ञानानन्दस्वरूपमें विराज रहे है।

ऐसा सिद्धप्रभु वही मेरा सब कुछ है। ममताके साधनभूत परिवारके बच्चे भी कुछ कहते आवें तो भी भक्तिके समय तो विशेषतया ही भक्तोंके भाव रहता है कि मेरको किसी कार्यसे प्रयोजन नहीं है। जगतके बड़े बड़े बाह्य पदार्थोंसे क्या सबसे उत्कृष्ट तो यह प्रभु हमारे हैं जो समस्त राग, द्वेष, मोह भावोंसे रहित और इस शरीरसे रहित, ज्ञानानन्दस्वरूप विराजमान है वह प्रभु हमारे लिए मंगल है। वह साधु जिनको केवल अपने शुद्ध स्वरूपके अनुभवका ही काम है, केवल अपने शुद्ध स्वरूपमें ही जिनकी रुचि है, न वस्त्रोंकी रुचि है, न सामाजिक कार्योंकी रुचि है इसी कारणसे जिनके शरीरके एक धागा भी नहीं है जिनके वस्त्रमुद्राके देखने मात्रसे उनके आत्मरसका भी अनुमान हो जाता है तथा जिनका भोजनमें भी रुचि नहीं हैं, शरीरका साधन समझकर यदि शरीरके लिये आवश्यक समझा विवेचन तो यह विरक्त दिनमें एक बार विधि मिली तो आहार कर लेता है, जो अपने स्वरूपके अनुभवके यत्नमें रहते, अन्य कुछ झंझट नहीं रखते है, ऐसे वे ज्ञानानन्दघन साधु परमेष्ठी है। ऐसे साधुवोंके दर्शनसे भवके पाप कट जाते है। अरहंत सिद्ध, इस आत्माको मंगल बनाकर अपने केवल स्वरूपमें परिणमते रहे। केवल भगवान स्वरूपकी ओर दृष्टि होना यह धर्म है, सो धर्म ही मंगल है। इस आत्माका सहज शुद्ध जो स्वरूप है उसको ही लक्ष्यमें लेना, यह धर्म कहलाता है। अतएव देखो यह धर्म ही मंगल कहा है। देखो जिसकी दृष्टि, जिसका विचार, जिसका उपयोग अपने काममें अधिक रहता है उसको बड़े बड़े पुरुष भी आदरसे देखते है। इस ही धर्म मंगलके प्रसादसे साधु पूज्य है, इस ही धर्म मंगलके प्रसादसे साधु अरहंत सिद्ध भगवान बने है। यह निजधर्म, यह आत्मधर्म हमारा मंगल है।

इसका हम केवल भावका विचार करेंगे—इसको मिलता है या इसका काम बन सकता है—यह भी मालूम होता है। दूसरी बात शुद्धिके उपकारमें आनन्दमें अपने आपके धर्ममें राम जानना बनना, फिर आनन्दमें उसके समान किसीका उपयोग न, अपने द्वारा कुछ नहीं हो सकता है। केवल भगवानकी ओर हुए धर्म मगन है। इसी प्रकार ये चार उत्तम हैं और ये चार शरण हैं।

देखो इन चारोंमें पहिले हितकारी अरहंतका ध्यान किया है जिनके कारण सिद्धका भी ज्ञान हुआ, बादमें सुगम प्राप्त उपकारी साधुका भी ध्यान किया है। अंतमें पूर्ण सार शरण कहा है। केवली भगवानके द्वारा कहा गया धर्म ही शरण है। केवली भगवानने तो कहा है। क्या कहा है? इतनी बात जो हम भूल गए थे इसका ही प्रभुने बोध कराया है। ऐसा केवल अपने स्वरूपसत्तामात्र चैतन्यमय अपने स्वरूपको अपनी दृष्टिमें अनुभवो तो यह भी एक ऐसा दृढ किला है कि कैसा भी उपद्रव आ जाय कि जिसमें तीन लोकके जीव अपना अपना रास्ता छोडकर कहीं भी हटकर घूमने लगें, बिछुडने लगें, डरने लगें किन्तु यह ज्ञानी पुरुष अपने स्वरूप रूपी किलेमें आराम कर रहा है। जैसे पानीके जीव पानीमें ऊपर मुंह उठाकर चलते रहते हैं और जरासा भी उपद्रव उसके सामने आवे तो वह पानीमें डूब जाता है। सारे उपद्रव तो शान्त हो गये। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी कभी अपने ज्ञानके बाहर अपने ज्ञानसे ऊपर बाहरी पदार्थोंकी ओर जब मुंह करता है वहां आकुलता होती ही है। सो तब झट ही बाहरी पदार्थमें मुख मोडकर अपने उपयोगको अपने ही ज्ञानमें डुबो दे तो सारे उपद्रव खत्म हो जाते हैं पर ऐसा कर सकने वाले विरले ही ज्ञानी होते हैं। जगतके ये बाहरी पदार्थ जहां अज्ञानी आनन्द करता है उनका ज्ञानीको पता भी नहीं। इसी कारण ज्ञानियोंमें रहने वाले, ज्ञानियोंके संगमें ही बसने वाले शीघ्र आत्मानुभव करनेके योग्य हो जाते हैं। बस जिन्होंने अपने आपको अन्तरमें ममता पता लगाया वे पुरुष उपास्य हैं, हम उनके गुणानुवादमें अधिक अनुरागी रहें। हमें जीभ मिली है तो इस जिह्वाका अधिक उपयोग कर लें। जिह्वाके द्वारा, गुणी पुरुषोंके गुणानुवादमें अपनेको गुणलाभ मिलता है। हमें विनाशीक जिह्वा मिली है, तो हम कल्याणके लिए इस जिह्वाका अधिक उपयोग कर लें। मन मिला है तो इस मनसे गुणी पुरुषोंके गुणोंका स्मरण कर लें। यह तन मिला है तो गुणी पुरुषोंका वैयावृत्य कर लें।

सब व्यवहारधर्मका प्रयोजन आत्मधर्मका पालन है। आत्मस्वभाव व वस्तुस्वभावका दर्शन करना ही धर्मका पालन है। वस्तुस्वभावके जाननेका सुन्दर उपाय स्याद्वादकी विधि है कि भाई अपने आपको पहिचानो। सब वस्तुओंको यथार्थस्वरूपमें पहिचानो। देखो जितनी वस्तुयें हुआ करती हैं अपने अपने उत्पादव्ययध्रौव्यमें ही रहती हैं। वे सब केवल अपने आपकी सत्ता लिए हुए हैं, वे सब अनादिसे हैं और अनन्त काल तक हैं और वे अपने आप ही

अपने स्वरूपमें अपने उत्पादव्ययसे अपनेको परिणमाते रहते हैं, अपने ही परिणामसे अपने लिए उत्पाद करते हैं और अपनेमें अपने लिए अपने आप अपनी पूर्वपर्यायका व्यय करते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपनेमें अपने लिए अपने आप विकसित व विलीन होते हैं, फिर भी वे प्रत्येक पदार्थ अपने आप अपने लिए अपनेसे अपना सत्त्व बनाए रहते हैं, यही पदार्थका स्वरूप है।

हे आत्मन्! हम सब भी पर पदार्थ हैं, अपने आप जान हैं। इन पदार्थोंका अन्य किसी पदार्थसे रंच भी सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध नहीं है तब श्रद्धामें पूरे तौरसे सबसे न्यारा अपनेको समझो। यदि यह श्रद्धा नहीं पाओगे तो संसारमें रुलना पड़ेगा। हे आत्मन्! तू पवित्र है अपनी प्रभुताको देख। इस ही प्रभुता प्रभुकी भक्तिमें तू पाप काटेगा तो सुख पायेगा, यही मंगल है यही उत्तम है यही शरण है यही सार है यही महान् करना है। यह है अपने आप और स्वयं ही भगवानस्वरूप अपने आपको संसारके सब क्लेशोंसे मुक्त करनेका उपाय।

जीवका शरीरसे घनिष्ट सम्बन्ध है और शरीरमें जब जब रोग होते हैं तब तब इस जीवको दुःखी भी होना पड़ता है। पर इस रोगका मूल कारण क्या है और इस रोगके मिटने का मूल उपाय क्या है? इस बातमें थोड़ी जीवकी दृष्टि नहीं जाती। यह शरीर मिला है तो जैसे जैसे गति नामकर्मका उदय हुआ, शरीर नामकर्म संस्थान आदि नामकर्मका उदय हुआ, उस उसके अनुसार जीवको शरीर मिला करता है और वह नामकर्म क्यों मिलता है? जैसे-जैसे जीवके परिणाम होते हैं वैसे वैसे कर्मोंके बंधन होते हैं। शरीरमें रोग होते हैं व्याधियाँ होती हैं मृत्यु होती है, शरीर नष्ट हो जाता है, खोटा शरीर मिलता है। इन सबका कारण आत्माका परिणाम है। इन सब विपदाओंका मूल कारण क्या है? इसके मनमें कारण खोजो तो खोटा आत्मपरिणाम उसका कारण मिलेगा। जो जो कुछ इस आत्मापर गुजरता है, धनी होना, निर्धन होना, यश, अपयश, रोग, निरोगता, जो-जो गुजरते हैं इन सबका कारण आत्माका परिणाम है। जैसा परिणाम किया वैसा कर्मबन्धन हुआ। जैसा कर्मबन्धन वैसी सामने स्थिति आ गई। इस शरीरमें विपदाएँ विपत्तियाँ क्यों मिलें, इनका कारण सोचेंगे वह भी आत्माका परिणाम है अर्थात् जो उपयोग निज आत्माके सहज शुद्ध चैतन्यतत्त्वको पहिचानता है, वहाँ ही रमता है, उसको ही आत्मा अंगीकार करता है। यह परिणाम तो सब क्लेशोंका व्याधियोंके नाश करनेके लिए सब परिणाम हैं। सब क्लेशोंको नष्ट करनेका शुद्ध परिणाम ही उपाय है। जो अपने आपके यथार्थस्वरूपको छोड़कर अन्य किसी जगहमें लगते हैं, विपत्तियाँ आती हैं, संताप होंगे, चिन्ता होगी, रोग होगा।

जगत्के कोई पदार्थ मेरे नहीं हैं, सब न्यारे न्यारे हैं। एकका दूसरेसे त्रिकालमें कुछ सम्बन्ध नहीं होता। चाहे जितना वैभव हो, चाहे जितना पुण्यवान हो, उसका अपना स्वरूप

उनका मिलेगा, इसके अतिरिक्त परमाणुमात्र भी नहीं है। जो अपना नहीं है उसको अपना मान लेना उसको अध्यात्मलोकमे चोर कहते है। कसे चोर कहते हैं? देखो यहा भी जो दूसरोंकी चीजोंको उठा लें, अपने घरमे रख लें और मनमे यह धारणा बना लें कि यह चीज मेरी हो गई। यह धारणा जो बना लिया तो वही चोर है। इसी प्रकार जगत्के ये सब पदार्थ अपनी-अपनी सत्ताके जगत्के है। एवं दूसरे सब परस्पर अत्यन्त भिन्न है। जो भिन्न चीजें है, जिनसे त्रिकालमे हमारा कोई सम्बन्ध नही है, जो अपनेमे ही अपना उत्पाद करता है, अपनेमे ही अपनेको बिगाड़ता है और अपने स्वरूपमे बना रहता है त्रिकालमें उनका अपना यही काम है। किसीका किसीसे रंच सम्बन्ध नही। फिर भी उनमे यह धारणा करना कि यह मेरा है। यही तो परमार्थकी चोरी है। यह भगवान आत्मा तो शुद्ध स्वरूप है। यह भगवानस्वरूप आत्मा अपने स्वरूपको भूलकर बाहरी पदार्थोंमे अपना अङ्गीकार करता है। यह मेरा है, यह उसका है आदि। यही चोरी होती है। हमारा है नही पर मानते है कि हमारा है। जैसे लोकमे चोर क्यो कहते है? हमारी चीज नही है, पर मानते हैं कि हमारी चीज है। जो चोरी करते है वह गिरफ्तार किए जाते है। उनको सजा होती है। यह हमारी बात है। हम परमार्थकी चोरी करते है, बस हमे गिरफ्तार कर लेते हैं। यह हमारी सजा उस सजासे अधिक है। नाना प्रकारके शरीर धारण करना जन्म मरण करना, जन्ममरणके चक्रमे आना आदि। यह भी जो विपदाएँ है—घर बार, स्त्री बच्चे वगैरा इस आत्माको वह सब नजर आ रहे है। उनसे मोह उठाए हुए है, ज्ञानको दबा रहे है। सच्चाईको नही सोच सकते है ऐसी विपदाएँ इनको परमे आपा माननेसे ही पैदा कर लेते हैं। जैसे यह मेरा है, वह मेरा आदि प्रकारसे माना तो तभी उन्हे आकुलता हो जाती है क्यो ऐसा होता व अपनी दृष्टि बाहर लगाते है, जो जैसा है उसे वैसा नही मानते। जो जैसा है वैसा माननाकी आकुलताओको दूर करनेमे समर्थ है। अपने शुद्ध स्वरूपका परिज्ञान कर लेना, यह सब विपदाओको नष्ट करनेमे समर्थ नही है। दूसरा और कोई इन विपदाओको नष्ट करनेमे समर्थ नही है। कही बाहर दृष्टि न जाय। धर्मके प्रसगमे भी वेशभूषामे, मतमतान्तरोंमें, क्रियापद्धतियोंमे उन सबमे दृष्टि न डालो। केवल अपने आत्मामे दृष्टि डालो। आत्माको केवल ज्योतिमात्र समझो। अपने आत्माके प्रकाशरूपमे दर्शन करो। इसीमे अपने प्रभुका दर्शन प्राप्त होगा। दूसरा उपाय नही है कि विपदाएँ दूर हो सकें। एक यही अनुभवका उपाय है जो सब आपदाओ विपदाओको समाप्त करता है। जैसे पुराने लोग एक कथानक कहा करते है कि किसी जगलमे स्यार, स्यारनी थे। स्यारनीका गर्भ था प्रसवका समय था। स्यारने स्यारनीसे शेरके बिलमे प्रसव वेदनाको समाप्त करनेके लिए कहा। बच्चे हो गये। स्यारने विधि समझा दी। स्यार ऊपर चट्टान पर बैठ गया। स्यारनीने अपने बच्चोंको समझा दिया कि जब कोई आवे तो रोने लगना।

एक शेर आया। बच्चे रोने लगे। स्यारने स्यारनीसे पूछा—बच्चे क्यों रहते हैं? स्यारनीने कहा कि बच्चे भूखे हैं शेरको खाना चाहते हैं। शेर डरकर वहांसे भाग गया। इस तरहसे १० २० शेर आए तो वह सब भी डरकर भाग गए। सब शेरोंने मिलकर एक मीटिंग की। सबने सोचा कि ऊपर चट्टानमें जो बैठा है उसकी सब करतूत है। सब शेरोंने हिम्मत की और उस स्यारके पास पहुंचे। अब सब यह सोचते है कि इसके पास कैसे पहुंचा जाय। सोचा कि एकके ऊपर एक खडे हो जाव। उन सबमें से एक लगडा शेर था। सलाह हुई कि यह ऊपर चढ नहीं सकता सो इसको नीचे ही खडा करो। लगडा शेर नीचे खडा होता है और एकके बाद दूसरा, तीसरा, चौथा खडा होता चला जाता है। इतनेमें ही स्यारनीके बच्चे रोने लगते हैं। स्यार, स्यारनीसे पूछता है कि बच्चे क्या रो रहे है? स्यारनीने कहा कि बच्चे लगडे शेरका मास खाना चाहते हैं। लगडा शेर इतना सुनकर घबडा गया। वह एकदमसे भागा। दूसरे शेर जो ऊपर चढ पाए थे वे शेर भदभद गिरने लगे और सब भाग गए। इसी प्रकार हम सबपर अनेक विपत्तियां छाई है। जितने जगतके क्लेश हैं वे परमें आपा बांधे हैं इस दुनियादपर आते है।

ये सारे क्लेश, विपदाएँ या हो खतम हो जाएँ। यदि परमें ममत्व बुद्धि है वह खिसक जाय। अच्छा परीक्षा ही करके देख लो जैसे जो कहते हो कि यह मेरा घर है। बतावो—आपके पास क्या निर्णय है कि आपका ही घर है। आपका शरीर भी नहीं है। विषय कषाय विकल्पोंका परिणाम तब भी आपका नहीं है। यह जो कुछ होता है यह भी आपका नहीं है। ये विषय कषायोंके परिणाम आपके स्वभावमें नहीं है। अब कषायोंके करने वाली भी यह आत्मा नहीं है। केवल मैं अपने स्वरूपको भूल गया हू, इसलिए सारे झंझट लग गए हैं। अब इस आत्माकी दृष्टि करो, शुद्ध स्वरूपकी पहचान करो। समस्त क्लेश इस आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे नष्ट हो जाते है। सब क्लेशोंके नष्ट करने की सामर्थ्य इस आत्मदृष्टिमें ही है। देखो इस तरह तपस्या करके जो निर्मल परिणाम होते है जिनसे घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं तो अरहन्त अवस्था आती है। अरहन्त अवस्था आने ही उनका शरीर औदारिक शरीर परमौदारिक शरीर हो जाता है। घातिया कर्मके क्षयसे पहिले कोई साधु रोगी हो कोई उपद्रुत गया हो, वृद्ध हो, कैसा ही हो, अरहन्त होनेपर शरीर निरोग, पूर्ण देदीप्यमान हो जाता है। इस शरीरमे कितने ही परिणमन आते हैं, परन्तु वीतराग सर्वज्ञ अवस्थामें जब आत्मा हो जाता है तो फिर वह शरीर औदारिक न होकर परमौदारिक हो जाता है। अब भी देखो जब कोई रोग हो तब यदि भगवानकी भक्तिमें लीन हो जाते है उनके गुणोंमें अनुराग होता है, शुद्ध, निर्मल परिणाम होता है तब देखो रोग भी दूर हो जाते हैं। इसी कारण जो रोगी बुद्धिमान होता है वह इस निरन्तर णमोकार मंत्रका जाप किया करता है वह रोगमुक्त हो

जाता है। इन मन्त्रोंमें इतनी विशाल महिमा है कि संसारके क्लेश दूर हो जाना तो सरल बात है भव भवके बन्धन भी नष्ट हो जाते है क्लेश भी और झंझट भी समाप्त हो जाते है। ऐसी आत्माएँ शुद्ध होती ह।

इनमे दो प्रकारके पवित्र आत्मा ह, एक तो जो आत्मा शुद्ध हैं वे है और दूसरे वे ह जो शुद्ध होनेके प्रयत्नमे सफल हो रहे है। जो शुद्ध है वे है अरहनसिद्ध, जो शुद्ध होनेके प्रयत्न मे सफलता पा रहे है वे है आचाय, उपाध्याय और साधु। साधु कहते किन्हे हैं जिनको अपने यथाथ स्वरूपका विश्वास हो गया है, अपने आत्माके केवलज्ञानस्वरूपको शुद्ध देखते हैं। ये आत्मा किन्हीं रागोंमे सम्बधित नही है, ज्ञानस्वरूप हैं। ऐसा जो आत्मचिन्तनमे दृढ हो जाता है, ऐसा जो अपनेको देखनेके लिए बडा उत्कृष्ट लालायित हो जाता है, उन्हें दूसरी चीज जगतमें नही रुचती। उनका परिवार छूट जाता है असार परिग्रह छूट जाते है। यह शरीर नही छूट पाता है। यदि शरीर भी छोडा जा सकता होता तो वह शरीरको छोडकर बाहर ही रहकर आत्माकी उपासना करेगा। व तो आहार भी नही करते, किन्तु विवेक आहार करवा लेता है। यह शरीर धमसाधनके लिये है। शरीरकी स्थितिके लिये आहार आवश्यक है। सो दिनमें एक बार ही वे आहारकी एषणा करते हैं। एक बारसे ही यह शरीर टिका रहता है। एक बार जो आहार कर ले और बाकी समय तपस्यामे व्यतीत करे, निरतर आत्मसाधनामे लगा रहे, ऐसी आत्माको साधु पुरुष कहते हैं। उनमे जो ज्ञानी साधु हैं औरोंको पढाते है जिनको आचाय, उपाध्याय घोषित कर देते है वे ज्ञानी साधु उपाध्याय कहलाते ह, जो बडे ज्ञायक हैं साधुओंमे प्रमुख है, जिनकी आराधनामे साधु रहते ह वे आचाय कहलाते है। देखो यह आत्मा ही परमेष्ठीका स्वरूप है, आत्मा ही मोक्षका माग है। इस निज आत्म तत्त्वको, परमेष्ठि-त्वको निरखकर अपनी दृढ आत्मसाधना द्वारा अपना आत्मकल्याण कर लेना महान् विवेक व पुरुषाथ है। वह आत्मा जिनके ज्ञान दशन, चरित्र, श्रद्धा पूण विकास को प्राप्त हो गए ह जिनके ज्ञानमे सब विश्वके सकल ज्ञेय तत्त्व ज्ञानमे सब विश्वके सकल ज्ञेय तत्त्व प्रतिभास होते है (ज्ञात हो रहे ह) वे है सिद्ध भगवान। वे प्रभु सवज्ञ होकर भी अपने आनन्दरसमयी हो रहे ह, ऐसा परमानन्दका जो पिंड ह उसीको परमात्मा कहते ह। भगवानके दशन करना है तो अपने स्वरूपमे दृष्टि दो। बाहरी चीजमे न अपने का पता चलेगा और न भगवानका पता चलेगा। ये इन्द्रिया जिनको आत्माका घात करने वाला कहा गया है जब यह जीव इन इन्द्रियोंके कहनेमे लगा रहता है तो यह बरबाद हो जाता है। मुझे केवल ज्ञातादृष्टि रहना है। मैं ज्ञानमात्र ह, जानना ही काय करता हू और न इसके अतिरिक्त कुछ नही करता। मैं अपने आपकी दृष्टिमे रहूं, ऐसे उपयोगमे जो आनन्द होगा। उस आनन्दमे वह शक्ति है जिससे कारण भव भवके सचित कम भी ध्वस्त हो जाते हैं। बाकी

तपस्याएँ जो की जाती है वह इन्द्रियोको कन्ट्रोलमे लानेके लिए की जाती है। उन बाहरी चीजोमे कम नहीं कटते, पर आत्मप्राप्तिमे जो सन्तोष होता है उसमे कम कट जाते है।

हम इस ससारमे अनन्तकालसे भटकते चले आए। उन अनन्त पर्यायोमे कितनी इच्छायें की होगी धर्मके प्रसङ्गमे, किन्तु उन चेष्टाओंसे कुछ नही हुआ। जब धर्मका सयोग होता है तब ऐसेमे भी यदि हमारी दृष्टि बाहर रही बाहर ही हम उलझे रहे, हम केवल अपने आपको न पहचान सके तो यह सब बाहरी बातें है, मिट जावेंगी, हम कोरेके कोरे रह जावेंगे।

एक सेठ था। उसकी राजासे बडी मित्रता थी। कुछ दिन बाद वह गरीब हो गया उसके पास कुछ नहीं रहा। एक दिन वह राजासे बोला—राजन् कुछ निधिका सयोग हो तो पुन व्यापार करूँ। कहा २ बजेसे ४ बजे तकका समय देता हूँ, रत्नोंके खजानेमे से जाकर जितना तुमसे हो सके रत्न ले आवो। वह सेठ रत्नोंके खजानेमे चला गया। ज्यो ही वह खजानेके अन्दर पहुचा, एक बडा महल था, हॉल था। वहाँ देखता है कि यहाँ बहुत सुन्दर-सुन्दर खिलौने भी हैं बडे-बडे कलायुक्त खिलौने देखना शुरु किये। खिलौनोमे ही उसका मन रम गया। इतनेमे ही चार बज गए। चपरासीने निकाल दिया। वह फिर राजाके पास आया, बोला—महाराज मैं तो खिलौनोंमे ही रह गया। मैं कुछ नही कर सका। राजाने कहा—कल २ बजेसे चार बजे तककी इजाजत मैं तुम्हे स्वर्णके खजानेमे जानेकी देता हूँ। वह सेठ उस स्वर्णके खजानेके अन्दर गया। वहाँपर भारी मैदान था। वहाँ उसने सुन्दर सुन्दर घोडे देखे। वह घोडोंका बडा शौकीन था। यह घोडा देखा, यह घोडा देखा। एक घोडेपर बैठ गया। चाल देखने लगा, इतनेमे चार बज गए। चपरासीने निकाल दिया। वह सेठ राजाके पास गया, बोला—महाराज यह भी समय मेरा यों ही गया। मैं घोडोंमे ही पडा रहा। राजाने कहा कि कल २ बजेसे ४ बजे तकका समय देता हूँ। एक चाँदीके खजानेमे जाओ। जितना चाहो ला सको, ले आवो। वह सेठ चाँदीके खजानेमे गया। वहाँपर उसने सुन्दर-सुन्दर चित्र देखे। नाना रूपोके भिन्न भिन्न प्रकारके चित्र देखे। उन बाह्य चित्रोंको देखनेमे ही उसका मन रम गया। उस तरहसे ४ बज गए। चपरासीने निकाल दिया। राजाके पास गया बोला—राजन् आजका भी दिन व्यर्थ ही गया। राजा बोले कि ३ दिन हो गए तुम नही चेते अच्छा तुम्हें एक दिनका समय और दिया जाता है। एक ताँबेके खजानेमे कल जाना। जितना ताबा ला सको, ले आना। चौथे दिन जब सेठ खजानेमें गया तो वहाँपर एक बहुत ही अच्छा स्प्रिंगदार पलग देखा। पलगकी परीक्षाके लिए पलगपर वह लेट गया। नींद आ गई। इस तरहसे चार बज गए। तब चपरासीने निकाल दिया। इसी तरह भाई इस मनुष्यपर्यायके चारपन होते है। बच्चा हुआ, फिर बालक हुआ, फिर युवा हुआ, फिर वृद्धावस्था हुई। कुमारावस्थामे भी धर्मपालन करना आवश्यक है। आठ वर्षका बालक भी अरहन्त

हो सकता है। बालिग जनसिद्धान्तमें ८ वर्षका माना गया है। आठ वर्षकी आयुमें तो सम्य ग्ज्ञान, सम्यक्त्व व संयम करता है, परमात्मा हो सकता है। कुमार अवस्थामें भी धर्मसाधना नहीं किया, खेलोंमें ही समय बीत गया। युवावस्थाका समय स्त्रीप्रेममें व्यतीत हो गया, वृद्धावस्थामें पड़े-पड़े अधमरेसे हो गये। बतावो किस पनको इसने सार्थक किया? ऐसी छहढाला एक बहुत सुन्दर पुस्तक है। वह तो प्रत्येक गृहस्थको कण्ठस्थ भी होनी चाहिए। उसमें पहिली ढालमें चारों गतियोंके दुःख बताते हुए मनुष्यगतिका वर्णन किया है कि "बालपनमें ज्ञान न लह्यो। तरुण समय तरुणीरत रह्यो। अधमृतकसम बूढापनो। कैसे रूप लखै आपनो।

बचपनमें तो ज्ञान नहीं किया, जवानीमें स्त्रीरत रहा, बुढापा अधमृतकसम है, बतावो अपना रूप कैसे लख सकता है? भाई कुछ लोग ऐसा सोच सकते हैं कि बुढापा तो आना ही है। सब कुछ कर लें, बुढापा तो आयगा ही। और बुढापेमें सब खराबी होगी तो किसलिये धर्म पुरुषार्थ करें? इसका समाधान यह है कि जिस जीवने बचपनमें ज्ञान नहीं किया व उसी जीवने संयम न कर विषयरति की, ज्ञान नहीं किया तो युवावस्थाके बादमें यह जीव बूढा हो जाता है, अधमरा हो जाता है तब वह कुछ नहीं कर पाता है। जहाँ धर्मकी ओर दृष्टि रहे, ऐसा पुरुष बूढा है तो क्या हानि है? आत्मस्वरूपकी ओर दृष्टि तो ज्ञानी ही डाल सकता है। बड़ी अवस्थामें तो उन ज्ञानियोंका ज्ञान ही सज जाता है, उनको हानि नहीं होती है। ज्ञानी तो वह है जिसकी आत्माके स्वरूपकी ओर दृष्टि रहे वही ज्ञान वास्तविक है। बड़े-बड़े रेडियो का आविष्कार, वैज्ञानिक कलाएँ आ जावें तो यह वास्तविक ज्ञान नहीं है। मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप हूं यदि ऐसा अनुभव नहीं है तो जगतमें रंच भी शान्ति नहीं हो सकती है। यदि मैं बाहरी पदार्थोंमें दृष्टि कर लूं, उनको ही अपना मान लूं तो क्या बाहरी पदार्थोंमें कुछ अधिकार पाना अपने बसकी बात है? अरे इन बाहरी पदार्थोंका प्रवेश भी इस आत्मामें नहीं है। पर जिन्होंने विकल्प बनाया है उन विकल्पोंसे या ही भ्रमसे परको अपना मान लिया है, इसका फल यह होता है कि वे कर्मबंधनोंमें फंस जाते हैं। ऐसा तुम निर्णय करो कि मैं आत्मा ज्ञानघन हूं मेरेमें ही मेरा काम पूरा पड़ता। यहाँके चकाचौंध चार दिनके है, मिट जावेंगे। यहाँ कुछ नहीं रहता।

मैं एक सत् सारभूत वस्तु हूं मैं रहूंगा। अनादिसे हूं, अनंतकाल तक रहूंगा, किसी न किसी रूपमें रहूंगा। अब हमें क्या करना चाहिए कि हम क्लेश न हो मैं अमुक जातिका हूं, कर्मके उदय हैं, मैं अमुक कुल अमुक मजहबका हूं अमुक धन वाला हूं इतना समझदार तथा धर्मात्मा हूं—ये सब विकल्प ही विपत्तियें हैं। ये बाधाएँ वह अपने आत्मामें डाल रहे हैं। इन सब बातोंसे दूर रहना चाहिए। अरे तू तो निर्विकल्प है, तेरेमें विषयकषाय ही नहीं है, तू तो ज्ञानसे रचा है इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यही दृष्टि धर्मका पालन है यही कल्याणका

उपाय है। यह अगर कर लिया तो सब कर लिया और अगर नहीं कर पाया तो कुछ नहीं कर पाया। यदि ऐसा न कर पाया तो उद्धार नहीं होगा। दिखाकर नहीं, बनाकर नहीं, गुप्त ही रहकर तू अपना कल्याण कर सकता है। दिखावट, बनावट, सजावटसे आत्माका कल्याण नहीं होगा। तू अपने अंतरको अपने उपयोगमें लगाले। तू बनावट, सजावट, दिखावट इत्यादि करता है। गुप्त होकर आत्मस्वरूपको देखनेकी कोशिश नहीं करता है। बननेसे धर्मकी बात कैसे होती है? दिखावेसे धर्म हमारा खतम होता है, सजानेसे धर्म हमारा नहीं रहता है। सो अपने आत्मस्वरूपको अपना लो और मनन कर लो, इस ही में रमनेसे तुम्हारा कल्याण हो सकता है अन्यथा कल्याण कोसों दूर है। जो अपनेमें है उसे देखो और अगर न देखो तो अहंकारोंसे घुल मिल जावोगे, यही कीड़े मकोड़े हो गए तो सारी इज्जत धुल जायगी। यह क्यों धुल गई? अहंकारोंका परिणाम आया, सारी इज्जत धुल गई। एक जगह एक छोटी कहानी लिखी है कि एक साधु था और एक शिष्य था। दोनों एक राजाके बगीचेमें पहुंच गए। वहां दो पलंग पड़े हुए थे, एकपर संन्यासी जाकर बैठ गया और दूसरेपर शिष्य जाकर बैठ गया। संन्यासीने शिष्यसे कहा कि तुम बनना नहीं। थोड़ी देर बाद राजा घूमने आया। उन्हें देखकर राजाने सिपाहीसे पूछा कि बगलेमें ये कौन बैठे हैं? सिपाहीने कहा—महाराज दो अपरिचित व्यक्ति बैठे हैं, पता नहीं है कि कौन हैं? सिपाही शिष्यके पास जाकर कहता है कि तुम कौन हो? शिष्यने कहा कि देखते नहीं हो, हम साधु हैं। उस शिष्यको सिपाहीने कान पकड़कर बाहर निकाल दिया। सिपाही संन्यासीके पास जाकर पूछता है कि तुम कौन हो? साधु कुछ नहीं बोलता है। सिपाही राजाके पास गया और बोला कि राजन् एक मनुष्य है, मौन है वह कुछ बोलता ही नहीं है। और दूसरे से पूछा कि तुम हो? उसने जवाब दिया कि देखते नहीं हो कि मैं एक साधु हूं। सो मैंने उसे कान पकड़कर बाहर निकाल दिया है। राजाने कहा कि जो मौन है कुछ बोलता नहीं उसे छेड़ा तो नहीं था। अरे वह कोई संन्यासी होगा। राजाके जानेपर शिष्य गुरुसे कहता कि मैं पीटा गया। गुरुने कहा कि तुम बने तो नहीं थे। अरे तू तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है। तू अपने आप भ्रमवश मानता है कि मैं गृहस्थी हूं, साधु हूं। इस बाह्य वेश भूषाकी दृष्टि छोड़कर अपने परमार्थस्वरूपको देखो। है तो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा और बनता है और कुछ। अन्तर्दृष्टि करनेपर यह अनुभव करेगा कि मैं सर्वसाधारण एक चैतन्यमात्र वस्तु हूं। जो अपने आप चैतन्यमात्र ही अनुभव कर वह न बनेगा, निकट समयमें ही उसकी मुक्ति हो जायगी। हमें न देखना है कि मैं दयालु हूं अथवा न देखना है कि तपस्वी हूं। मुझे अपने ज्ञानस्वरूपका सिंचन करना है। यह सिंचन ज्ञानसे होता है। ज्ञानकी उपासना की तो भी यह ज्ञान होता है कि मैं पानधा हूं। यह दिखानेमें, बनावटमें सजावटमें, सोचनेमें न [illegible]

उसमें बीद बनते रहना होगा। अपने आप ही रमनेका प्रयास करो। इसीमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है। इस रत्नत्रयके एकत्वमें आत्माके एकत्वका विकास है। यह एकत्वदर्शन निनामसिद्धदर्शन है। इसके दर्शन बिना ही शरीरके क्लेशोंका सम्बध हो जाता है। यही ज्ञानमात्र स्वरूप हमारे और आपके उपयोगमें रहे। यही आत्माका रूप है। जिसने बाहरी पदार्थोमें दृष्टि नहीं डाली, उसका ही जीवनमें कल्याण है।

इस आत्मामें राग आदि विकार व्यक्त हो रहे हैं। उन रागादिकोंके होते हुए भी आत्माका स्वरूप जो ज्ञायकत्व है उस ज्ञायकत्वमें विकार नहीं है। सफेद बल्बमें जैसे हरा रंग चढ़ा देनेसे वह प्रकाश हरा मालूम होता है, खूब हरा मालूम देता है। पर क्या वह हरा होता है ? नहीं। उसपर हरा रंग चढ़ा दिया गया है। जैसे जल है, जलमें हरा रंग मिला दिया जाय तो क्या जलमें हरा आदि रंग आ जायगा ? नहीं, जल जल ही रहेगा। जैसे बिजली के तारमें प्रकाश हरे, नीले, पीले रंगके प्रकट होते है, पर क्या भीतर जो बिजलीके तारका प्रकाश है वह प्रकाश क्या हरा, नीला, पीला होता है ? नहीं। कभी कोई तार भी हरा, नीला, पीला आ जाए और उससे फिर हरा, नीला, प्रकाश भी झलके तब भी बिजलीका जो काम है, बिजलीका जो निजी प्रकाश है, ज्योति है, क्या उस ज्योतिमें विकार आ जायगा ? नहीं आ जायगा। इसी प्रकार यह शुद्ध ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा इस शरीर देवालयमें विराजमान है। इस शरीरमें कई प्रकारके रूप, रंग इत्यादि नजर आ रहे हैं। क्या इन पौद्गलिक पदार्थोंमें जीवोंमें विकार आ गया, ज्ञायकस्वरूपमें क्या विकार आ गया ? नहीं। अंतरङ्गमें क्रोध, मान, माया, लोभ, असंयम योग तथा नाना प्रकारके विकार होते रहते हैं। विकार हैं, पर इस आत्माका जो स्वभाव है वह ज्ञानमय है। क्या उस ज्ञानमय स्वभावमें विकार आ गया। अरे विकार होते है, फिर भी यहां विकार नहीं होते, ऐसा मर्म जब आपकी समझमें आता है तब आत्माके मर्मका पता चलता है। ५ सेर पानीमें लाल, गुलाबी, हरा कोई रंग डाल दो तो वह सारा पानी बिल्कुल हरा, लाल या गुलाबी या अन्य कोई रंगका ही नजर आता है। यह पानीका रंग हरा, नीला गुलाबी इत्यादि जो प्रतीत होता है तो वह पानीका स्वरूप है क्या ? उस पानीके स्वरूपमें हरा पीला नीला अथवा गुलाबी रंग आ गया। वह केवल रंग डालनेसे ही रंगीन नजर आता है, पर पानीका स्वरूप रंगीन नहीं। पानी अब भी अपने स्वरूपमें स्वच्छ ही है पर उस पानीकी स्वच्छता रंगमें ढक गई है। यह ज्ञायकस्वरूप भगवान अपने स्वरूपमें स्वच्छ है अपने स्वभावमें अविकृत है किन्तु इन विपत्तियोंके सम्बंधमें, इन कषायोंके परिणामोंमें इस भगवान आत्माका यह शुद्ध स्वच्छ स्वरूप ढक गया है। ढक गया है तो भी स्वरूपमें विकार नहीं आया। स्वरूपमें विकार आ गया होता तो त्रिकालमें भी यह विकार न मिट सकता था। पानीमें रंग आ जानेपर भी कुछ

समय बाद रंग बैठ जाता है और ऊपर पानीमें पतला रंग मालूम होता है। कभी पानी बिल्कुल ऊपर स्वच्छ ही है। रंगमें रंग है और पानीमें पानी है। रंगको ध्यान में तो सारा रंग दिखना है और वहींका वहीं पानीमें सारा पानी दिखना है।

अब घरकी बात देख लो। घरमें पिताजी अपनी धोती और साफा पीले रंगसे रंगते हैं तो बोलते हैं कि साफा पीला कर दिया। साफा पीला हो गया, नीला हो गया लाल हो गया, क्या धोती पीली हो गई, लाल हो गई, नीली हो गई क्या? चाहे इनको बार बार फीचें, फिर भी रंग नहीं निकले। तो भी रंगमें रंग ही है, धोतीमें धोती है, वस्तुमें वस्तु है। वह तो चीजें अपने स्वरूपको लिए हुए हैं। इतनी ऊपरी भेदकी बातें भी मोही जीव कैसे पा सकते? भीतमें कलई पोती गयी तो भीत लगती है कि सफेद है अथवा यदि भीतमें हरा रंग पोता गया तो लगता है कि भीत हरी है। भीत हरी नहीं होगी भीत भीत ही है, जैसी थी वैसी ही है। यह हरा रंग हरा हो गया है भीत हरी नहीं हुई। इतनी बाहरकी भेदकी बातें समझमें जल्दी नहीं आती हैं, पर कुछ तो समझमें आ ही रहा है। यह हरा रंग है, वह रंग ही है। भीत इसमें वहीकी वही है। लेकिन लोग इसको भूल गए हैं। वह समझते हैं कि भीत ही हरी है। भीतका आश्रय पाकर यह आधी वग इसका रंगका ढेला १ हजार वग गजमें फैल गया। पर देखने वाले लोग यह समझते हैं कि भीत हरी है। पर ऐसा नहीं है। भीत हरी नहीं है रंग ही हरा है। भीत तो भीत ही है।

ऐसे अनेक उदाहरण ले लो। अब भाई धीरेसे अपनी आत्माकी ओर आवो। शरीरमें यह जीव बद्ध है। पर जीव इस प्रकार नहीं होगा जैसा कि यह शरीर है। बुद्धिमत्ता है तो अपने ज्ञानस्वरूपमें ही दृष्टि देकर परख लो कि हम हम ही में हैं। गायको जेवरीमें बाँध दिया। लोग देखते हैं कि गायको इस जेवरीमें बाधा है। गायका गला रस्सीमें बाँध दिया गया है, पर गायका गला पूरा ज्योंका त्यों है। वह रस्सीसे नहीं बँधी है। उस गलेके चारों ओर रस्सी लटकी है, उसके चारों ओर रस्सी है। उसका ही एक छोर दूसरे छोरमें बन्धा है, पर एकदमसे ऐसा लगता है कि गला रस्सीमें बधा है। अरे गलेमें गला है, रस्सीमें रस्सी है। रस्सीका यह बंधन है गलेका बंधन नहीं। देहमें देह है। शरीरमें आत्माका बंधन नहीं है। मैं आत्मा स्वरूपको देखूं तब तो जान पड़े कि आत्मामें कुछ बंधन नहीं है। जरा बाहर देख तो लो फिर वही विकल्प आता है कि मैं देहमें बधा हूं। अरे बाहर न देखो। अपने ज्ञानघन स्वरूपको देखो तो अपना स्वरूप अपनेमें मिलेगा। बहुत विकल्प, कषायें होते हैं यह काम मेरा रह गया है इसमें टोटा पड़ गया है, इसमें यह करना है, पुत्र स्त्री तथा परिवारको नहीं छोड़ते हैं उनको ही अपना सर्वस्व देखते हैं विपत्तियाँ उठाते हैं। अरे तू केवल शुद्ध, ज्ञायकस्वरूप, सबसे निराला, ज्ञानघन अपनेको निरख। तू एक पदार्थ है

जिसमें वही वही है यह तो एक पदार्थ है और ज्ञानस्वरूप परिणाम रहता है, जहाँ विकल्प एक नहीं है। ऐसा यह स्वयं स्वरूप है। जमडेरी आँखें खोलकर यदि अपनेमें बाहरको देखोगे तो उतनी ही विपदाएँ आयेंगी। सवज्ञदेव तो कहते हैं कि उन प्राणियोंके रागादिक भाव जब होते हैं उस समय भी आत्माका जो स्वरूप है स्वभाव है, ज्ञायकत्व है इसमें विकार नहीं होते हैं। मैं शुद्धस्वरूप हूँ—यह दृष्टि जो हो तो आन हुए विकार भी खतम हो जायेंगे और यदि शुद्ध स्वभावमें दृष्टि नहीं है तो समझो कि विकार बुलाए जा रहे हैं। ख्याल में ख्याल रक्खो तो ख्याल होता चला जायगा और अगर उस ओरसे मुड़कर किसी आरामके स्थानपर उपयोग लगाया तो वह सब ख्याल होने हुए भी भूल जाय। तात्पर्य यह है कि आत्माके स्वभावमें रागादि दोष नहीं है। जैसे कोयलेकी आग जल रही है और उसीमें गंधक लोभान भी डाल देते हैं। गंधक लोभान डाल देनेसे हरे, पीले रंगकी लौ निकलती है। उस हरी नीली लौ के होनेसे क्या अग्नि हरी पीली हो गई? अग्नि तो इस उष्ण प्रकृतिमय सदा एक स्वरूप है। चाहे उसमें लौ हो या न हो या किसी रंग या आकारकी हो, इससे क्या? प्रत्येक परिस्थितियोंमें अग्नि एक समान ही है। इसी प्रकार कर्मोंके विचित्र सम्बन्ध में इस आत्मामें क्रोध आता है, मोह आता है, माया आती है, नाना प्रकारके विकार, नाना प्रकारके विकल्प छाये रहते हैं। इतनेपर भी इस भगवान आत्माके स्वरूपको देखो तो वह सदा एक ही स्वरूप है।

यह बात सुननेमें समझनेमें थोड़ी आती भी हो तो भी इस बात का पता लगाए बिना उत्थानका मार्ग नहीं मिलेगा। और और प्रकारसे तो इसके मार्गपर चलकर ही जहाँ का तहाँ अन्य उपायोंसे तो मात्र कल्पित संतोष प्राप्त किया जा सकता है। जैसे गर्मीके दिनोंमें रातके समयमें समुद्रके पास एक नदीके किनार खड़े हुए जहाज या बड़ी नावमें कुछ मनुष्य बैठ गये। जहाज या नाव रस्सीसे खूटसे बँधी हुई थी। उसका खूटेसे खोला नहीं और उस पर बैठ गए। नावको वे खे रहे हैं, ताकत लगा रहे हैं, परिश्रम लग रहा है। दो तीन-चार घंटे तक नाव चली, ६ घंटे तक चली सवेरा हो गया। सोच रहा था मन ही मनमें कि अब चार मील पहुँच गए हैं, अब ६ मील पहुँच गए हैं अब मैं अपने गाँवके किनार लिए जा रहा हूँ खुश हो रहे थे। जब सवेरा हुआ तो देखा कि नाव अपनी ही जगहपर स्थिर है। बोले अरे भूल हो गई। बहुत परिश्रम किया, ताकत लगाया पर नाव वहीकी वही रहा। क्या किया कि खूटस रस्सी खोली ही न थी।

इसी प्रकारसे घरकी बात सोचकर बहुत बहुत बातें कर डाली। ४०-५० ६० वर्ष बहुत बहुत बात कर लीं। इस तरहसे बहुत श्रम करनेपर भी जब हम अपनेको पाते हैं तो हममें अशान्ति ही नजर आती है। उस २४ घंटेके समयमें कोई लक्षण ऐसा नहीं नजर आता

कि वह कम करता हो। यदि ऐसा समय आ जाय तो उसे शान्ति मिलती है। अपना स्वरूप तो देखो—यहा सब कुछ है कृतार्थ हू स्वरूपवतनके अतिरिक्त मेरेको कुछ करनेका नही है। लेकिन मोहके सूक्ष्म उपयोगकी रस्सी बँधी हुई है उस ओरका नहीं है। हमारे १० लक्ष है, हमारे महल हैं हमारे यही परिवारके लोग सब कुछ हैं, परिवारमे दो चार लोग हैं वही गजब बढकर हैं। भगवानकी उतनी कदर नही है जितनी कि बच्चोकी है। उनका जो कुछ सवस्व है वही दो चार लोग है। परमपवित्र ज्ञान जिसके दर्शनसे मिलता है उस स्वरूपका दर्शन ही नहा हुआ। वह अपना आया क्यो ? अनेक काम कर डाले, बडे बडे प्रयत्न कर डाले और बडे पयत्न करके भी जगतमे ठहरे नहीं रह जाते हैं किन्तु आत्मशान्ति, आत्मीय आनन्दके लिए जो यत्न करना चाहिए उस यत्नके लिए तयार नही होते। करने हैं पर तैयार नही होते। जसे उपयोगमे कोई जमा न जाना है कि हमका तो यह दुकान करनी ही है। इस तरह जम करके यह बात नहीं आई कि हमको तो आत्मशाति लेनी ही है। मुझे तो आत्मकल्याण करना ही है। इस तयारीके साथ भाव उत्पन्न हुआ हो तो यह सब अपने स्वरूपकी बात यही बहुत जल्दी सुगमतया अन्तरमे बठ जाय। देखो यह आत्मा या स्वरूप जो केवल ज्ञानरसमय है, जानन जानन ही जिसकी पूरी बोडी है। निखिल जगतके सब पदार्थोका सार यह ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा है। इस आत्मामे न विकार है ,न विपदाए ह। स्वरूपकी बात यह है पर मतके इस पिंडकी बात यही सब सामने है। क्रोध है, माया है, लोभ है, शरीर तो केवल चल रहा है, ये सब मतपिण्डमे है, पर स्वरूपमे नही चल रहा है। हाँ केवल स्वरूपको पूरा पिंड मान लिया तो एक ब्रह्मवाद निकल आया है। मैं निर्विकार हू। ठीक है, स्वरूपसे निर्विकार हू, किंतु इस पिण्डमे परिणमन तो निरतर चल ही रहा है। पानी गम हो गया है, पानीमे बहुत गर्मी आ गई है पर पानीके स्वभावमे गर्मी है क्या ? पानीके स्वभावमे गर्मी नही है।

इतनी बात सुनकर कि पानीके सत्वमे गर्मी नहीं, है रही उस खौलते पानीका पी लिया जाय तो पता चल जायगा कि पानीके स्वभावमे गर्मी नहीं है, पर इस पिण्डमे तो है। अभी कोई गम पानीको पी न तो बोलता है कि हाय जीभ जल गई। कहता ह कि यदि पानी स्वभावसे गम नही होता तो मैं जल क्यो जाता ? इसका पता लगानेके लिए पानी से मालूम कर। पानीके पिण्डमे गर्मी है पानीके स्वभावमे नही। जस इतने ही अन्तरसे वेदात के व स्याद्वादके स्वरूपमे अन्तर है। इस ज्ञायकस्वरूपमे विकार कहा है ? जिस स्वरूपमे विकार नहीं है ऐसा ही ज्ञायकमात्र म हू। मै आत्मा अनन्त ज्ञानानन्दस्वरूप हू।

हे आत्मन् ! तू परमे दृष्टि न लगा, पर मिट जाने वाले है। तू मिटने वाली चीजोमे विश्वास करता है। परमे दृष्टि लगानेसे दु ख होगा। अभी घरमे दादाके गुजरनेसे, बापके

गुजरनेसे, बच्चोंके गुजरनेसे दुःख होता है। क्यों दुःख हो? यों दुःख होता है कि उनमें बाबा, बच्चे वगैराके बारेमें यह निर्णय किया था कि ये सब अमिट हैं। जब तक उनके मनमें यह नहीं आया था कि जो समागम होता है वह मिटेगा ही। सो अगर कोई कह देता है कि क्या बाप जी मर जावेंगे तो कहेंगे कि कैसे तूने सोच लिया अपशकुनकी बात। अरे यहाँ पर जो कुछ है वह सब मिटेगा। शिकारी आदमीको कोई अगर साधु मिल जाय तो उसे बड़ा गुस्सा आयगा। शिकारके लिए साधुका दर्शन अपशकुन हो गया। मोहियोंके लिए ज्ञानी और वैरागी तो अपशकुन है। यदि सत्यस्वरूपको देखा जाय तो समझमें आता है कि शकुन तो ज्ञान और वैराग्य ही है। मोह सम्बन्ध तो अपशकुन ही है। यदि तूने अपना समय अपशकुनमें ही व्यतीत किया तो कष्ट तो लगेगा ही। यदि अपने स्वभावशकुनमें उपयोग दिया तो तेरेमें है तू है ही, तुझे कष्ट नहीं होंगे। जहाँ पर ज्ञानदृष्टि होगी वहाँ पर दुःख नहीं होंगे। अनित्यमें अनित्य की दृष्टि होनेपर यह पदार्थ मिट जाय तो वह ज्ञाता रह सकता है। वह तो यही कह उठेगा कि देखो वही बात हो गई ना जो हम पहले समझते थे।

अरे वही तो होगा जो हम समझते थे। किसी सौदेके खरीदनेमें यदि तुरन्त अनुभव हो जाय कि इसमें तो ठग गए। १० हजारका खरीदा हुआ बेचनेसे ६ हजारका पड़ता है तो इतनेकी हानि हो रही है। वह इस सौदेको वर्ष भर रखकर बेचता है और उतना टोटा पड़ता है तो पड़ो, परन्तु इससे उसे दुःख नहीं होगा, क्योंकि वह समझता है कि इसे एक वर्ष पहले खरीदा था, तब भी यह टोटा था। देखने सुननेका ही आत्माके भीतर कितना कमाल हो गया?

यह प्राणी अनित्यको नित्य समझे तो जब हम मरते हैं तब हम रोते हैं। इस असार शरीरको जब हमने सार ही समझ लिया तब रोते हैं। असार चीजको हमने सार समझा, तब रोते हैं। दूसरेकी चीजोंको हमने अपनी समझ ली या तब रोते हैं। असत्यको सत्य समझ लिया इससे हम रोते हैं। वहाँ पवित्रता नहीं है, जहाँ मोह है। लेकिन कहते क्या हैं कि नाली गंदी है, यह पानी गंदा है, सड़ा हुआ है, उसमें बदबू आती है अर्थात् इस में बहुतसे गंदे पदार्थ पहुंच गए हैं अतः गंदगी है। सड़े गले सागसब्जी तथा अन्य बाह्यपदार्थोंकी वह गंदगी कैसे हो गई? सोचो तो यहो पहले ता इस गंदगीमें मिष्टान्नके टुकड़े थे, बर्फी थी, बूँदी थी, लड्डू थे, परन्तु अब वह तो विष हो गया अब वह गंदगी बन गयी। अब जो गंदगीकी शकल है वह भी पहले एक साफ पिंड थी और उसमें पहिले देखो तो वे अणुस्कन्ध थे, आहारवर्गणायें थी। उनमें भी पहले परमाणु परमाणु थे उन स्कन्धोंपर जब इस आत्मा ने कब्जा कर लिया उन्हें ग्रहण कर लिया तो ये शरीरकी शक्ल बन गये वे बनकर इस हालतमें आ गये हैं। इन सब बातोंका मूल कारण क्या है? इनका मूलमें कारण यह हुआ

कि इन परमाणुवोंमे आत्माका कब्जा हुआ, जीवका सबंध हुआ, तब इन्हे ये विचित्र शक्लें मिली। जब तक इस पिण्डके साथ आत्माका सबंध न हुआ तब तक सब पवित्र था। आत्मासे सम्बन्ध होनेपर, मोही आत्मासे सम्बन्ध होनेपर इन वर्गणावोंकी ऐसी प्रगति होने लगी। अब देखो इसका मूल अशुद्धिकारक कौन हुआ ? ये सब गंदगियां अशुद्ध है किसके प्रसादसे ? जायोंके सपर्कके प्रमादसे जीवोंके नही, मोही जीवोंके। तब मोह ही तो मूल हुआ। देखो लोकमे जो लडका अशुद्ध हो जाता है उसको छूते ता नही है। बाहर रहा, बाहर रहो कहीं छू न लो। यदि उस लडकेने छू लिया तो अशुद्ध हो गए, दिलमे अशांति हो गई। दूसरने तीसरेको, तीसरने चौथेको छू लिया, जहा तक नजर चलती है वह सब अशुद्ध ही होते चले जाते हैं। यह क्यो अशुद्ध हो गए ? उसने हमें छू लिया। उन सबमे मूल खराब है केवल एक लडका। अरे यह लडका तो शुद्ध है किन्तु हो गया जठराग्निसे सम्बन्ध। यह जठराग्नि कैसे बनी ? मोही जीवके सम्बन्धमे। लो, जठराग्नि भी हो गई जीवका सम्बन्ध होनेमे। अब सब गंदी शक्ल बनने लगी। अब मूल कारणका विचार करता मूलमे क्या अशुद्ध है ? किस वजहसे सारी चीजें अशुद्ध हो गयी। अरे रागी जीवने कब्जा किया तो यह अशुद्ध हो गया। जीवके सम्बन्धसे यह अशुद्ध नही हुआ, किन्तु रागके सम्बन्धसे यह अशुद्ध हो गया। फिर यह राग हुआ क्यो ? यह अशुद्ध राग बना क्यो ? अरे मिथ्यात्वकी वजहसे यह अशुद्ध राग बन गया। दुनियामे सबमे गंदा होता है मोह। क्या माससे गंदा है ? हा माँसमे भी गंदा है, खादसे गंदा है तथा अन्य अशुचि पदार्थोंसे भी गंदा है। हा, हा सब पदार्थोंसे गंदा है। गंदगी जो है उसका करने वाला भी यह मोह ही है। मोह है, मोहका सम्बन्ध जीवसे है तो राग पैदा हुआ। तो राग तो मोह-परिणामोंसे हुआ। शरीर बन बैठा तो यह मोह। दुनियामे जो गंदी चीज है वो केवल एक मोह है और कोई दूसरी चीज इस दुनियामे गंदी नही है। जिस मोहने इस समस्त जगतको गंदा कर दिया उसका महत्व इतना है कि भगवान भी छूट जाय, धर्म भी छूट जाय, सबसे मुँह मुड जाय, पर मोहसे मुख नही मोडते। यही वजह है कि हमारे धर्मके प्रयत्न तो होते हैं, धर्मकी बात चलाते तो हैं किन्तु उपयोगकी रस्सी मोहकी खूटीसे गडी हुई है। ४० वर्ष तक धर्म किया, पूजा किया, सेवा किया—१० वर्ष तक, परन्तु आज हम उसी जगह पर है। कषायमे फर्क नहीं पडा।

वह सहज उजेला नहीं मिल सका। यहा चीज समझने की है कि इस आत्माके ज्ञायकस्वरूपमे क्या विकार है ? मैं तो मैं हो ज्ञानमय हू, ज्ञानमय होना ही मेरा स्वभाव है। ऐसा ही मैं शाश्वत निश्चल हू। यही साक्षात् भगवान् हू। भगवान होनेके लिए बाहरसे कुछ नही आता। मैं तो बना बनाया भगवान् हू, मेरेमे विषय कषाय नही है। विषय कषायोंको ज्ञानदृष्टिकी छैनीसे काटकर बाहर कर देना है और फिर है बना बनाया प्रभु। जैसे पत्थरमें

की मूर्ति बनाई जाती है तो पत्थरसे जो कारीगरोने मूर्ति तैयारकी। उसमे केवल बाहरी ढकने वाले पत्थर काट दिये, मूर्ति तैयार हो गई। कुछ बाहरसे मूर्ति तो नही रची। इसी प्रकारसे मूर्तिको तयार कर लेन ह, अन्य काम नही करने पडते ह। यह मूर्ति वही तैयार कर सकता है जो कुशल कारीगर है। जो मूर्ति पहले थी वह अब भी है। जरासा ढकने वाले पत्थरोंको काटकर हटा दिया, मूर्ति तैयार हो गई। इसी प्रकार इस आत्मामे भगवान बनानेके लिए कुछ नही बाहरसे लाना है। केवलज्ञान स्वरूपको ढकने वाले जो विषय कषायोके परिणाम हैं उन विषय कषायोंको ज्ञान-छेनीसे बाहर करना है। यह स्वरूप कृतकृत्य है। दुकान करने को पडी है, यह नही चलेगा तो इसके बिना गुजारा नही है। ऐसा कुछ नही है। विषय कषायोंकी गदगीको हटाकर इस ज्ञानस्वरूपसे भगवानके स्वच्छ व सही दर्शन तो कर लें, इसको कर लें और अगर न कर सका तो जहाके तहाँ मौजूद मिलेंगे। हे ससारी प्राणी, हे ज्ञान न दघन आत्मन्, तू दुखी क्यो हो रहा है, विवश क्यो हो रहा है? अपने स्वरूपको तो देखो। तेरा तू ही है, एक ज्ञानघनरस, आन दपुन्ज है। तुम्हारा आनन्दस्वरूप ही है। दुख तो तूने कल्पनाएँ करके बनाये है। स्वभावमे तो आनन्द ही बना हुआ है। तेरा स्वरूप चतुष्टय तुझमे ही है, तेरा उत्पाद व्यय ध्रौव्य तुझमे ही होता है। पदार्थोंका अपना अपना स्वरूप उन ही, उन ही मे है। अन्य पदार्थोंका दूसरे पदार्थोंसे कुछ भी सम्बध नही है। किंतु जब यह चैतन्यमय ज्ञानमात्र वस्तु बाह्य पदार्थोंमे कल्पनाए करता 'यह मै हू' यह मेरा है' बस इन कल्पनाओंसे दुख उत्पन्न होने लगता ह। दुखका मूल दृढ नही है। एक केवल भ्रमसे बाह्यमें आ जानेसे, असुखका आश्रय मान लेनेसे, असत्यको सत्य मान लेनेसे क्लेश उत्पन्न होते ह। क्लेशोंका मूल दृढ नही, परतु हिम्मत करना नही तथा अपने आपके स्वरूपमें ही आपा बुद्धि रखना नही। और क्लेश यो ही मौज करते करते खतम हो जायें सो कैसे हो? सबसे न्यारा विज्ञानघन एक निजी आत्मतत्त्व मैं समझू तो सारे क्लेश समाप्त हो जावेगे, तेरा न्याय तू ही है। तेरा न्याय करने वाला कोई दूसरा नही है, तेरी पुकारका सुनने वाला कोई दूसरा नही है। तेरी प्रभुता तेरेमें ही है, तू ही अपनी पुकारको सुन सकता है, तेरी आवाज तेरा प्रभुत्व ही सदा सुनता रहता ह अर्थात् जसे परिणाम उत्पन्न होते है वैसे ही इस प्रभु आत्मामें परिणतियाँ होती चली जाती है। तेरा निर्णय तुझमें है। तू अन्यत्र दृष्टि मत कर। तूने अन्यत्र दृष्टि बहुत की, इसीकी वजहसे दुख होते आ रहे, यह मेरा स्वभाव नही है। परको तो मेहमान जान। मेहमान कहते ह उसे जिसकी कोई महिमा न हो, आते हो तो आओ, न आते हो तो चले जाओ। ऐसे ही मेहमान होते हैं, जिनके प्रति लोग कहते हैं कि इसकी चाहे यह बडा भी हो मेरे यहा महिमा नही है। तू अपने ज्ञानस्वरूपको देख। और कर्मोंके स्वभावसे उपजे हुए भाव, राग द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि यह-

तेर स्वभावमे नही है। तू तो निश्चय, एक ज्ञानस्वभावमात्र है। तू अपनेको ज्ञानस्वरूप ही अनुभव कर। जैसे कोई पुरुष है इसके मित्र हू, मैं उसका मित्र हू, इस तरहसे जो अनुभव करता है, जिसको मित्र माना है, जिसको वैभव माना है उन्हीसे उसे क्लेश होते हैं और उन क्लेशोंसे उसे रज होता है, दुःख होता है। इसी प्रकार यह जिन्ही पदार्थोंको अपना मान लेते हैं तो इस बिगाडमे ही उसे दुःख उत्पन्न होता है। इन रागात्मक भावोको तू अपना मान लेता है तो दुःख उत्पन्न होता है। भेदविज्ञानकी चरमसीमा यह है कि तू अपने औपाधिक भावोको अपने आपमें न्यारा समझ। यह धन वैभव तो प्रकट न्यारे दीखते हैं। मकान है देखो यह तो प्रकट ही न्यारा दीखते है। यह मित्र तो प्रकट न्यारा दीखते हैं। परिवारके लोग भी जुदा जुदा हैं। और इसी आत्मभूमिका में जो अष्ट प्रकारके कर्म बन्धन बंधे हुए है वे भी इस आत्मासे जुदे है। पुद्गल कहलाते हैं रूप, रस, गध, स्पर्श वाले हैं, वह सब भी न्यारा है। इस आत्मामे जो रागादि विकार उत्पन्न होते हैं उन्हीमे सुख व दुःख उत्पन्न होते हैं। अच्छा जरा परीक्षा तो करो कि विकार न्यारा है कि नहीं। एक दृष्टिसे देखते हैं तो वह न्यारा नहीं जचता है। मेरा द्रव्य ही तो इस समय यो परिणमता है। जब इसके कारण देखते हैं तो यह जुदा समझमे आ जाता है। यह विकार मेरा नही, यह मेरे स्वभावके कारण नही हुआ। रागादिक भाव मेरे स्वभावसे उठकर नही होते, किन्तु कर्मोके उदयका निमित्त पाकर भये हैं। जिन महात्माओने, जिन सौभाग्यशाली पुरुषोने इस निराले तथा चैतन्य चमत्कारमात्र स्वरूपको पहिचाना है वे आनन्दमय है और जिन्होने अपने स्वरूपको नहीं पहचाना है वे प्राणी ससारमे रुलते है, रोते हैं। ऐ रोने वाले प्राणियो! व्यर्थमे दुखी हो रहे हो, व्यर्थमे विवश हो रहे हो। तेरी सहायता करने वाला ससारमे कोई है क्या? तेरको दुःख देने वाला कोई दूसरा इस जगतमे है क्या? तेरा अहित करने वाला, तेरा पहिचानने वाला, तुझे मुक्तिमे ले जाने वाला, तेरको इस ससारमे अटकाने वाला कोई दूसरा इस जगतमे है क्या? कोई नही है। आप तो परिणाम करते है और ये क्लेश अपने में ही आटोमेटिक बनते चले जाते है। इन दुःखोंसे बचना है तो अपने स्वरूपको देखो। दूसरा कोई उपाय नही है। धर्मका पालन इसीको कहते है। धर्म बाहर नही, वेश-भूषामे नही, नाना स्थानोमे नहीं, नाना पद्धतियोमे नही। केवल निज सहज स्वभावमे यह ही मैं हू' ऐसा मान लेनेसे, ऐसा अगीकार कर लेनेसे, ऐसी दृष्टि बना लेनेसे धर्मका पालन है। इस ही बातके लिए यह व्यवहार धर्म है। सत्संग करते है इसी प्रयोजनके लिए कि हमारी दृष्टि ऐसी बनी रहे कि हम धर्मके पालन के योग्य बने रहे। इसके लिए सत्सग किया जाता है। उपकार सत्सग जो किए जाते है इसलिए किए जाते है कि मेरी बुद्धि ऐसी व्यवस्थित रहे कि मैं अपने स्वभावके दर्शन करनेके लायक बना रहू। अपने स्वभावके दर्शन करना सोई धर्मका पालन है। दुःख तो कल्पनाओसे

बनाया गया है। कोई भी दुःख हो रहा हो, यही निर्णय कर लो कि और कुछ नहीं है, केवल कल्पनाएं बनी रहीं। बस इसीसे दुःख होता रहा है। इन कल्पनाओंका बना लेना, इसीका नाम दुःख है। जैसे न तो टोटा पड़ा है, न विपत्तियाँ आती हैं, न हमारे लिए कोई अनर्थकी योजना कर रहा है। केवल कल्पनाएं बना बैठा होऊं कि हमारे अनर्थके लिए कोई योजनाएं कर रहा है। वहा कुछ नही हो रहा है, वहा अपने हित की ही बात बन रही है और मनमे कल्पनाएं कर लीं कि मेरी हानिके लिए योजनाएं ये बना रहे हैं तो इसीसे दुःख होता है। बाह्य पदार्थ है, हैं, वे अपने आपमे परिणमते हैं। हम ऐसे हैं, वह वैसे हैं, इस प्रकारसे वस्तुस्वरूपके अनुकूल विचार चलें इससे उन्हें आनन्द है। सुख और दुःख यही बाहरसे नही आते हैं। जैसी भावना है वैसे ही दुःख तथा सुख है। वस्तु है किसी दूसरे प्रकारकी और मान लेना उसे भिन्न प्रकारकी तो दुःख होगा ही और वस्तु जैसी है तैसी मान ले तो सुख होगा। वस्तुका स्वरूप जैसा है तैसी बुद्धि बने तो सुख है। चाहे बाहरकी नरकगतिके दुःख भी भोगे जा रहे हों, किन्तु यदि आत्मामे मिथ्यात्व नही है तो आत्मामे सुख है, कोई क्लेश नही है। और अन्तरमे सम्यक्त्व नही है तो उसकी आकुलता बराबर लगी चली जाती है। सम्यक्त्व बराबर सुख को पैदा करता है और मिथ्यात्व सदा आकुलताओं को पैदा करता है। जैसा है तैसा ज्ञान हो जाना, जसा है तैसी समझ हो जाना, यही ज्ञान है। ज्ञानी गृहस्थ यद्यपि असंयमके काम करता है, चारित्रके प्रतिकूल भी चलता है पर जैसे पतंग उड़ाई गई, पतंग कितने ही ऊपर पहुंच गई है तो डोर तो अपने हाथमें है, वह पतंग कहीं बाहर नहीं जा सकती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व है तो चाहे उपयोग थोड़ा भ्रमकी ओर हो जाय, विचलित हो जाय, यहां वहां पहुंच जाय तो वह सब सम्यग्दृष्टिके आधीन बात है। वह अपने उपयोगको शीघ्र अपनी ओर बना सकता है। होता भी ऐसा ही कि श्रद्धा तो सही है, फिर भी मार्गपर नहीं चल पाता। कौन नहीं जानता कि हिंसा, झूठ, चोरी कुशील परिग्रह संसारमें भटकाने वाले हैं। इनकी निवृत्ति होनेपर भलाई है फिर भी लोगों को कुछ समय तक करना पड़ता है। पर यदि श्रद्धा है तो पाप कम हो जाते हैं।

जैसे सामने अग्नि पड़ी है। एक पुरुषको जबरदस्ती ढकेलकर यहां जा रहा है कि आगपर चलो तो वह पगको आगमें ऊपर ऊपर रखकर निकल जायगा। पर एक ऐसा आदमी जिसके पीछे अग्नि पड़ी हुई है और कहनेमें नही, किन्तु किसी कारण पीछे पैर रख लेता है। इन दोनों पुरुषोंमे जरा बतलाइए कि अधिक कौन जलेगा? जिसने पीछे बिना प्रेरणाके पैर रख लिया है, उसको पता नहीं था तो वही अधिक जलेगा। उसको आगका पता न होनेमे जल्दी उठनेका परिणाम भी नहीं है, सो अधिक जल गया और जो सामने देख रहा है वह जल्दी जल्दी पैर रखकर निकल जायगा। इसी प्रकार जिसका ज्ञान है, श्रद्धान है,

वैराग्य है, फिर भी कोई परिस्थिति आती है जिससे कुछ प्रतिकूल चलना पड़ता है। पर प्रतिकूल चलने पर भी उसके विपरीत खिंचा हुआ रहता है। जिसमें ज्ञानस्वरूप नहीं, विषयोंमें आसक्ति है, उसके यम बन्धन विशेष है। ज्ञानीको विषयोंमें आसक्ति नहीं होती, इससे वह मोक्षमार्गस्थ है। एक कुत्ता जानवर होता है, वह बड़ा स्वामिभक्त होता है, आज्ञाकारी होता है। २ रोटीके टुकड़ोंमें ही २४ घंटे पहरा देता है। अपनी पूँछ हिलाकर बड़े प्रेमसे अपने मालिकको बड़ा प्रेम दिखाता है। देखो कुत्ता कितने काम आता है? चोरीसे बचानेके लिए रखवाली करता है, कोई उपद्रव मालिकपर आ जाय तो शीघ्र कुत्ता अपने मालिकका उपकार करनेके लिए तैयार हो जाता है। एक सिंहको देखते हैं तो दिल दहल जाता है। किसी किसीका तो हार्ट फेल हो जाता है। कोई कोई तो शेरसे डरकर मर जाता है। कितना अहित करने वाला यह शेर है? क्या जी जो उपकारी है, जो भला है उसकी उपमा देना चाहिए या नहीं। अच्छे पुरुष किसी सभामें खड़े हो जाएँ और कहें कि फलाने भाई तो बहुत उपकारी हैं, इनका कहना क्या है? यह बहुत ही उपकारी एवं धर्मात्मा है। यह तो एक कुत्तेके सम न हैं। इनकी बड़ी भव्य आत्मा है। यह बड़े उपकारी हैं। और उसीको या अन्य किसीको यह कह दिया जाय कि यह शेरके समान है (यानी दूसरोंकी जान लेता है) । ऐसा नाम सुन करके वह खुश हो जायगा। पर इसका बुरा अर्थ होता है। यदि किसी व्यक्तिको यह कह दिया जाय कि यह व्यक्ति कुत्ता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह व्यक्ति कुत्तेके समान स्वामिभक्त तथा आज्ञाकारी है। यह अंतर किस बातका आ गया? यह आध्यात्मिक मर्मको बताने वाला अंतर है। अगर कोई कुत्तेको लाठी मारता है तो उस लाठीको कुत्ता चबाने लगता है। वह समझता है कि मेरा दुश्मन यह लाठी है। मेरा अहित करने वाली यह लाठी है। यह हुई निमित्तदृष्टि अर्थात् निमित्त ही मेरा सब कुछ करने वाला है। ऐसी दृष्टि हुई कुत्तेकी जैसी दृष्टि। उसको यह पता नहीं चल पाया कि मेरा दुश्मन लाठी नहीं है बल्कि यह पुरुष है। जब कि शेरको कोई लाठी, तलवारसे मारे तो शेर यह नहीं समझता है कि मेरा दुश्मन लाठी और तलवार है बल्कि वह यह समझता है कि यह व्यक्ति ही मेरा दुश्मन है, इसलिए वह शेर उस पुरुषपर ही हमला करता है। एककी दृष्टि है कि मेरा दुश्मन लाठी है और दूसरेकी दृष्टि है कि मेरा दुश्मन पुरुष है। यही ज्ञानी और अज्ञानीमें अंतर है। ज्ञानी देखता है कि धन, वैभव, परिवार किसीमें मेरा सुख नहीं है। मेरा सुख मेरे अंतरसे उठता, परन्तु अज्ञानी यह देखता है कि धन वैभव, कुटुम्ब, परिवार आदिमें ही सुख है। ज्ञानी यह सोचता है कि बाह्य पदार्थोंसे सुख नहीं होता, पर अज्ञानी यही सोचता है कि बाह्य पदार्थोंपर ही सुख दुःख निर्भर है। अज्ञानी जब तो अपनी प्रभुताको स्वीकार कर ... है। वह सोचता है कि यदि धन, परिवार, सदस्य तथा अनुकूल ...

नुकसान है। परन्तु नुकसान है—इसी बाह्य दृष्टिमें यह आत्मा पूर्ण स्वच्छ हो तो दुःख नहीं होगा। एक पुरानी घटना है कि वज्रदंत चक्रवर्ती जब फूलमें मरे हुए भँवरेको देखते हैं तो देखकर विचार करते हैं कि यह भँवरा फूलकी सुगंधमें आसक्त होकर इस फूलमें ही छिपा मर गया। कोई फूल ऐसे भी होते हैं कि दिनमें तो खुले रहते हैं और शाम होते ही बंद हो जाते हैं। भँवरा मकरंदरस चूसनेके लिए बैठ गया शामको और उसी फूलमें बंद हो गया। जिस भँवरेमें इतनी ताकत है कि काठमें छेद कर सकता है। एक ओरसे छेद करके दूसरी ओरसे निकल जाता है। फूलकी उन कोमल कोमल पखुडियोंमें आसक्त होकर भँवरा मकरंद रसका पान करता है और वहीं मर जाता है। इसी तरह आत्मामें तो अनंत शक्ति है, आनन्द शक्ति है, केवलज्ञानकी शक्ति है। परंतु विषयोंमें आसक्त होकर अपने ज्ञान प्राणको बरबाद कर रहा है। आत्मामें क्लेश या आनन्द केवल जानने की कलापर निर्भर है। लो, शरीरको देखो, आनंद खत्म हो गया और लो ज्ञानस्वरूप देखनेमें उपयोग बन गया, तो आनन्द प्रकट हो गया। ऐसी महान् चमत्कारकी कलाओं युक्त यह भगवान आत्मा है।

यह प्राणी बाह्य दृष्टि करके कि मुझे तो बाहरी चीजोंसे आनन्द मिलता है, बाहरमें ही आसक्त होकर बाहर बाहर ही घूमता है। इस प्रकारका प्राणी बाहरी पदार्थोंको नहीं छोड़ सकता है। यह भूला हुआ प्राणी भ्रममें ही रह रहकर अपना आत्मबल खो देता है और बरबाद हो जाता है। ऐ प्राणी! क्या दुखी हो रहे हो? तेरा तो स्वरूप भगवानका है। तेरेमें भी तो वही द्रव्य वही गुण है, वे चीजें हैं। भगवानकी आत्माका तत्त्व शुद्ध ज्ञानके द्वारा आनन्दमय है, ज्ञानघन है। मेरे आत्माका उपयोग अशुद्धकी ओर है, यही तो हो गया अंतर। चीज तो एक है जिसमें दुविधापन नहीं है। तो जैसा सुखका भण्डार प्रभु है वैसा तू है। परन्तु अपने आपको नहीं जानता है। इसी कारण बाहरी फसावमें फस रहा है। २४ घंटेके समयमें २ क्षण को सबकी कल्पनाएं छोड़कर अन्तरमें तो देखो। तू उत्कृष्ट ज्ञानानंदका पिंड है। कहते हैं कि जीव हवा है। फुर्र मारा उड़ गया। यह जीव हवामें भी अत्यन्त सूक्ष्म है शरीरसे अत्यन्त जुदा स्वरूप वाला है। शरीरके अंदर है, इसमें निमित्तनैमित्तिक भावोंका होना कारण है। नहीं तो शरीरमें इतना संयोग होनेकी भी गुञ्जाइश नहीं, तेरे परिवारके लोग तेरे नहीं हैं जिनसे तू इज्जत चाहता है, यह तेरे नहीं है। तू तो चैतन्य स्वरूप एक वस्तु है। ऐसा सुखका भण्डार तू है। अंतर भीतरमें देखो और अपनेमें अपने लिए अपने आप देखते रहो।

भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया। तावद्यावत् पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं।

एक समयसार ग्रंथ अध्यात्मका एक ही ग्रंथ है, जिसमें अध्यात्म पद्धतिसे आत्माका स्वरूप बताया है। उसमें आत्माका स्वरूप बताते बताते उसका उपाय, भेद, ज्ञान कहते हैं।

और शिक्षा देते है कि हे आत्मन ! तब तक भेदविज्ञानकी भावना करो जब तक यह ज्ञान ज्ञान मे प्रतिष्ठित नहीं हो जावे । मैं ज्ञानमात्र हू, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू । इस प्रकार सबसे निराला अपने आपको चैतन्यस्वरूपको रखा । यही काम अभी पडा हुआ है । यही काम कठिन है, पूजा सरल है । अरे नहीं भैया अपना यह काम सरल है पूजा कठिन है । पूजामे १० साधन जुटाने है । यहाँ क्या है ? जैसे ही बस अपनेको देख डालो, यह क्या कठिन है ? अमका पालन यही है । बाहरी चीजें तो सहारा मात्र हैं, उनमे दृष्टि न दो । जब नसैनीसे ऊपर जाते तो सीढ़ियाँ हैं वे तो सहारा मात्र हैं ऊपर जानेके लिए । सीढ़ियोमे प्रेम नहीं करते तो । सीढ़ियाँ बहुत अच्छी है बडी सुखद हैं मैं नहीं छोडूंगा । अरे तू न छोड़ेगा तो वहीं पड़ा रहेगा, बाह्य तो तेरे सहायक हैं । पहली सीढीपर कदम रखकर उसको छोड़ दें, दूसरीको छोड़ दें, तीसरीको छोड़ दे । ग्रहण किया है छोड़नेके लिए । ऐसा न करो कि हम तो पहलेसे ही छोडे हैं, पहलेसे ही छोड़े पड़े है । नहीं ग्रहण करके छोडनेकी बात है । यहाँ कुछ छोड़ना नहीं । यथार्थ ज्ञान जो इसमें ही ज्ञान है, इसमें ही आचरण है, ऐसा स्वरूप वाला यह मैं निश्चल रूपसे अपने आपमें रहूँ और अपने आप सुखी होऊँ । मैं क्या हू, इस बातको समझने के लिए इस श्लोकमे पाँच बातें बताई गई है । पहली बातमें कहा है कि यह आत्मा ज्ञान पिंड है । दूसरी बातमे अन्य समस्त पदार्थोंसे भिन्न बताया है । तीसरी बातमे स्वभावसे निर्विकार कहा है । चौथी बातमे स्वतन्त्र कहा है और पाँचवी बातमे सहज आनन्दमय दिखाया है । इन्हीं पाँच बातोंके विवरणसे सारा करनेपर आत्मामें यथार्थ बल बुद्धि हो जायगी । मैं ज्ञानपिंड हू, ज्ञान ही मेरा स्वरूप है । जैसे गर्मी ही अग्निका स्वरूप है वस ज्ञान ही मेरा स्वरूप है । जैसे कोयला तिकोना, चौकूटा है, जलता है तो वह अग्निका स्वरूप नहीं है । अग्निका स्वरूप तो केवल गर्मी है । और बात तो निमित्त पाकर होती है । यह मैं आत्मा ज्ञानका पिंड हू ज्ञान ही इसका स्वरूप है । ज्ञान रसमय है । यह आत्मा मच्छके शरीरमें इतना लम्बा चौडा हो गया और चींटीके शरीरमे इतना छोटा हो गया । ऐसा छोटा बडा हो जाना, फैल जाना, यह आत्माका स्वरूप नहीं है । यह तो निमित्त पाकर होता है । आत्माका स्वरूप तो ज्ञान है । ज्ञानपिंड यह आत्मा है और अन्यसे भिन्न है । मेरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं उन सबसे मैं जुदा हू । यह अस्ति और नास्तिका जिक्र किया है । मैं मैं हू, कुछ और नहीं हू । हू तो ज्ञानपिंड और मेरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ है वे सब मैं नहीं हू । इसीका कहना है एकत्व विभक्त व । तू एक व विभक्त, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । वस्तु की पहचान स्याद्वादसे होती है । स्याद्वादका आश्रय लिए बिना वस्तुओंका परिचय नहीं होता ।

यह पीछी है, तो यह पीछी है और और नहीं है । पीछी चाहे जो हो जाय, पीछी ही

दरी हो जाय तो यह सत् नही हो सक्ता है । पदार्थ सत् कहलाते है तब जब अपने स्वरूपसे हो और परके स्वरूपसे न हो । यदि वह परके स्वरूपसे न हो व निजस्वरूपसे हो तब तो वह पदार्थ रह सकता है अन्यथा नही । पदार्थ तभी वह सकते है जब अपने स्वरूपसे तो हो और परके स्वरूपसे न हो । यह चौकी है, है, स्पष्ट दीखती है । यह चौकी अपने आपमे तो है, पर इससे अतिरिक्त जितने पदार्थ है उन सब रूप नही है तभी तो यह पदार्थ है । इसी तरह अपने आत्माकी बात लगाइए । यह मैं आत्मा अपने स्वरूपसे हू और परके स्वरूपसे नही हू । अपने आपमे हू, मैं अन्य जीव नही हू, कोई पुद्गल नही हू अन्य किसी द्रव्यरूप नही हू । वह मैं क्या हू ? इसके बारेमे बताया है कि मैं ज्ञानपिंड हू । आत्मामे ज्ञान ही का तो सारा वैभव है, ज्ञानका ही सारा कमाल है । ज्ञान ज्ञान ही तो आत्मा है, अमूर्त है, ज्ञान भावात्मक है, ऐसा ज्ञानरस इस आत्माके साथ अन्य अन्य भी गुण मालूम होते है । जैसे आनन्द है, श्रद्धा है, चारित्र है, परन्तु यह सब कुछ भी लगा रहता है । मानो ज्ञानधर्मके अस्तित्वकी सेवाके लिए सब गुण है । सबमे प्रधान एक ज्ञानगुण ही है । जब हम आत्माको पहिचानने चलें तो और-और बातोको देखकर हम आत्माको न अनुभवमे ला सकेंगे । जैसे सोचा कि यह मैं आत्मा कितना लम्बा चौडा हू ? तीन चार हाथका लम्बा एक हाथका चौडा, इतना ऊँचा, सोचते रहे, पर ऐसा सोचनेमे आत्माका परिचय न मिल सकेगा । आत्माका अनुभव न हो सका, आत्माकी पकड न आ सकेगी । यह मैं आत्मा कैसा हू ? अरे जो गुस्सा आ रहा है यह है आत्मा, ददका अनुभव है यह है आत्मा, त्याग है यह है आत्मा । सुखका, दुखका, हर्षका, मौजका अनुभव है तो यह है आत्मा । ऐसा सोचनेमे आत्माका अनुभव नही हो सकता ।

तो है क्या आत्मा ? अरे आत्मामे अनन्त शक्ति है और उन शक्तिके प्रतिसमय परिणमन चलते रहते हैं । अनादिसे परिणमन चला आया और अनतकाल तक परिणमन चलेगा । परिणमन तो होगा पर परिणमन या शक्तिभेदकी दृष्टिसे परिचय नही हो सक्ता, आत्माका अनुभव नही हो सकता । ऐसा पकडमे नही आ सकता कि जिससे स्पष्ट पहिचानमे आवे । अरे यह है आत्मा । जैसे हाथमे रखा मलाका ढेला है पहिचानमे आ जाता है कि यह है । एव ज्ञानदृष्टिसे आत्माको सोचो कि यह ज्ञानस्वरूप आत्मा है जो जाननका ही काम करता है वह ही आत्मा है । इतना ही नही जाननेकी जो शक्ति है, त्रैकालिक जो ज्ञानस्वभाव है वह आत्मा है । इस तरह केवल ज्ञानस्वरूपको ही उपयोगमे रक्खो तो ज्ञानस्वरूप ही लक्ष्यमे रहते रहते यह लक्ष्य भी छूटकर ज्ञानमात्र आत्माकी ओर अनुभव हो जाता है । यह चीज प्रयोग की है । जितने शब्द कह गए उतने शब्दोंके सुननेसे आत्माका अनुभव नही । इतना बयान करनेमे भी आत्माका अनुभव नही । इसका तो भीतरमे उपयोग बने कि मैं ज्ञानमात्र हू और जाननका जो स्वरूप है वह ही लक्ष्यमे लेवें, ज्ञानमात्र मैं हू, ऐसा मनन करनेसे आत्माका परिचय

मिलता है, आत्माकी पकड होती है। तो यह इस नास्ति वाले दूसरे न्यायमे अलग बात नहीं है। म [redacted] य सब पदार्थोंसे जुदा हू। इसको भी साथमें विचारना चाहिए। अरे नहा यह तो पहलेकी बात है। जब ज्ञानानुभवका अवसर आ रहा हो वहा विभक्तपनेकी बात सोचना विघ्न है। आनन्द तो आ रहा था। मै ज्ञानमात्र हू, केवल ज्ञानस्वरूप हू—ऐसा उपयोग करनेसे ज्ञानमे ही ज्ञानमे पहचानका आनन्द आनेका हो और वहाँ नास्तिका विचार करो सो वह विघ्न है। यह तो वस्तुस्वरूपके पहचाननेकी जड है।

अब दूसरी बातमे तो निर्णय कर लो कि मैं जगतमे सब पदार्थोंसे न्यारा हू। अनुभव के मार्गमे सोचनेकी आवश्यकता नहीं, यह तो निर्णयकी बात थी। मैं तो स्वचतुष्टयसे हू, परपदार्थके चतुष्टयसे नहा हू। यह बात निर्णय कर लेनेके लिए थी। पर जब ज्ञानके अनुभवके आनेका टाइम चल रहा हो उस समय स्याद्वादका आश्रय लेनेकी जरूरत नहीं। स्याद्वाद निर्णय के लिए है। निर्णय होकर फिर हमे उसके मर्ममे ही चले जाना चाहिए। फिर स्याद्वादके विकल्पोको न लिए फिरें। मैं ज्ञानपिंड हू और अन्य सब पदार्थोंसे भिन्न हू स्वभावसे निर्विकार हू। यहां क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि विकार मुझमे आते तो है, परन्तु यह मेरा भाव नहीं बन गया। स्वभाव होता तो सदाकाल ही यहाँ रहा करता। जैसे अगुली टेढी कर दे तो टेढी तो हो गई, मगर टेढी हो जाना अगुलीका स्वभाव नहीं है। अग्निकी गर्मीका निमित्त पाकर पानी गर्म हो गया। गर्म तो हो गया, पर गर्म हो जाना पानीका स्वभाव नहीं है। विकार तो आ गए पर, विकारोका आना आत्मामे स्वभाव नहीं है। मैं स्वभावसे निर्विकार हू। अपने आप सहजस्वरूप जो मेरी सत्ता है उसको मान ही हू। मैं कैसा सत् हू इस बात जब देखो तो मैं एक चैतन्यमात्र वस्तु हू, ज्ञानमात्र हू मैं निर्विकार हू ऐसा अपनेको देखना चाहिए। और मैं धनी हू मैं गरीब हू मैं लडके बच्चो वाला हू, कुटुम्ब वाला हू, परिवार वाला हू यह सब क्या है? यह सब विकारोमे फँसना है। विकार रूप ही अपनेको माननेपर आत्मा विकाररूप नहीं हुआ, विकार रूप माननेमे आत्मा कहीं विकारमय नहीं हो गया, किन्तु अपना उपयोग विकाररूप बनाना ही विकारोमे आना हुआ।

मोही तथा अज्ञानी पुरुष ही अपना उपयोग अपनेको नाना विचित्र रूपोमे मान मानकर विकाररूपमे लाते है, परन्तु ज्ञानी पुरुष मैं पुरुष नहीं हू, मैं स्त्री नहीं हू मैं बालक नहीं हू, मैं बालिका नहीं हू, मैं धनी नहीं हू, मैं गरीब नहीं हू—इस प्रकारसे सब विचित्रताओ को मना कर अपना उपयोग यथार्थ रूपमे बनाते है। मैं केवल एक चैतन्यमात्र वस्तु हू, इस मुझ चैतन्यमात्र वस्तुका अन्य वस्तुके साथ रच भी सम्बन्ध नहीं है। वे सब पदार्थ है वे अपने मे हैं, मैं एक पदार्थ हू, अपने आपमे हू। सब पूर्ण स्वतन्त्र हैं आजाद है, अपने अपने स्वत्व मे मौजूद हैं। किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं है। स्पष्ट देखो यह

वस्तुका स्वरूप है। यह प्रत्येक पदार्थ अपने सत्‌मे है, अपने स्वतत्र स्वरूपमे है, पर ऐसा न मानकर किसी दूसरेके साथ सम्बध हो, ऐसी झूठी बातें बनावें, ऐसा झूठा विश्वास बनावें, बस यही ससारके दु खोकी जड है। धन्य है वह उपयोग, धन्य है वह ज्ञान धन्य है वह आत्मा जो ससारके पदार्थोको स्वयसिद्ध स्वतत्र, यथार्थ समझते रहते हैं। ज्ञानी गृहस्थी जहा पर रहते है वह अपने कुटुम्ब, परिवार, पुत्र, स्त्री इत्यादिको भिन्न ही समझते है, धोखा देने वाले समझते है। उन्हे यह प्रतीत है कि मेरा कुछ नही है, रच भी इनसे सम्बध नही है, ये चीजें मेरी हो ही नही सकती हैं। और जो कुटुम्ब, परिवार स्त्री, बच्चो इत्यादिको ही अपना सब कुछ समझते हैं तो उनके हाथ केवल पापका कलक रहता है।

ये तो त्रिकालमे उसक नहं हो सकते है। अगर कुटुम्ब परिवार, स्त्री, बच्चोको अपना माना तो प्रॉफिटमे पापका कलक आ जायगा और ससारमे रुलनेकी बात आ जायगी, अन्य वस्तु तो आ नही सकती। अर इस ससारमे मेरा कुछ नही है। जगतके बाह्य पदार्थोको अपना माननेमे कितना प्रोफिट है ? अपना मान लेनेसे क्या वह अपने हो गए ? वह अपने तो हुए नहीं। वे अपनी सत्तामे ही है। त्रिकालमे भी वे अपने नही हो सकते है। मिथ्या समझकर अनेक विकार बन गए अनेक कषाय बन गए, ससारमे बहुत समय तक दु ख रहा, दु नेकी रजिस्ट्री करा ली। यह सब मुसीबतें आजीवन रही। अन्य वस्तुका तो कुछ अश भी मुनाफा न हुआ। जो दुनियामे कुछ चाहता है उसकी ऐसी ही हालत होती है।

एक सेठ थे, हजामत बनवा रहे थे। वह सेठ वहमी था। वह नाई बाल बना रहा था। अब सेठने जब देखा कि नाई तो बाल बना रहा है, इसमे तो मेरी जिन्दगी नाईके हाथ है। सेठ डरता है। वह सोचता है कि कही बाल बनातेमे गला न कट जाय। इस डरसे वह नाईसे कहता है कि बहुत बढिया समझकर बनाना। तुमको हम कुछ देंगे। जब नाई बाल बना चुका तो सेठ जी ने एक चवन्नी निकालकर नाईको दी। नाईने कहा कि हम चवन्नी नहीं लेंगे, हम तो कुछ लेंगे। सेठ जी एक अशर्फी, २ अशर्फी, १० अशर्फी देते हैं, पर नाई कहता है कि हम यह नही लेंगे हम तो कुछ लेगे। सेठको कुछ भूख प्यास लगी थी। नाईसे कहा कि आरेमे जो गिलास रक्खा है वह ले आओ, दूध पी ले। हम भी पी लें और तुम भी पी लो। नाईने गिलासमे जो देखा तो उसमे कुछ काला काला था। नाईने कहा कि सेठ जी इसमे तो कुछ पडा हुआ है। सेठ बोला कि कुछ है तो वह कुछ तू ही ले ले। तू कुछको अडा भी था। उठाया तो क्या निकला, कोयला। जो कुछको जिदमे पडा उसको क्या मिला, कोयला।

इसी तरह यहाके प्राणी कुछमे ही पडे हुए है। उनको मुनाफेमे मिला क्या है, मिथ्यात्व, भ्रम, सस्कार हो जाना, और कुछ नही मिला। मान लिया एक करोड है पर

इस आत्मामे आना क्या है ? उसमे नए पैसेका हजारवा हिस्सा भी नही आता। सब अपने स्वरूपमे है, किंतु मुनाफा यह मिला कि मिथ्यात्व बढ गया, अज्ञानता बढ गई, खोटे संस्कार हो गए। यही एक मुनाफा हो गया। चीजें तो कुछ मिलती ही नही। क्योंकि जगतका प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है। किसी भी पदार्थका किसी भी पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं है।

यह आत्माके स्वरूपकी बात चल रही है। इस श्लोकमे पाँच विशेषताओमे आत्मा का स्वरूप खोला गया है। जिसमे चौथा विशेषण चल रहा है कि मैं स्वतंत्र हूं। मैं स्वतंत्र कब हो सकता हूं ? जब मैं सबको स्वतंत्र निरखू तब स्वतंत्र हो सकता हूं। अर्थात् मैं अपने आप स्वतंत्र श्रद्धामे रहूं। जब हम प्रत्येक पदार्थोंको भी स्वतंत्र स्वरूप देखें कि व स्वतंत्र हैं तो मैं भी स्वतंत्र हू। मेरे घरके बच्चे तो मेरे हैं, वे तो मेरे आधीन हैं ऐसा उन्हें पराधीन माने तो खुद भी पराधीन है। अरे वे तो पर सत् हैं। जब वे पर पराधीन बन गए तो तुम भी पराधीन बन गए। यह मेरे हैं, मेरे आधीन है, सोचनेसे बच्चे पराधीन नही बने, मगर तुम पराधीन बन गए। तो अपने अनुभवसे पराधीन हो गए। जो मेरा नहीं है उसे मैंने अपना मान लिया तो पराधीन बन गए। मैं तो स्वतंत्र रहूं और जगतके पदार्थोंको पराधीन देखूं। उन्हें मैं अपने आधीन देखू तो मैं स्वतंत्र नहीं बन सकूंगा। अपने स्वरूपका अनुभव न कर सकूं। जिन लोगोंकि मोहको लिए हुए हैं कि ये सारे प्राणी राम हो जाएँ। अरे तो तू भी राम नही बना। कहते हैं कि स्त्री सीता हो जाए और पुरुष राम न बनें क्या ? पुरुष राम नहीं बने और स्त्री सीता बन जाय यह कैसे हो सकता है ? सब राम बन जावो तो स्त्रियाँ भी सीता बने। तुम सब द्रव्योंको स्वतंत्र अर्थात् उन उनके खुदके आधीन रखा तो तुम भी स्वाधीन बन सकोगे।

यह सब मेरे आधीन रहे, ऐसी कल्पना जहाँ आई तहाँ पराधीन बन गए। यह स्त्री मेरी है, ऐसी कल्पना आनेके मायने हैं स्त्रीके आधीन बन जाना। यह पुत्र मेरे हैं, यह पदार्थ मेरे हैं के मायने हैं कि पुत्रो तथा पदार्थोंके आधीन बन जाना। मैं स्वतंत्र हूं। जगतके सभी पदार्थ अपनी अपनी सत्तामे हैं। कोई दूसरेके आधीन नही। मैं पूर्ण स्वतंत्र हूं। अब पाँचवाँ विशेषण कहते हैं कि मैं सहज आनन्दस्वरूप हूं सहज स्वाभाविक आनंद स्वरूप हूं। आनंद मुझमे लाया नहीं जाता। जैसे ज्ञानी जीवका स्वरूप है तैसे आनन्द भी जीवका स्वरूप है। जीवोका सर्वप्रयोजन इसी बातमे है और इसी बातमे प्रयत्न रहना है। एक तो जाननेका और एक आनन्दका, यही दो प्रयोजन हैं इस जीवके। इन दोनो ही चीजोको प्राणी चाहता है कि जानना भी खूब हो और आनन्द भी खूब हो। सो भाई ज्ञान और आनन्द यह आत्मा मे ही हैं। आत्माका स्वभाव है और आत्मामे स्वरूप है, ज्ञान और आनंद बाहर से आता है, किन्तु जैसे हो वैसा आनेको मान लेना बस यही ज्ञान और आनन्दकी

है। इस श्लोकमे पहले विशेषणमें ज्ञान है और आखिरीमें आनन्द है। मेरा भी तो प्रयोजन ज्ञान और आनंदसे है। वे सब सर ठोक बननेके लिए और आनन्दके विकासके लिए हैं। ज्ञान और आनन्द ही जीवका वैभव है। यदि अन्य वभवके दर्शन करेगा तो तू अपने अमूल्य-वैभवको गवा देगा। केवल यह मैं ज्ञानानंदमय आत्मा हू। ऐसा ही अपनेको अनुभव करो तो अपनेमे आपने आप अपने आनंदका अनुभव कर सकते हो। देखो—जैसा नहीं हू वैसी भी भावना करूँ तो वैसा उपयोगमे बन जाता हू, तब मैं जैसा हू तैसा अनुभव करके वैसा ही उपयोग बनाऊँ तो वैसा बन जानेमे कोई सदेह है ? क्या मैं भैसा नही हू किन्तु अकेले बैठे बैठे समझ लिया कि मैं भैसा हू तो ऐसी यदि धुन बन जायगी तो वह अपने शरीरको भूल जायगा। यही सोचेगा कि मैं भसा हू। मेरा बडा पेट है। दो बडी सीगें है, एक पूँछ है, चार पैर हैं। ऐसा अगर एक चित्तमे वह अपनेको भैसा समझ लेवे तो भैसा ही भैसा नजर आयगा। मैं अपने उपयोगमे भैसा ही बनूंगा और अगर दिलमे ऐसा अनुभव आ जाय कि मदिरका दरवाजा छोटा है तो रज करेगा कि मैं कसे निकलूगा ? मैं कैसे मदिरसे बाहर निकल पाऊगा ? हमारा शरीर इतना मोटा ह, दो सीग ह, एक पूँछ है, अच्छा काला काला बडा मोटा सा हू। मैं कैसे बाहर निकल पाऊँगा ? सारी बातें सोचने सोचनेमे ही अपने आप अनुभव कर डालता है जैसा कि है नही। फिर जैसा यह है, ज्ञानरस, आनदघन, ज्ञानन्द स्वरूप, ज्ञानमय, सबसे निराला, तैसा ही अपनेको माने तब तो यह स्थाई रूपसे ऐसा ही हो जाता है। वह भसेकी कल्पना बनाए बठा था तो क्या भैसा बन गया ? भसा वह नही बन जायगा, परन्तु यह तो ज्ञानानन्दमय है और ऐसा ही मान लेवे तो स्थाई रूपसे ज्ञानमय यह आत्मा बन जायगा। तो यह मे आत्मा सहज ज्ञानानन्दरूप हू। तो यह मैं अपने मे अपने लिए रमकर अपने आप आनन्दमग्न होऊँ।

थोडेसे शब्दोमे यदि कहा जाय कि ससार क्या है ? सारी झझटें क्या ह ? तो कहा जा सकता है कि अपनी चेष्टाका फल अन्यमे होता है इसको मानना है, इस ही को ससार कहते ह। हम जो कुछ करते ह उसका असर दूसरोमे होता है, उसका फल दूसरोमे होता है। इस प्रकारकी बुद्धि होनेका नाम ही ससार है। सारी विपदाएँ है, ऐसी दृष्टिका ही नाम ससार है। ससार शब्दका अर्थ देखा जाय तो निकलता है कि ससरण ससार —परिभ्रमण करनेका नाम ससार है। बाहरी दृष्टिसे ३४३ घन राजू प्रमाण लोकमे परिभ्रमण करना ससार है और अध्यात्मदृष्टिसे अपने आपके विभावोमे आकुलित होकर फिर फिर कर विकल्पो मे बने रहनेका नाम ससार है, परिभ्रमण है।

यह सम्करण क्या लग गया ? इसका मूल कारण क्या है तो अपनी चेष्टाका फल दूसरोंमे माननेकी दृष्टि ही इसका मूल कारण है। हम एक स्वतत्र पदार्थ है। जगतके ये

भी स्वय स्वतन्त्र पदार्थ हैं। किसीका किसीसे रच भी सम्बध नही है। अपने ही तो उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे रह करके अपने ही स्वभावसे ये परिणमते रहते हैं। अपने स्वरूपकी सीमाका उल्लघन कोई नही करता है। फिर कोई वजह ही नही कि किसीके करनेसे किसीको कुछ हो जाया करता हो। परन्तु यह मोही प्राणी कुछ भी करता है तो यह समझता है कि मैं अमुक यह परिणमन कर दूगा। बस इसी दृष्टिके कारण ससारके सारे क्लेश लग गए। इसीको कहते हैं कर्तृत्व पर्तृत्व बुद्धि अर्थात् परको कुछ कर लेनेका ख्याल। मैं दूसरोको कुछ कर देता हू, दूसरे मुझे कुछ कर देते हैं—इस प्रकारका जो विकल्प चलता है खोटा अभिप्राय रहता है इस ही का नाम ससार है और इन विकल्पोसे छुट्टी लेनेका नाम ही मोक्ष है। घरमे, समाजमे, समूहमे जहाँ भी जो विवाद खडे होते हैं उन विवादोका मूल कारण देखा तो अहकार निकलेगा। अहकार बिना विवाद नही होता है। घरमे, स्त्रीमे, देवर जेठानीमे, सास बहूमे अगर विवाद खडा होता है (विवाद तो दो के बीचमे होता है ना एकसे विवाद क्या) जिससे विवाद खडा हो। समझो इसमे भी अहकार ही है। क्यो दुखी होते ? अमुक काम नही हुआ तो न हुआ सही। वह भी पदार्थ है। यह ही परिणम गया, इसमे तुम्हारा क्या बिगड गया ?

मैंने हुक्म दिया पर उसने नही माना अथवा मैं ऐसा करता था, ऐसा क्यो नही किया ? यह हो गया अहकार। यह इसके इस तरहके बर्तावसे मुझे दुख होता है यह भी हुआ अहकार। मैंने इनका इतना बडा पालन पोषण किया और इनकी सेवा करता हू और फिर भी ये मेरे अनुकूल नही चलते। यह भी हुआ अहकार। जितने विवाद होते हैं वे सब अहकारसे होते है। धधे करनेके मामले में निरतर जसी चिताए रहा करती है, इतना क्यो नही हुआ, इतना कैसे बचा बचा लिया जाय, यह कैसे कमा लिया जाय अथवा इज्जत रखना है, सारे जितने राग हैं उनका भी मूल है अहकार। क्या उनका बिगडा कि ५ लाख थे और २ लाख निकल गए तीन लाख रह गए। अरे इसमे क्यो तुम्हारा तत्त्व बिगड गया ? पर इन मायामयी मूर्तियोके बीच इस मायामय मूर्तिको जो चाह रहा है, इस मायामय शरीरको जिसने सामने रखा है और इस मायाकी दुनियामे अपनेको कुछ बताना चाहता है, वह अहकार ही उन व्याधियोका स्वय कारण है। जगतमे जितनी भी विपदायें हैं उन सब विपदावो की व्याधियोका कारण अहकार है। कर्तृत्व बुद्धिके होनेका कारण भी अहकार है। हम कुछ करते हैं फल दूसरेमे होता है। कर्तृत्वके माननेका नाम ही ससार है। परमार्थसे बात तो यह है कि हम जो करते हैं उसका फल हम ही भोगते है। हम करते क्या हैं ? क्या दुकान चलाना है, रोटी बनाना है, घरकी लीपा पोती करनी है। हम विकल्प कर लेनेका ही काम करते हैं। अभी विकल्पके अतिरिक्त अन्य काम नही करते हैं हम तो विकल्प करते हैं फिर

इसमें निमित्तसे जो कुछ होता है वह अपने आप होता है।

तुम आत्मा हो। आत्मा एक ज्ञानमय पदार्थ है। वह इस शरीरके अंदर रहते हुए भी इस शरीरसे जुदा है। यह ज्ञानमय जीव पदार्थ केवल अपने परिणाम कर पाता है। परिणाम किया कि इस शरीरमें रहने वाला यह आत्मा जो शरीरसे न्यारा है, सब प्रदेशोंमें हिल जाता है, कंप जाता है। जैसे अभी भयका परिणाम हो तो यह आत्मा हिल जाता है। कम भयका परिणाम हुआ वहां भी हिल जाता है। खुशीका परिणाम हुआ, चिंतनका परिणाम हुआ, इच्छा की वहां भी हिल जाता है। यह जीव परिणाम करता है तो उस परिणामके फलमें यह जीव कंप जाता है, हिल जाता है। प्रदेश परिस्पन्द होने लगता है। इसे कहते हैं योग। पहली बातको कहते हैं उपयोग। यह जीव केवल उपयोग और योग करता है और दूसरा काम ही नहीं करता है। मैं तो केवल उपयोग और योग करता हूं। इसके बाद जो कुछ होता है वह अपने आप होता है। देखो यह ज्ञानकी बात है। यही अमृत है। इसको पी लोगे तो अमर बन जावोगे, अमर होगे। वह अमर तो होता ही है। समझमें आ गया कि अमर है। मैं अपने स्वरूपसे हूं, अपनेमें रहता हूं। सदा अकेला ही रहने वाला हूं। यहां तो यह मैं ही मैं देखता हूं। मैं ही मैं यहां हूं। जरा आंखें खोलकर देखो, अरे यह तो शरीरमें है। व्यवहार की बात है, शरीरमें यह नहीं है। और व्यवहारसे है तो रहने दो। यह मैं इस शरीरको छोड़कर दूसरी जगहके लिए जाऊंगा तो मैं तो वही का वही हुआ। यहांसे छोड़कर दूसरी जगह पहुंच गया। मैं तो पूराका पूरा हूं। उतनाका उतना पूराका पूरा हूं। मैं अमर ही तो रहा। मरा कहां ? मगर यह दृष्टि यह विकल्प कर डालता है कि देखो हमारा कमाया हुआ यह धन छूटा जा रहा है अथवा इज्जत बनी हुई थी अब वह छूटी जा रही है। यह जब ख्याल करता है तो दुःख हो जाते हैं। नहीं तो दुःखी होनेका कुछ काम ही नहीं है। मैं यहां रहूं अथवा न रहूं इसमें उसमें क्या फर्क आयगा ? मगर बाहर जब मोहकी दृष्टि बनी होती है तब तो क्लेश उत्पन्न होते हैं। तो बाहर दृष्टि ही दृष्टि बनती है, पदार्थोंमें फेरफार कुछ नहीं होता है व्यर्थ ऊधम मचाते हैं और दुःखी होते हैं। ये ऊधम तथा दुःख कहांसे आ गए ? हमारे से हम खुद कसूर करते हैं व दुःखी होते हैं, किसीमें ठिनकनेका क्या प्रयोजन ? ऊधम किया तो दुःखी होंगे ? हां होंगे। अब दूसरोंसे क्या आशा रखते हो ? उनमें मेरे हितकी बात होगी। यदि ऐसे विचार कर लेते हो तो दुःखी हो जाते हो। अनहोनीको होनी बनाना चाहते हैं इसका तो फल दुःख ही है।

एक लड़का था। वह इस बातमें मचलने लगा कि मुझे तो हाथी चाहिए। उसका पिता हाथी ले आया। फिर लड़का बोला—इसे खरीद दो। बापने यह सुनकर हाथीको पालमें खड़ा कर दिया और कह दिया कि खरीद दिया। अब लड़केने कहा कि हाथी मेरी जेबमें रख दीजिए। अब बतावो भया ! यह काम कौन कर देगा ? उसकी जेबमें हाथी कौन

रख देगा ? जैसे लडका मचलता है हाथोको जेबमे रखनेके लिए उसी प्रकार जीव परपदार्थो को लेनेके लिए मचलता है। अरे भैया, अनहोनी बात क्यो चाहते हो ? जो होना है होगा। उसे भगवान सब कुछ जानता है, जो कुछ वह जानता है सो होगा। वह जानते है इस लिये होगा एसी बात तो नही है। किन्तु जैसा हुआ था, जो हो रहा है, जो भविष्यमे होगा सबको भगवान जानता है, यह बात है और कोई बात नही। बाह्य दृष्टिमे आपदा ही आपदा है आत्मामे धोखा है, नही। यह परिचयकी जगहमे मायारूप है, परमार्थसे तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। यहा कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब जो भगवानने जाना है वह होगा, फिर पुरुषार्थ करना व्यर्थ है। भैया जो आप करेंगे वही प्रभुने जाना है। फिर इसकी ओरसे क्यो एसी उपेक्षा कर ली जाय ? हां परवस्तुवोंसे क्या सिद्धि है, सो परके बारेमे सोचो यह जमा होता है होने दो। अन्य पदार्थ तुम्हारे सोचनेमे कमे हो नही जावेंगे। तब जैसा भी हो गया होने दो, उसके भी यह जाननेमे बिगाड कुछ होता नही। और मोह है इसलिए दुःख होता है। जैसे कोई नाच रहा हो और नाचनेम ऐडिया कुछ गलत उठ गयी हो, ठीक ठीक ठेकेके अनुसार एडी न चलें। नाचने की कलाको जानने वाले जो लोग बठे हुए हैं वे दुखी हो जावेंगे यह गलती देखकर। वे दुखी हो जाते है, इसका कारण है कि उनको भी शौक है, उनको भी अहंकार है। देखो जाननेकी कलापर ही सब कुछ निर्भर है। जगतके सब पदार्थोंसे निराला अपने आपको जो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है वह जब तक अनुभवमे नही आता तब तक कर्तृत्व बुद्धि नही मिटती। अज्ञानी सदा अपने घमडमे रहता है। कोई बडा धनी था और अब जो बिलकुल गरीब हो गया हो तो वह अनेक कल्पनाएँ करेगा कि मेरे दरवाजेपर सैकडो जूते उतरते थे, मेरा सम्मान होता था, एसा कहकर अपना बडप्पन जताता है। चाहे अब ऐसा निकले कि पापका उदय आ गया सो देखो सब खतम हो गया। यद्यपि उसके सुनानेमे इज्जत नही हैं बेइज्जती है तो भी उनकी कर्तृत्व बुद्धिका नशा है सो कहता है। वर्तमानकी बातका भी मोही अहकार करता व भविष्यका भी। वह यो बन जायगा, वह ऐसा हो जायगा, यो इज्जत वाली बात म घमड किया। इस कर्तृत्व बुद्धिमे अपने हित का मार्ग नही सूझता। तो इन ससार भावोको छोडकर हमे मोक्षमार्गम आना चाहिए। मैं जो करता हू वह तो उपयोग और योगको ही करता हू। इसके अतिरिक्त मेरा कही करनेका कुछ काम नही है। इतना काम लेनेके बाद शरीरमे जो वायु भरी है, चक्कर करने लगती है। तब आत्माके भावके अनुसार चक्कर काटना शुरू हो जाता। यो उपयोगके अनुसार योग व योग के अनुसार वायु चलती है। जब आत्माके प्रदेशमे खोखलाहट होने लगी तो यहा एक क्षेत्रम रहने वाले इस शरीरके स्कधोम भी वायुकी खोखलाहट होने लगी। जहाँ इस शरीरमे वायु भरी तो शरीरके अग भी चल उठे। जैसा उपयोग किया था उसही के अनुसार याँ

वायु चली, उसके अङ्ग चले और रन चलते हुए अगोंके बीचमे कोई रोटी जो आए उसके भी परिणमन हुए। उसको देखकर लोग कहते है कि इसने रोटी बनायी, दुकान चलाई, वस्तुवें खरीदी, इत्यादि नाना बातें लोग कहने लगते हैं। परमार्थसे अन्य कुछ नही किया। जीवने तो केवल उपयोग और योग ही किया है। उपयोग योग होनेके अतिरिक्त इस जीवके करतूत कुछ नही ह। लोकमे कहावत हो कही गयी है कि घी, शक्कर मीठा या बहूके हाथ घी शक्कर होनेके कारण पकवान मीठा है। हाथ निमित्त है। इनमे मीठा क्या है बहूके हाथ मीठे है क्या, नही। शक्कर मीठी थी। तो पकवान बहूने बनाया या शक्करने बनाया। रोटी को आटेने बनाया या बहूने बनाया। आटेने रोटीको बनाया। आटेमें रोटी बनाया। देखो हाथमे हाथ चला और रोटीम रोटी बनी। व्यर्थका ही अहङ्कार होता है कि रोटी मैंने बनाया है। रोटीका उपादान तो वह आटा ही है, हाथ तो निमित्तमात्र है।

निमित्त वह कहलाते हैं जो अलग रहा करते है। हाथ रोटीसे अब भी अलग है। लोकमे जो भी काम होता है उन सब कामोसे हाथ अलग है। निमित्त अलगको ही कहते हैं। जो भिन्न चीजें हैं सारी अलग है। तभी तो निमित्त पाकर भी यदि उपादान योग्य नही है तो काय नही होता है। आज भाई आटा नही रचा। अरे नही बना तो नही सही। कैसे बनेगा ? धूल धर दो। क्या रोटी बन जायगी। नही, क्यो ? अरे उपादान तो है ही नही। काय जितने होते है वे उस ही वस्तुमे होते है जहां कि वह कार्य है। मैं जो कुछ परिणाम करता हू, कार्य करता हू मेरा असर मुझमें ही है। मेरेसे बाहर मेरा असर नही है। मोह करके दुखी हो गया, बरबाद हो गया। दुखी हुआ तो दुनियाके अन्य किसी वजहसे कुछ नही हुआ। मोह हुआ, उस ही से दुख हुआ। मोहकी गदगी जो दुनियामें है हमारी ही है। बाहर कोई गदगी नही है। इस गदगीका कारण यह अपना मोह ही है, मोहका परिणाम ही है। इस मोहके परिणामने हम निगोद जैसी खोटी योनियोमे पहुचने वाला बना दिया। बतलाओ इसमे कौनसी स्थिति ऐसी है जो अच्छी है और सतोषके लायक है। जैसे कहावत है कि घर घरमे मिट्टीके चूल्हे, घर घरमे क्लेश हैं। घट घटमे विपदाएँ हैं। कही चले जाओ। कचहरीमे जो जज बठता है कुर्सीपर और हुकूमत करता है, अनेक लोग आकर सलाम कर रहे है और बाबू बने हुए बैठे है। देखने वाले लोग सोचते हैं कि जज साहब सुखी हैं। अरे वह सुखी नही है। वह अहकारसे भर हुए बैठे हुए ह, निरन्तर दुखी होते है, चिन्ताओसे युक्त हुआ करते हैं तो बतलाओ कि वह मजेमे कस हागे ? ऊपरी शानसे सुखी हैं, पर भीतरी मनसे वह दुखो हैं। जसे ऊपरसे चांदीका घडा दीखता है और अदर विष्ठा भरा रहता है। तो वह कसा है ? इसी तरह ससारके प्राणी ऊपरसे चिकने चुपडे लगते हैं व भीतर अशान्ति व अशाति भरी है। कहो हैं न वैसे ही लखनऊ जैसी नजाकत है।

यही बात है कि देखने मात्रमें वे सुखी है, पर भीतरसे वे विकल्प भरे हुए है मोह भर हुए है और दुखी हो रहे हैं। भीतरमे राग, द्वेष मोह इत्यादि भरे हुए हैं। विषसे भर हुए घडेकी तरह हीन परिस्थिति है। कौनसी ऐसी स्थिति है जिसमे अहंकार किया जाय, सन्तोष किया जाय, सतोष किया जाय ? जसे रास्ता भूलकर कोई पुरुष कुछ आगे बढकर चला गया है तो भूल मालूम होनेपर सामनेके बडे बगीचे, वन-उपवनोंमे अपना मुख मोड लता है, उह मुडकर भी नही देखता है। इसी प्रकार खोटे मार्गमे आसक्ती बातोंमे पडकर बहुत दूर तक चला फिरा भटका हुआ प्राणी जब यह समझ जाता है कि यह सब विषय कषाय है, भूलका मार्ग है। निज सहजस्वभावकी दृष्टि छोडकर परपदार्थोंको अपना मानना यह भारी भूल है। इस मार्गको भूल गए है। यह तो आधियों-व्याधियोंका मार्ग है। जब ऐसा सही भान होता है तो यह जीव अपने कुटुम्ब, परिवार इत्यादिसे अपना मुख मोड लेना है। अपने घर वैभवका लिहाज नहीं करता है, अपने लडकोंपर निगाह नही डालता है। यदि अपनको व्याधियोंसे रहित मार्गमे आना है तो सुमार्गकी ओर देखो। अपनी चेष्टाओंका फल दूसरोंमे होना हो, ऐसा दृष्टि पाप फैलाए हैं, यही खोटा मार्ग है, यही ससार है। यह विपरीतका मार्ग है। इसमे चलनेसे इसमे ही भटकते रहोगे।

जब समझ आती है तब ज्ञान इससे मुड जाता है। मेरी क्रियाका परिणाम मुझमे ही होना है। मेरा मित्र मैं ही हू, मेरी विपदाएँ मैं ही हू। यह ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा है। इसको ही अपने आपके लक्ष्यमे लो। इस शरीरकी समस्त आकुलताएँ समाप्त हो जायेंगी। अपनी चेष्टाओंका फल दूसरोंमें मानना खोई बुद्धि है, ससार है। अगर कुछ असयममे भी पडा रहना पडता हो, फिर भी प्रतीति तो पूर्ण सही रखनी चाहिए। अपनेको ऐसा ही प्रतीत करना चाहिए कि मैं सबसे निराला, चेतन ज्ञानस्वरूप हो, आनन्दमय भावात्मक एक विलक्षण चेतन्य पदार्थ हू जिसका यहाँ कुछ नही है, इसमे जो कुछ परिणमन होती है, चेष्टा होती है वह इस स्वरूपकी होती है। और जो असर बनता है वह इसके ही बननेकी चेष्टा हो रही है। जो होना है इसके ही प्रयोजनके लिए होना है, इसमे ही होता रहना है, इसके लिए ही होना है। जैसे सर्प कुडली बना लेता है, अपने लिए ही अपनेको घेर लेना है। इसी तरह इस जीवने जो कुछ उपयोग और योग किया वह सब अपने लिए ही अपनेमे किया। इसका इससे बाहर कुछ रास्ता नहीं है। अदर दृष्टि होनेका नाम मोक्षका मार्ग है, और बाहरमे दृष्टि फैलानेका नाम ससार है, ससारका मार्ग है। देखिए भावनासे ही यह ससार मिल जाता है और भावनासे ही मोक्षका मार्ग मिल जाता है। अब बुद्धिमानी यह होनी चाहिए कि हम किस प्राप्त पर लें ? केवल भावनासे ही मिल रहे है सब कुछ। रातको एक भाईने यह प्रश्न किया था कि हम कैसे चीजोंका सौदा करते है। सौदा तो करते है और चीज खरीदते

नही। केवल भावना ही कर लेते हैं। इसमे नफा नुक्सान कुछ होना नही।

इसी तरह केवल भावना कर लें, पर हम किसीको मारें नही, किसीका सताएँ नही। बाहरमे कुछ करना नही है। केवल भावना कर लेने है। तो उसमे नुक्सान क्यो होता ? बडे गजबकी बात यह हो गयी। नुक्सान तो सौदा लेनेपर होता कि भाव करनेपर। लेकिन यह भाव कमका बध करा देता। रोजगारमे भावना करनेसे नफा नुक्सान नही होता। नफा नुक्सान तो सौदा खरीद ही करनेसे होता है। सो भैया ! प्रथम तो यह बात है कि तू तो केवल भावनाओको बना सकता है, काम कुछ कर सकता नही है। भीतरमे विषय कषायके परिणाम भरे हुए हैं उनसे कर्मबध होता हिंसा, झूठ आदिके कारण कर्म नही बँधता। यह विचित्र रोजगार है। जीव भाव हो यह पाता है और भावसे ही नफा-नुक्सान होता है। भाव के कारण कर्मबधन है। हा यह बात जरूर है कि भाव बुरे हैं तो काय भी बुरा किया जाता है। इसीसे कहो कि हिंसा, झूठ इत्यादि भावनाओके कारण कर्मबधन है। यह रोजिगार विलक्षण है। यदि अपनी खोटी भावनाओसे हटकर सही रूपमे काय करने लगे तो नफा हो जाय, भाव खोटे नही तो बाह्य परिणतिसे पापबध नही।

ऐसे अनेक उदाहरण मालूम होंगे। सुदर्शन सेठ थे। रानीने सेठको बुला लिया। महलमे सब चेष्टायें कर ली, परन्तु सुदर्शन विरक्त ही थे। राजाने गुस्सेमे आकर शूलीका आदेश दिया। परन्तु सुदर्शन सेठका परिणाम बुरा रच भी न था। उनका विचार था व रानीसे कहा था कि मा, मैं तो नपुसक हू। उसका परिणाम निर्मल था, उसके कारण उसके कर्मबधन नही हुए। तथा परवस्तुवोके कारण मोक्षमार्गमे बाधा नही आई। और ये दुनिया विचित्र गुडे लाग परिणाम बिगाड्ने है, पर कहीं वश थोडे ही चलता है, फिर भी कर्मबधन हो रहे है। जैनसिद्धात तो यह कहता है कि कायसे कर्मबन्ध नही, कर्मबधमे भावनाका कारण है। हां यह बात और है कि भावनाके बिना काय हो नही सकता। यदि साधु ईर्या-समितिसे जाते है और अचानक मार्गमे कोई कुथु प्राणी मर जाता है, प्राणिघात होते हुए भी कर्मबधन नही हुआ। उन्हे जीवहिंसाका पाप नही हुआ। कोई बिना देखे चल रहा है और उसके शरीरसे किसी प्राणीका घात भी न हो तो भी कर्म बँधेंगे। कर्मबधनका रोजगार भाव से चलता है, चीजके लेन देनसे नही। सबमे बुरा भाव बुरा पाप तो मिथ्यात्व है। अपनी चेष्टाका फल दूसरेमे देखना यह भाव भी मिथ्यात्व है। इस मिथ्या आशयको त्यागकर मैं निज सहज चैतन्यस्वभावमात्र रखू और अपनेमे अपने आप सहज विश्राम पाऊँ।

मैं अपने आप किन तत्त्वोसे बना हुआ हू, किन तत्त्वो रूप हू ? इसपर विचार करनेसे जब आत्मामें देखते हैं तो यही मालूम होता है कि यह एक ज्ञानमय वस्तु है, ज्ञानसे ही रचा हुआ है, ज्ञान ही इसका सर्वस्व है। ज्ञानके मायने जानना। जानना आत्माके आधीनता है।

बात है। परपदार्थके आधीनताकी बात नहीं। जाननेमें परपदार्थ आते हैं पर जानना आत्मा की चीज है, आत्मामें उठता है, जानना आत्माके स्वभावकी कला है। इस कारण जाननेकी सीमा नहीं होती है कि इसको ही जान, आगे न जान, इससे अधिक न जान, ऐसा जाननेमें कोई सीमा नहीं है। स्वभावसे ऐसा ही जाननेका स्वरूप है। जिसे कहते हैं अनन्त ज्ञान। यदि ज्ञान कम जाने इतना ज्ञान लेनेका कोई कारण होता है। इतनी बात बतलाइए कि १० कोशका ज्ञान लेनेका काम है और ग्यारहवें कोसके जाननेका आत्माका काम नहीं है। क्यों ? अरे इसमें तो जाननेका ही मात्र स्वभाव है। सीमा बनावेगा तो स्वभाव मिट जायगा। जो है सो जाननेका स्वभाव है, जाननेका विषय सत् है, वह सब जाननेका स्वभाव है। आगे पूछने की गुंजाइश नहीं। क्यों ऐसा नहीं है। इसने हजार कोश तकका जाना, पर हजार कोशसे आगे न जाना। पूछा जा सकता है कि वह हजार कोश तक सबको जानता है इसके आगे वह किसीको नहीं जानता। इसका क्या कारण है ? यह कितना जानता है ? अरे यह सबको जानता है, विश्वके समस्त द्रव्य गुण पर्यायोंको जानता है। क्यों जानता है ? जाननेका क्या कारण है ? अरे पूछनेकी बात नहीं। अनहोनीके होनेका कारण पूछा जाता है। कुछ उल्टा बन गया है उसके ही कारण पूछा जाता है। जो स्वभावसे होने वाला है उसका कारण क्या पूछा जाय ?

मेरा स्वभाव जाननेका है। जानन ही आत्मा है। जैसे वर्णन किया जाता है ना, कि आत्मामें अस्तित्व वस्तुत्व द्रव्यत्व हैं, अगुरुलघुत्व प्रदेशवत्व प्रमेयत्व तथा असाधारण गुणमें श्रद्धा है, चारित्र है, आनन्द है, ज्ञान है। यदि इन सब गुणोंमें से केवल एक गुण ज्ञानको न हो, ज्ञानको न मानो, ज्ञानको बाहर निकाल दो और वह कि सब गुणोंसे रहा, अस्तित्वसे रहो, तो न रह सकेगा एक ज्ञानभरको न रहने दो, निकाल दो, नहीं है, ऐसा मान लो अपनी कल्पनाएँ करलो तो अस्तित्व न रख सकोगे, श्रद्धा और चारित्र न रख सकोगे। देखो केवलज्ञानके न रहनेसे कितनी विपदाएं आ गयी ? ज्ञान ही जिसका एक स्वभाव है यह मैं आत्मा हूं। सारे गुणोंका अन्तर्भाव ज्ञानमें तो किया जा सकता है, पर ज्ञानका अन्तर्भाव किसी अन्य गुणमें नहीं किया जा सकता है। आध्यात्मिक शास्त्रमें तो सब कुछ यह ज्ञान ही है, श्रद्धा है, ज्ञान है, सम्यग्दर्शन है तो ज्ञान है, जीवादिके श्रद्धानके स्वभावसे ज्ञानका होना याने श्रद्धानके स्वभावसे ज्ञानके होनेका नाम सम्यग्दर्शन है और जीवादि तत्त्वके जाननेके स्वभावसे ज्ञानके होनेका नाम सम्यग्ज्ञान है। और रागादिका परिहार करनेके स्वभावमें ज्ञानका होना सो सम्यक्चारित्र है। मैं ज्ञानमय वस्तु हूं, ज्ञान ही जिसका सर्वस्व है ऐसा यह ज्ञानमय हूं। मैं तो अनन्त ज्ञानादि गुणोंका पिंड है, फिर भी तृष्णाके वशीभूत होकर अपनेमें ऐसे कैसे बखेड़े पैदा कर डाले ? दीन, दरिद्र, दुखी अपनेको कर डाला।

जिसकी वजहसे जगह-जगह भटकना रहा। सर्वत्र कल्पनाओका ही तो नाच है। दु ख है, कठिनाई है, इस तरहकी कल्पना जो कर डाला तो दु ख है। दु ख मिटाना है तो यह कल्पनाएँ बदल दीजिए। वस्तुस्वरूपके अनुकूल कल्पनाए कर ली जाएँ तो दु ख मिट जायगा। वस्तुस्वरूपके विपरीत ही कल्पना की तो दु ख हो गए। असारको सार समझकर जहाँ कल्पनाएँ की वहा दु ख हो गया और जहाँ इन कल्पनाओको बदल दिया जाय तो दु ख मिट जायगा। यह दु ख और सुख कैसे कल्पनाकी हवामे चल रहे है? कल्पना कर ली दु ख हो गया। सही बात सोच लिया, लो आनन्द हो गया। यह जीव अनन्तज्ञान, अनतदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्त सुखोका पिड है। लेकिन कोई ऐसा न माने तो वही दुखी रहेगा। जसे ज्ञानकी सीमा नही है इसी तरह अनन्त ज्ञानसे अनन्त जानने वाले आत्माके दर्शन भी अनन्त हैं। आनन्द अनन्त है। आनन्दका अत तो उसका होता है जो आनन्द झूठा हो, पराधीन हो, कल्पनामात्रसे हुआ हो। जिसकी मूल जड कुछ नही है। केवल सकल्पका ही फल है। ऐसे सुखका तो अन्त आया करता है पर जो आनन्द आत्मासे उत्पन्न हो, आत्माके आधीन हो ऐसे सुखका अत नही आया करता है और उस आनन्दकी सीमा भी नही रहती है। जसे गुडसे शक्करमे रस ज्यादा होता है। उसस मिश्रीमे रस ज्यादा है तो उस रसकी सीमा बन जाती है। इस तरह आत्मीय आनन्दमे तो भेद नही सो आत्मीय आनन्दकी सीमा नही हो सकती है।

आत्मीय आनन्द कितना आया? देख लो कितना आत्मीय आनन्द है? ऋषभदेव और महावीर स्वामीने आनन्दमे अतर है। क्या राम जी और हनुमानजीके आनन्दकी सीमा है क्या, नही है और जब यह ज्ञानी जीव भी आत्मीय आनन्दका अनुभव करता है तो उसके उस आनन्दकी भी सीमा नही है। सीमा कहाँ बताई जाय? जिसकी कमी हो वहाँ सीमा है। इसी प्रकार समस्त विकासको बनाए रहनेकी ताकत ही अनन्तवीर्य है। मैं अनतानंत, ज्ञानानन्दका पिड हू। ऐसा होते हुए भी यह भगवान आत्मा केवल कल्पनाओके भुलावेमे पडकर, असार बाधाके बन्धनमे आकर दीनवत ससारमे भ्रमण करता है। जसे लोग कहते हैं कि हम अपने घरके बादशाह हैं और दूसरे लोग चाहे जो कुछ हो। अर अपने घरका भी सही पता लग जाय कि मेरा निजी स्वरूप ही घर है जो ज्ञानस्वरूप ज्ञानमात्र है। इस मेरेका किसीसे कुछ सम्बन्ध नही है। इसे कोई पहचानता नही है, इससे कोई बोल चाल होती ही नही, है। मैंने कभी किसीको कुछ किया हो नही। कोई मुझसे अब तक बोला चाला ही नही। मैं सबसे निराला, ज्ञानस्वरूप ज्ञानमात्र हू। इस जगतके प्राणियोको यदि निजी घरका पता लग जाय तो यह बात सत्य है कि वह अपने घरका सवस्व हो जाने। सारा जहान चाहे जैसा उनको माने उनसे कुछ अहित नही हो सकता है। सारा जहान अनीति कर यदि उनके विप-

रीत चले तो भी उनका कुछ अहित नही हो सकता है। अपना हित और अहित कल्पनाओंसे संकल्पसे होता है। लोग कहते हैं कि ईश्वरने सकल्प किया कि सारा ससार बन गया। ऐसी ही उसकी विचित्र लीला है। मगर कुछ नही करना पडता, हाथ पैर नही चलाने पडते। वह तो सर्वव्यापक, सच्चिदानन्दमय एक अद्भुत शक्ति है। उस ईश्वरने सकल्प किया कि ससार बन गया। जैसे कि लोग कहते है। अब इस ईश्वरके मर्मको विचारकर अपने आपका बोध कर। तू अपनेको ऐसा निरख कि मैं ज्ञानमय आत्मा हू। जिस आत्मामे हाथ पर नही हैं, केवलज्ञानका पिड है ऐसा मैं आत्मा हू। ज्ञानमे क्या जानना है? उस ज्ञानका जानना। अरे जो है सो जान लो, वस्तुवोको जान लो। ज्ञान इस आत्माका प्रधान धर्म है। इस दृष्टिसे देखो तो इस आत्मामे ज्ञान लोकालोक व्यापक है। यह आत्मा सकल्प करके ही अपने आपकी सृष्टि-रचना कर लिया करता है। और ऐसे ही सभी आत्मा हैं। तो उन आत्माओंके स्वरूपमें दृष्टि देकर विचार करो। यह ज्ञानमय स्वरूप अपने सकल्प मात्रसे सारे ससारको रचता रहता है। सकल्प ही तो करता है कर्मके बन्धन होते हैं। कैसे इसने सकल्प किया कि बधन हो गए। पुण्यका बधन होता है। कैसे सकल्प तूने किए कि पुण्य नही हो पाया। पुण्यका बन्धन होता है कैसे? सम्वर निर्जरा होगी है कैसे? अपने निर्विकल्प यथार्थस्वरूपके सकल्पमे लो। सकल्प मात्रसे अपनी सृष्टिकी रचना करते हैं। हम तो अनन्त ज्ञानके पिंड है, मगर मोहसे, तृष्णासे रहते हैं, इसलिए इस असार ससारमे घूम रह है। यो दश लक्षण प्रति वर्ष आते है। ये हमे ख्याल कराते हैं।

हे आत्मन्! तेरा क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य सयम तप त्याग आकिंचन्य व ब्रह्मचर्य जैसे पवित्र विकास रूप रहनेका स्वभाव है। ऐसे ही स्वभावमे रहे तो तेरे सारे सकट समाप्त हो जावेंगे। इस स्वभावको छोडकर अन्य बातोंमे लगे तो ससारमे भटकना ही बना रहेगा। आज इस वर्षके दशलक्षणका प्रथम दिन है, क्षमाका दिन है। क्षमा करो, माफ करो। अरे अपने प्रभुको क्षमा करो। जानने वालेको ही माफ कर। अपने आपको मैंने कितना सताया है? कितना गुस्सा किया अपने आपपर? यह अनन्तानुबधी कषाय अपने की जा रही है अपने आपपर। अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ उन्हे कहते हैं जो सम्यक्त्व नही होने देते। क्यो भैया, एक ऐसा मनुष्य है जिसके घरमे स्त्री व पुत्र दो प्राणी हैं। कमाते हैं, पैसा आता है, किरायका आता है, कमाना भी नही पडता है। किसीसे गुस्सा होनका कोई काम ही नही है। वह तो पडा रहता है। तो उसमे सदैव क्षमा बनी रहती होगी। अरे उसमे क्षमा नहीं बनी रहती है। अपने प्रभुकी प्रभुताको भूल रहा है और अपनेपर निदयी होकर, बेदद होकर अपनी प्रभु आत्मासे विमुख हो रहा है। अपने प्रभुकी प्रभुताका बिगाड कर रहे हैं। यह कितना बडा भारी क्रोध है?

हे आत्मन् ! तू अब अपने आपको मत सता । तू तो ज्ञानमय ईश्वर-सम परमपवित्र है, तू समस्त पदार्थोंसे अत्यन्त जुदा है । विवादोंमें तू अत्यन्त परे है, तेरेमें झगड़ोंका नाम नहीं है । ऐसे अपने महान् ऐश्वर्यको तो देखो । उसकी रक्षा तो करो । अपने आपपर दया करो, अपने आपको माफ करो, अपने आपमें क्षमा आ गयी तो उत्तम क्षमा बनेगी । मैं दूसरे जीवोंके कसूरोंको बिल्कुल माफ कर देता हूं । ऐसी दृष्टि अगर अपनेमें हो, ऐसा विश्वास अगर अपनेमें हो तो वह तो मिथ्यात्व है । जैसे लोग कहते हैं कि मैंने क्षमा कर दिया । अरे वह क्षमा नहीं है । उत्तम क्षमा हो तो अपनेको क्षमाकी मूर्ति रूप बना देती है । अपने आपकी दयामें सबकी दया आ जायगी । जो अपने आपको सहजस्वरूपके दर्शनमें लगानेके लिए लालायित है उसके लिए दूसराके अपराधोंके करनेमें क्या लगेगा या दूसरेके अपराधोंको दिलमें रखेगा क्या ? दूसरोंकी क्षमा सहज बन जायगी । विषय कषायोंके परिणाममें क्या अधिक लगे हुए हो, धन कमाते हो । तो अरे धन किसके लिए कमाते हो अथवा न्यायकी सीमामें बढ़कर किसलिए इतना श्रम करते हो ? अरे जिसके लिए श्रम कर रहे हो वह तुम्हारा कोई नहीं है, कुछ नहीं है । और है तो तुम्हारी अकल ठीक करनेके लिए है । अर्थात् विपदाओंमें गिरानेके लिए वह एक निमित्त कारण है । वह तुम्हारे कोई नहीं है । अपनेको सभालो । जसी दृष्टि अपने आपको क्षमा कर देनेकी है वैसी दृष्टि परको क्षमा कर देनेकी बनाओ । अभी १०० २०० वर्ष पहले पं० दौलतराम जी, भैया भगवतीदास जी आदि थे । जिनमें यह निर्णय रहता था कि एक रुपया कमाया वही बहुत है । आज एक रु० से १० रुपया कमा लेनेका ही भाव रखे सो भी गनीमत है । एक रुपयामें एक आना मुनाफा या एक पगड़ीमें एक आना मुनाफा । यदि १६ रु० का माल बेचा तो १६ आनेका मुनाफा हो गया । बस इतना होते ही तुरत दूकान बद कर देते थे और मन्दिर जी मे आकर धर्मध्यान करते थे, स्वाध्याय व चर्चामें समय व्यतीत करते थे । वे लोग थे ज्ञानी पुरुष, उनका ध्येय दूसरा था ।

आत्माके दर्शन कर लें और उसी आत्मीय आनन्दके रसका पान कर लें तो यही आत्मानुभव पार करनेवाला है । और सब असार काम है । ऐसी धुन लगनेके कारण दूकानसे होते हुए मुनाफेको छोड़कर चले आए और मन्दिरमें बैठकर विचारोंमें लग गए । मन्दिरमें धर्मकी चर्चा होती है उसको सुना । धर्मकी चर्चा सुननेसे स्वाध्याय तो हुआ । इतना तो सतोष कर रहे हैं कि रागकी आगमें जल नहीं रहे हैं । वीतराग मन्दिरमें बैठे हुए हैं । प्रभुकी वाणी तो सुन रहे हैं । ऐसे सुन्दर चरित्रसे रहे तो जगतके सारे पाप दूर हो जावेंगे । मोहसे तो दूर हो रहे हैं । क्योंकि यह बोध तो स्पष्ट है कि जो समागम प्राप्त है वह इस ससारमें कुछ नहीं रहेगा । जैसी दृष्टि वृत्ति बने, जैसा जिसने परिणाम किया उसके

अनुसार ही जो कुछ भोगना होगा, भोगेगा। क्षमा कर अपने आपको क्षमा कर। परवस्तुवो के बारेमें, [redacted] य जीवोंके बारेमे राग, द्वेष, मोह, हठ इत्यादि न बनावें। राग होना है उसमे भी पछतावा होता है। द्वेष होते है तो अपने आपको दुखी कर लेते हैं। सो भाई अपने आप पर दया करो, अपनेको क्षमा करो। अपने आपकी ही तरह जगतके सब जीव हैं, अत सब जीवोपर क्षमा करो। क्रोध सब गुणोको जला देता है। क्रोधको अग्निकी उपमा दी जाती है। सो यह बडा भारी क्रोध किया जा रहा है कि हम अपनेको सताये चले जा रहे है। दूसरोके प्रति नाना प्रकारके राग, द्वेष, करते हो तो यह बुरा ही तो करते है। यह परमें राग द्वेष क्या है ? अपने आपको सताना है। अत अपने आपको सताते चले जा रहे हो। सो भाई बढते हो तो बढते जाओ। करोडपति हो लो अरबपति हो जाओ, मेरा कोई नुकसान नही है। यदि मेरेमे ईर्ष्याका भाव आ जाय तो इसमे अपनी हानि है। करोडपति अरबपति होना तो मामूली बात है, यह मोक्ष चाहें तो जाने दो, जावो, बडा जल्दी जावो। उसमे मेरी कोई हानि है क्या ? अरे जावो परमात्मा हो जावो या जावो अपने आपमे रमो। दूसराको बडा बना देनेमे, दूसरोके बडा हो जानेसे यहां कुछ कमी नही हो जायगी। सबके प्रति कल्याणका भाव हो, अपने आपके स्वरूपका परिचय हो क्षमा तभी पैदा होता है।

सबने अपने-अपने यहां क्षमा की महिमा गायी है। कोई कहता है कि तुम्हारे गाल मे कोई तमाचा मारे तो कहो अच्छा लो यह दूसरा गाल भी तुम्हारे तमाचेके लिये हाजिर है। यह ईसाई लोगोंके यहां कहा है। अरे तमाचा तो केवल मन बहलाने के लिए लगाया है तो लो और बहला लो। किसीने किसी प्रकार कहा, मतलब क्षमाको धर्म सबने कहा। हे आत्मन् ! निज नायको पहिचाने बिना अधेरा है। तूने अपने यथार्थस्वरूपका अनुभव नहीं किया इसलिए तेरेमे क्षमाका अनुभव नही हुआ। यदि तेरमे क्षमा नही है तो समझो तूने धर्म नही किया। इस वर्ष भी ये भादोमे दशलक्षण आए और भादो सुदी पचमीसे आए ऐसा क्या हुआ ? एक एक कल्पकालमे प्रलय काल हुआ करता है तो इस कल्पम भी प्रलय हो चुका था। प्रलयमे वर्षके अन्तिम ४९ दिन खोटे होते है। बहुत वर्षा तूफान इत्यादि चला करते है। सारे विश्वमें नही चलते। भरत व ऐरावतके आर्यखडमे प्रलयकालके ये दिन आसाढ सुदी पूर्णिमा तक खतम हो जाते हैं। फिर ४९ दिन तक अच्छी वर्षा होती है। उत्तम वृष्टि होती है। अमृत वृष्टि, दुग्ध वृष्टि होती है, जिससे कुछ शांति छा जाती है। वह ४९ दिन खत्म हो जाते है भादो सुदी चौथको। इसके बादमे आपके धर्मकी वृत्ति सिफ होती है। जो कुछ होना था इन्ही ४९ दिनोमे हो गया। अब धर्मवृद्धि होती है वह तिथि भादो सुदी पचमीको पडती है। ये दशलक्षण पर्व प्रतिवर्ष हमे धर्ममार्गका स्मरण कराने आते हैं। हमको चाहिये कि अपनी शक्तिके अनुसार हम क्षमादि धर्मोंको अपनेमे उतारें। सबमे बडी

चीज यही है कि अपने पर यथार्थ क्षमा करनो तो समझो कि सब कुछ कर लिया। हमने अनन्तज्ञानमय होकर भी, स्वभावदृष्टिसे दूर रहकर इस ससारमे घूमकर अनन्त दु ख उठाए। अब मैं अपने स्वरूपको देखकर अहकारसे दूर रहकर अपनेमे अपने आप आनन्दमग्न होऊँ।

समाधिशतकमे भो लिखा है कि जाति और धर्म वेषभूषा या पहनावाका जिनके आग्रह है उनको मोक्ष प्राप्त नही होता। मै किसी जाति वाला किसी शरीर वाला नही हू, मै आत्मा चैतन्य जातिका हू ऐसा जानू। कोई भी आग्रह हो, चाहे जानूं कि मैं ब्राह्मण हू, मैं क्षत्रिय हू, वैश्य हू, शूद्र हू अथवा किसी प्रकारका विकल्प भरे हुए हू तो उस आग्रहके कारण मोक्ष नही होता है। हालाकि यह बात ठीक है कि तमाम जातियोमे यह कोई श्रेष्ठ जाति है। और श्रेष्ठ जाति व आचरण वाले मोक्ष पात्र है। यदि सस्कार निम्न जातियोंके हुए तो मोक्ष नही है। तो भी अपने आपमे किसी भी पर्यायका आग्रह हो तो मोक्ष नही होता। मैं पुरुष हू अथवा स्त्री हू तो कोई भी विकल्प मेरे मोक्ष नही होगे। मोक्षकी बात दूर रहो। मेरा विश्वास है कि उसे सम्यक्त्व नही होगा। मेरा मेरे सहजस्वरूपके सिवाय अन्य कुछ नहीं है। अगर विश्वास नही है तो सम्यक्त्व नही है। मैं तो एक चैतन्यवस्तु हू। मै तो सबसे अछूता चैतन्यमात्र हू। वह ज्ञानी नही है जो अपनेको सबसे निराला तथा अछूता न निरखे। अपने आपको सहज चैतन्यस्वभावके रूपमे पहिचान होगी तब सम्यक्त्व है। यह बात कहो कि हँसी हँसीमें ही शांति मिल जाय तो नही मिलती। हँसी हँसीसे ही यदि यह चाहो कि मोक्ष का मार्ग मिले तो नही मिल सकता है। मेरे लिए तो आध्यात्मिक तपस्या की जरूरत है। तपस्या तब होगी जब कि यह समझो कि मै पुरुष नही हू, स्त्री नही हू, अपनेको पुरुष स्त्री मनाने वाली भावनाओका तिरस्कार कर दो। और ऐसी भावना बनाओ कि मैं मनुष्य नही हू, मैं सदा ज्ञान घन स्वरूप चेतन वस्तु हू, मेरी भावात्मक ज्योति बढे यही काम है। देखो इगलिशमे 'आई' शब्द है जिसका 'मैं' अर्थ होता है। वह आई शब्द न पुरुषलिङ्ग है, न स्त्रीलिङ्ग है। इसी तरह सस्कृतमे अह शब्द है जो कि अस्मदसे बना है वह शब्द भी न स्त्रीलिङ्ग है और न पुरुषलिंग है। तब सोचो 'म' शब्द भी जब स्त्री पुरुष दोनोंसे परे है तो वाच्य जो यह मैं चेतन वस्तु हू, सो वह मैं भी न स्त्री हू, न पुरुष हू। मैं तो चेतनात्मक जगमग स्वरूप प्रकाशमान चकचकायमान एक वस्तु हू। हे आत्मन! तरमे तो कोई विकार नही पर तेरेमे ये जो विकार हो गए, विकल्प हो गए, विषय कषाय हो गए, वह तूने भ्रमवश ही भलका लिये। तू धनके ही पीछे पडा रहा, अपने परिवारके ही पीछे पडा रहा। अरे तेरा ये धन नही, तेरा यह परिवार नही। विकल्प तो तूने स्वयं ही इस जगतमे बना लिए है। अरे यदि तू नुकसान मान लेता है तो नुकसान है और यदि नही मानता है तो कोई नुकसान नही। चाहे हजारका नुकसान है, चाहे लाखका, चाहे करोडका। उसे तू नुकसान न मान के तो सब

परद्रव्य हैं, उनसे तेरा क्या सम्बन्ध ? हे जगतके प्राणी ! तू विकल्प छोड दे तो तुझे शांति हो जायगी ।

घरमें यदि कोई बीमार हो जाय तो जिसके बचनेमें संदेह हो तो उसके परिवारका इष्ट पुरुष कितना विह्वल रहता है । वैद्य आता तो उससे पूछता है कि सच तो बता दो यह बचेगा कि नहीं । यदि बीमार मर जावे तो दुःख वियोगका तो जरूर है, किन्तु अनिर्णयका अंधेरा नहीं है । इसमें पूर्ववत् भीतरी अज्ञानकी आकुलता नहीं है । पहिले क्लेश डबल था । अब केवल वियोगका क्लेश है । यदि कोई बीमार पुरुषके बारेमें उससे यह कह जाय कि बचने की कोई आशा नहीं है । हाँ हो सकता है कि भाग्य अच्छा हो तो बच जाये । ऐसा कहनेसे उस इष्टका दिमाग खराब हो जाता था और उसके हृदयमें अशांति फैल जाती थी अब मर जानेपर भी अनिर्णयकी आकुलता तो नहीं है । अज्ञानमें होने वाली आकुलता बडी आकुलता है । मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ—इस प्रकारके विकल्पसे सही ज्ञान नहीं मिल सकता है । ऐसी अवस्थामें वह कितने ही धर्मके नामपर काम कर टाले, तपस्या कर टाली, उपवास कर डाले पर अहंकार भरे हुए हैं कि मैं शुद्ध हूँ, मैं तपस्याका काम करता हूँ, मुझे मोक्ष जाना है । तो विकल्पोंसे तो काम नहीं हो जाता । जिसका कोई आग्रह नहीं होगा वह ही निर्वाणका पात्र है । मुझे अपने आपमें विश्वास करना चाहिए कि मैं सब जीवोंकी भांति चैतन्यस्वरूप लिए हुए हूँ । इसका नाम नहीं, आकार नहीं, रूप नहीं, रस नहीं, मैं तो केवल भावात्मक चीज हूँ, ज्ञानानन्दघन मैं हूँ । यदि ऐसी ही बात हो तो म निर्वाणका पात्र हूँ, सम्यक्त्वका पात्र हूँ । सम्यक्त्व मेरेसे कहीं बाहर नहीं है ।

जैसे नदी या सागरके तटपर पहुँचनेपर फिर नदी या सागर दूर बाहर नहीं हैं । वैसे ही सम्यक्त्व ही मोक्षका एक तट है । उस तटपर पहुँचनेपर मोक्ष दूर नहीं । हाँ कोई विरला ही आत्मा आन्तरिक तपस्यामें खिसक जाय । ऐसी अवस्थामें निर्वाण कुछ दूर तो रह जाता है पर अधिक दूर नहीं रह जाता है । और अगर अधिक दूर नहीं रह जाता है तो मोक्षका मार्ग भी ज्यादासे ज्यादा निकट समझिये । यदि सम्यक्त्व बना रहे तो मोक्षमार्ग अत्यन्त निकट है । सम्यक्त्वमें सही ज्ञान है और सही में उजेला है, वही बना रहे उसे तो निर्वाणका सुख अभीसे है । निर्वाण सुखका ही रूप तो आत्मानुभव है ।

जैसे आजकल लोग प्रायः गिलासमें मसालेकी लकडीसे रसीला पानी पीते हैं । वह भरा हुआ गिलास लोग पीते हैं । उस भरे हुए गिलासमें एक रस है । गिलासमें रस भरा हुआ होता है वही तो एक सतान हो लकडी द्वारा मुँहमें जाता है । यद्यपि गिलासमें सर्वाङ्ग समृद्ध रस है और मुँहमें अंश जाता है फिर भी वह आंशिक अंश व गिलासका रस एक रूप

हो रहा है। तो देखो यह एक निर्वाणका सुख है। वह यद्यपि नत्रालव आनंदसागर कुछ आगे है मगर सम्यक्त्वके प्रभावमे उस आनन्दकी ओटमे उसका ही स्वाद लिया जा रहा है, उसका ही आनन्द लिया जा रहा है। उसके लिए निर्वाण दूर नही है। सम्यक्त्वमे ही आकुलताएँ व्याकुलताएँ नही हो पाती है और सम्यक्त्व भी निर्वाणका एक रूप है तथा सम्यक्त्व निर्वाणका एक स्वरूप है। निर्वाण कहते है सम्यक्त्वकी एकरसताको। अत सम्यक्त्वका ही नाम निर्वाण है, समझ लें तो मैं एक भावात्मक वस्तु हू। स्थानका ही नाम निर्वाण हो, सो नही है। जहाँ भगवान स्वय विराजमान है, शुद्ध भगवानकी आत्मा जहाँ विराजमान है वही अनन्ते निगोद है, किन्तु निगोदिया तो यहाँ जैसे ही निगोदियोकी तरह है अनन्त आनद लिए हुए हैं। यह जीव अपनेमे अनन्त आनन्द, भगवानके स्वरूप, सुख और केवल ज्ञानको लिए हुए है। जो अपनेको इन रूपोंमे नही समझता है वह जन्ममरणके चक्रमे पडा रहता है। आत्मा जैसी आत्मामे है जिस क्षेत्रमे है उसमे अनन्त आनन्दभरा हुआ है। निबल आत्मा की बात तो मैं नही करता, परन्तु जो आत्मा अपने आपपर विश्वास करता है, अपने आपपर दृष्टि करता है वह अनन्त आनन्द अपनेमे भरे हुए है। वह आत्मा अपनेमे ठसाठस आनन्द भरे हुए है। इस अपने अनन्तानत भगवान आत्मापर विश्वास करता हुआ, अपने आत्माको देखता हुआ चलें तो जीवनका प्रत्येक क्षण आनन्दमे प्राप्त होता चला जायगा। मैं एक ज्ञानानन्द पदार्थ हू, सत् हू, अपने स्वरूपमे हू, परके स्वरूपमे नही हू। मैं अपने ही द्रव्यसे हू और अपने ही क्षेत्रमे हू। प्रत्येक सत्मे ४ चीजें पायी जाती हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। जैसे यह चौकी है तो यह एक वस्तु हुई। जितनी लम्बी चौडी तथा मोटी है यह उसका क्षेत्र हुआ और जो काली है कि पीली है यह हुआ भाव। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव बने बिना कोई सत् नही हुआ करती है। कोई सत् है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको लिए हुए है। चाहे वह मूर्तिमान पदार्थ हो चाहे अमूर्त। प्रत्येक पदार्थमे द्रव्य, क्षेत्र काल, भावका चतुष्टय अवश्य होता है। आत्माको देखो कि मैं आत्मा गुणपर्यायमुक्त होनेसे द्रव्यरूप हू तथा क्षेत्र, काल, भाव इत्यादि को लिए हुए हू। जो गुणपर्याय है उनका मैं पिंड हू। मेरेमे विकार नही, विकल्प नही। देखो गुण पर्यायका पिंड आत्मा है। यह सब यो नही बताया जा सकेगा जैसे पुद्गलपिण्डको उठाकर बता देते है। ज्ञानसे ही समझमे आता कि इसमे जो त्रैकालिक शक्ति है वह गुण है। उसका प्रतिसमय कोई न कोई पर्याय है और परिणमता है। जिसमे शक्ति है, गुण है, पर्याय है उसको देखकर यह कहा जा सकता है कि यह आत्मा एक सत् है। इसमे अन्य द्रव्योंकी भाति द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव है। जैसे एक धोती है तो वह एक पदार्थ है। उसको फैला दिया जाय तो व्यक्तरूपसे क्षेत्र है और उसको जो काला [illegible] जो रग है वह

है। उसमे जो शक्ति है वह भाव है। इसी तरहसे यह आत्मा एक द्रव्य है। इसमे गुण,का प्रसार है, फैलाव है यही इसका क्षेत्र हुआ और इस आत्माका क्षेत्र आकाशके क्षेत्रके बराबर नही बल्कि अपने आपमे जितना फैला हुआ है उतना ही मेरा क्षेत्र है। परमार्थसे जितना मेरा ज्ञान है उतना ही मेरा क्षेत्र है। यदि मै ४–५ कोसकी दूरी तक जानता हू तो २–४ कोसका क्षेत्र है और यदि हजारो कोसकी दूरी तक जानता हू तो हजारो कोसका क्षेत्र है। और यदि विश्वके विषयमे जानता हू तो विश्वके बराबर क्षेत्र है। प्रदेशत जितनेमे यह मै द्रव्य विस्तृत हू उतना निजी असख्यात प्रदेश मेरा क्षेत्र है। हमारा रूप दु खरूप नही, क्लेश रूप नही, विकल्प रूप नही, ये सब केवल हमारे विभाव परिणाम है। इन परिणामोसे ही दु ख होते है। यदि हम ऐसे परिणाम न करें तो क्लेश नही हो सकते है, ऐसी खराब भावनाएँ हो जानेसे हम विकास नही कर पाते हैं। यदि हम विभाव न करें तो भी हम परिणमते तो प्रतिसमय ही हैं। जैसे कि प्रत्येक वस्तु प्रत्येक समय परिणमती रहती है। इस परिणमनको व इसके आधारको जो नहीं मानता है, उनका परिणमन भिन्न भिन्न रूपोमे रहता है और यदि भावात्मकताके परिणमनको देखो तो अन्य अन्य है तब भी उनका परिणमन भिन्न-भिन्न भावोमे रहता है। अहा! इस ज्ञानानन्दभावमात्र आत्माको तो देखो, यह देखनेके योग्य है, इसमे कोई विकार नही है। केवल यह आत्मा स्वरूप सत् मात्र है।

इस जगतमे जितने भी द्रव्य हैं वे सब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोको लिए हुए है। इस भावस्वरूप चैतन्यका जो ज्ञान करे वह बडे सम्यक्त्वके निकट है। बात कठिन पड रही है, मगर वस्तुसे यह काम तत्त्वकी चीज है।

जितने भी दर्शन बने, जितने भी वेदात, साख्य, बौद्ध इत्यादि बने, सबकी बुद्धि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमे मे ही तत्त्व विद्यमान है। अहो यह मै आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोसे परिपूर्ण अपने सत्मात्र हू। अपने ही द्रव्यमे मै सत् हू। प्रत्येक द्रव्य अपनेमे सत्रूप होते है। प्रत्येक द्रव्यकी अपेक्षा सत् इस आत्मामे नही होता है।

यह कमण्डल, यह दरी कोई भी हो सब अपना अपना, अलग अलग सत् रखते है। कभी कभी इस प्रकारकी दृष्टि बन जाती है कि कोई सबपदार्थोको मिलाकर अपनेको एक सत् मानते है। यदि वे स्वतत्र स्वतंत्र सत् नही मानते हैं तो वह तो ब्रह्मवाद आ गया। परद्रव्योमे सत् रूप न देना ही ब्रह्मवाद है। मै तो अपने ही क्षेत्रमे सत् हू, परके क्षेत्रमे सत् नही हू, मै अपने अकेलेमे सत् हू। यदि मै ऐसा अपने को मान लू तो मेरमे आकुलताए व्याकुलताएँ नही आवेंगी और यदि इसके विरुद्ध अपनेको मान लिया तो अनेक प्रकारकी आकुलताए व्याकुलताएँ आ जावेंगी। इस तरहसे मै अपनेको ज्ञानानन्द, चैतन्यस्वरूप निरखू और यदि मैने अपने को यह निरखा कि मैं पुरुष हू, मै स्त्री हू, मै साधु हू, मै अन्य कोई हू तो

उसका निर्वाण नहीं होगा, वह दु:खके बन्धनमे ही फस जाता है। मेरी दृष्टि बाहर नही होनी चाहिए। मुझे यह समझना चाहिए कि मै सबसे निराला चैतन्य स्वभावमय पदार्थ हू। मेरे मे धरण नही जानिया नही। मै तो सबसे जुदा हू। ऐसा ही मुझे अपने को निरखना चाहिए। मै किसी स्त्री स्वरूप नही हू, मैं किसी पुरुष स्वरूप नही हू, मै किसी अन्य रूप नही हू मै एक चैतन्यमात्र वस्तु हू—इस प्रकारसे जो अतरमे अपने आपको निरखता है वह शान्तिका मार्ग प्राप्त कर सकता है।

जैसे कुछ लोग कही बाहर चले जा रहे है, मक्खियाँ सिरपर मडरा रही है। शरीरमे बराबर मक्खियाँ चोट मार रही हैं। यदि वे व्यक्ति किसी तालाबमे जाकर डुबकी लगा लेवें तो सारी मक्खियो का प्रयास बेकार हो जाता है। वे मक्खियाँ उन पुरुषोंको कष्ट नही दे पाती ह। उसी प्रकारसे इस जगत्के जीवपर अनेक विकल्प विपदायें मडरा रही है यदि इस जगतका यह प्राणी अपने ज्ञानसागरमे डूब जावे तो अनेक प्रकारके जो विकार है, विकल्प हैं वे उन्हे परेशान नही कर पावेंगे। इस जगतका प्राणी यदि अपने ज्ञानसागरमे डूब जावे तो उसके विकल्प समाप्त हो जावेंगे और वह मोक्षको प्राप्त करेगा। मै केवल ज्ञानमात्र हू, मेरेमे अन्य अन्य रूप नही है, मैं चैतन्यस्वरूप हू—ऐसा मुझे अपने आपको मानना है। यदि अपने को यथार्थ रूप नही दिया जाता तो काम नही चलेगा।

आगे यह कहते है कि जहा कल्पनायें प्रतिभासित होती हैं वह तो मैं हू, किन्तु ये अस्थिर कल्पनायें मैं नही हू। इस समय अमृतको पीऊँ और अपनेमे अपने लिये स्वय सुखी होऊ। इस जगतके प्राणियोको कल्पना मात्रसे ही क्लेश होते हैं। जो कुछ वे कल्पनाएँ बना लेते हैं उन्हे सत्य दिखती हैं, पर वे सत्य नही होती है। उन कल्पनाओंसे उनमे उन्हें क्लेश होते है। जैसे सोते हुए व्यक्तिको स्वप्नमे सब बातें सही दिखती हैं। वह उस स्वप्नमे आनन्द मान ही जाता है। परन्तु वे सब बातें सही नही होती है। जैसे सनीमाके पर्देमे चित्र उछलता है, तो पर्दा नही उछलता है बल्कि चित्र ही उछलता है। पर्दाका स्वरूप चित्र नही हो जाता है। पर्दा तो वह है जिसपर चित्र उछलकर गये। अपनेमे यह भावना बनाओ कि मैं चैतन्यमात्र हू, मेरेमे सुख दु:ख नही है। सुख दु:ख आदि विकार मुझमे उछल जाते हैं पर मैं तो चैतन्यशक्तिमात्र आत्मतत्त्व हू। मैं सबसे निराला हू। मेरेमे मोह नही है। मैं तो अविनाशी तत्त्व हू, मिटने वाला नही हू। ऐसी श्रद्धा हे आत्मन्! तू अपने आपमे बना।

हे आत्मन्! यदि तू अपने आपको सबसे निराला शुद्ध अविनाशी समझे तो तुझे अविनाशी सुख प्राप्त होंगे। तेरेको कभी आकुलताए व्याकुलताएँ नही आवेंगी। और यदि तूने अपनेको इसके विपरीत समझा, मैं तो ससारके समस्त प्राणियोंसे मिला हुआ है, यह मेरी माँ है, यह मेरे भाई हैं, यह मेरी बुवा है, यह मेरे फूफा हैं तो उसको कष्ट ही रहेगा।

मैं तो जैसा हूँ वैसा ही सदा बना रहने वाला हूँ। मैं अन्य अन्य रूपोमे नही हूँ। हे जगतके प्राणी! यदि तू अपनेको अन्य अन्य रूपोमे मानेगा तो तुझे क्लेश प्राप्त होंगे और यदि अपनेको भगवानरूप मानकर अपनेमे ही रम गया तो तुझमे आकुलताएँ व्याकुलताएँ कभी नही आवेंगी। मैं ज्ञानमात्र हू, सबसे निराला हू—ऐसा अपने आपको निरखो। तू अपने को भगवानरूप मान। तेरे मे तो कोई विकार ही नही दिखते हैं, तू तो निर्विकार है। तेरेमे दुःख कहाँ है? तू तो सदा सुखी है। दुःखोका रच भी तेरेमे नाम नही है। तू अपनेको शुद्ध चैतन्यमात्र समझ। तेरेमे दुःख करनेकी, विकल्प करनेकी, कोई आवश्यकता नही है। तू अपने आपको भगवानस्वरूप मानकर अपनी ही अन्तर आत्मामे रम और अपनेमे अपने लिए अपने आप सदा सुखी हो। देखो जो आत्मा है वह स्थिर व एक स्वरूप है उसमे जो अस्थिर व अनेक स्वरूप भाव झलकते है वे औपाधिक हैं। वे कल्पनायें मैं नही हू, किन्तु जिस पदार्थमे कल्पनायें प्रतिभासित होती है वह मैं हूँ। जैसे फिल्मके चित्र सिनेमाका पर्दा नही है किन्तु जिसपर चित्र उछलते हैं वह परदा है। यह मात्र लौकिक दृष्टान्त है। मैं समस्त पर्यायोका स्रोत तो हूँ किन्तु किसी पर्यायमात्र नही हू। जो पर्यायमात्र अपना अनुभव करे वह परसमय अर्थात् मिथ्यादृष्टि है और जो ध्रुव स्वभावमय अपना अनुभव करे वह स्वसमय अर्थात् सम्यग्दृष्टि है। अपने सहज स्वरूपमात्र अपनी श्रद्धा करना सो परमार्थ अमृतका पान करना है। इस अमृतपानसे आत्मा अमर व अनुपम आनन्दमय हो जाता है। आनन्द तो यही इस आत्मामे है। सो अपनेको सहज चैतन्यस्वरूपमात्र निरखकर निर्विकल्प हो, अपनेमे अपने आप सुखी होऊ।

प्रत्येक जीव सुख चाहता है। सुख प्राप्त होने, इसका केवल एक ही उपाय है, दूसरा नही है। वह यह है कि मैं एक स्वतन्त्र स्वय सत् हू। मैं सबसे निराला एक जुदा पदार्थ हू, ऐसा अपने आपमे विश्वास आ जाना यह ही सुखका उपाय है। मैं ऐसा स्वतन्त्र पदार्थ हू, मैं किसी पर प्रभाव करनेके लिए स्वतन्त्र नही हू किसीको धोखा देनेके लिए नही हू। मैं स्वय एक स्वतन्त्र पदार्थ हू और जगतके सब जीव भी स्वतन्त्र स्वतन्त्र पदार्थ हैं। किसी पदार्थ का दूसरा पदार्थ न कार्य है और न कारण है। इसी प्रकार स्वतन्त्र जानते रहनेका उपयोग करना ही सुखका उपाय है। मेरा कोई कारण नही है अर्थात् मैं किसी चीजसे पैदा हुआ नही हू। ऐसा निरखना ही ज्ञान है और ऐसा निरखने से ही सुख है। यह मैं किसी दूसरे पदार्थसे पैदा हुआ हू ऐसी बात नही है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे है और अपने आपमे ही परिणमते रहते हैं मैं ऐसा ही ज्ञानमय हू, सुखमय हू। जो स्वतन्त्र हू और अपने आपमे अपने द्वारा अपनी शक्तिकी व्यक्तिमे परिणमता रहता हू। मेरा जो परिणाम होगा वह ज्ञान और सुखका होगा। जैसा आत्माका स्वरूप है वैसा ही परिणमन होगा। जैसे आममे रूप गुण है

तो आममें क्या काम होगा ? नीला हो जाय, पीला हो जाय, लाल हो जाय। रूप बदलना रहेगा। यही तो आमका काम है। आममें रस है तो रस बदलता रहता है। खट्टा हो जाय, मीठा हो जाय, कैसा ही हो जाय। यही तो आमका काम है। इसी प्रकार मेरा गुण ज्ञान व आनन्द है तो मेरा क्या काम होगा ? कभी अपूर्णानन्द रहे कभी पूर्णानन्द रहे कभी अल्प ज्ञान रहे, कभी पूर्ण ज्ञान हो, यही तो मेरा काम है। यहांपर कोई दूसरा काम नहीं है। मेरे गुणसे ही ज्ञान और आनन्द बनता है। यह मैं आत्मा अपने को सोचूं कि मैं आनन्दस्वरूप हूं, स्वतन्त्र अस्तित्वको लिए हूं। हूं तो अपने आपमें हूं। अपने आपमें ही ज्ञान व आनन्द मिलता है। किसी दूसरे पदार्थमें अपनेको ज्ञान व आनन्द नहीं मिलता है। यह आत्मा ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण है। मेरेमें ज्ञान किसी दूसरे पदार्थोंमें नहीं आता है। मेरेमें जो ज्ञान और आनन्द भरा हुआ है वह दूसरे पदार्थोंके कारण नहीं है। दूसरे पदार्थ तो मेरे ज्ञान और आनन्दके बाधक बन सकते हैं। हमारे ज्ञान और आनन्दके वे साधक नहीं बन सकते हैं। परमार्थमें बाह्य पदार्थ मेरे ज्ञान और आनन्दके बाधक भी नहीं बनते, क्योंकि हम स्वयं ही कल्पनाएँ बनाकर विह्वल हो जाते हैं। मेरेमें तो आनन्द और ज्ञान है, मैं आत्मा अपने स्वरूपमें हूं। यदि किसी बाह्यमें दृष्टि न हो, मोह न हो, विकल्प न हो तो हमारा ज्ञान जितना भगवानका है उतना हो जायगा। जितना आनन्द भगवानमें है उतना हो जायगा। मैं तो सबसे जुदा हूं, फिर भी स्वयं ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण हूं। मेरी और भगवानकी जाति तो एक है, पर अन्तर इतना है कि उनके ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण अनन्त है और हमारे ज्ञान और आनन्द अल्प है। ऐसा क्यों हुआ ? हममें गल्ती यह है कि हम अपने स्वरूपको न जानकर दीन बने हुए हैं। यही गल्ती है और यही कारण है कि दुःख हो रहे हैं। जानकारी किसी भी चीजकी कर लें तो जानकारी करनेमें दीनता नहीं आती है। दीनता तो केवल अपनेमें आशामयी कल्पनाएँ बना लेनेमें आती है। दीनतामें क्लेश आ जाते हैं। यदि आशायें मिट जावें तो दीनता भी मिट जायगी। यदि हमें दीनता मिटानी है तो परकी दृष्टि छोड़ दें। परकी दृष्टिसे ही क्लेश होते हैं। अतः यदि परकी दृष्टि छोड़ दें और अपने आपके महत्त्वको समझें तो दीनता मिट जाती है। यदि अपनेमें दीनताका भाव न रहे तो आनन्द ही आनन्द है और अन्य इसका उपाय नहीं है। कितने ही उपाय कर डालें पर अधूरे ही रहेंगे। दुःख न हो, अशान्ति न हो, ऐसी अवस्था न हो ऐसा चाहते हो तो अपने आपको कृतार्थ समझकर मुझे अपने आपपर विश्वास करना चाहिए। विश्वास यह होना चाहिए कि मैं एक सत् पदार्थ हूं, सत् ही स्वरूप हूं, अपनेमें हूँ मेरेमें ज्ञान अपूर्ण नहीं, ज्ञान और सुखसे लबालब भरा हुआ हूं। हालांकि इस समय एक समस्या सामने है कि भूख तो लगती ही है, इसे भोजनमें तो दृष्टि देनी ही होती है, पर यह नहीं कि दृष्टि भोजन ही भोजनमें रहे। उपाय

तो ऐसा बने कि भोजनकी इच्छा ही न रहे और ज्ञान व आनन्द ही रहे। भोजन तो करते ही जाते और पूरा कुछ पड़ता नही, तब इतना तो करो कि भोजनमे आसक्ति न रखो। अपने पेटकी केवल पूर्ति कर लो और अपने भाव निराहार ज्ञायकस्वभावमात्रकी प्रतीतिरूप कर लो तो अमर रह सकते हो। यदि भोजन की इच्छा दूर होगी और निराहार ज्ञायकस्व भावमय आत्मतत्त्वकी दृष्टि होगी तो उसका यह परिणाम होगा कि आहार सज्ञा खत्म हो जावेगी और ऐसी स्थिति आवेगी कि यह शरीर छूट जायगा व इस ससारके सारे झगडे छूट जावेंगे और केवल आत्मा ही आत्मा रह जावेगी। यही स्थिति सर्वोत्कृष्ट है। यदि मनमे अन्य कुछ लालसा, लालच इत्यादि करनेकी भावनाएँ बने तो फिर ऐसी स्थिति कैसे आ सकती है?

लालसा करो तो इस बातकी करो कि यथार्थ दृष्टिको अपने आपमे लानेकी, अपने आपमे झुकनेकी, विकल्पोंसे छूटनेकी और अपने भावकी आत्माकी सेवा करनेकी बात बनो। और ऐसी लालसा करना कि मेरे २ लडके हो जावें, ४ लडके हो जावें, मेरी एसी स्थिति बन जाय, धन हो जाय इत्यादि ऐसी लालसा बनने से तो ठीक नहीं होगा। अरे इससे पूरा नही पडेगा। ऐसा करनेमे तो कोई न कोई काम विपदा सकट खड़े रहेंगे ही। अब यह है, अब यह है, अब यह चाहिए और अब यह मिले—इस तरहसे अनेक विकल्प खड़े ही रहेंगे। इस तरह विकल्पोंसे आकुलता ही आकुलता आयगी। हे प्रभो, हे निज नाथ! मेरेमे ऐसा बल भरो कि मेरेमे केवल अपने आपकी शक्ति आवे, किसी भी बाह्य पदार्थके विकल्प न बने। बाह्य पदार्थोंको मुझे सोचना ही न पडे। बाह्यको सोचनेसे कुछ लाभ भी नही है। सोचते होंगे कि हम लडके को पढाते हैं तो पढ़ता है। अरे लडकेका भाग्य है। अपने भाग्यसे ही पढता है। लडकेकी सेवा करते है, खुशामद करते हैं तो यह बतलाओ कि आपका भाग्य बड़ा है कि आपके लडके का भाग्य बडा है? अरे आपके लडकेका भाग्य बडा है। जिसकी सेवा करते हो, पढाते लिखाते हो, खिलाते पिलाते हो, भारी सेवायें करते हो तो उस लडकेका भाग्य अच्छा है कि आपका भाग्य अच्छा है। अरे जिसका भाग्य बड़ा है उसकी चिंता करते हो और अपने भविष्यके प्रति चिंता नही करते हो। ये सब काम होते है अपने आप होते रहेंगे। सबके भाग्य व काम जुदा जुदा हैं। चितासे पूरा भी नही पडेगा।

ऐसी बाह्य चिंताओसे फायदा नहीं है। अपने आपका चिन्तन करो कि मैं शुद्ध, ज्ञानभाव ज्ञानस्वरूप आत्मा हू। केवल आत्मदृष्टिका ज्ञानके होनेका ही स्वाद लेकर यह अनुभव करो कि मैं आनन्दमय हू, यदि बाह्य विषयोंकी स्थितिमे रहे तो आनन्द नही है। आनन्द है तो केवल अपने आपके ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिमे है, जिनकी हम पूजा करते है, जिनका आदर करते हैं, जिनका चरित्र पढते है उन्होने अपने आपपर विश्वास किया, बाह्यदृष्टि खत्म की और अपने ही ज्ञानरसका स्वाद लेकर रहे इसलिए उनका आदर करते है, उन्हे पूजते हैं। जीवनमे

एक महान उद्देश्य यह होना चाहिए कि मेरी वह स्थिति आवे जिसमें केवल अपने ज्ञानस्वरूपका ही अनुभव करता रहूं और ज्ञानस्वरूपका ही स्वाद लेता रहूं। अपने आपमें यह विश्वास हो कि मैं सबसे निराला स्वतन्त्र एक पदार्थ हूं। मेरेमें दूसरा कुछ फेर नहीं कर सकता है। मैं दूसरे लोगोंमें कुछ फेरफार नहीं कर सकता हूं। सब सत् हैं और अपने ही सत्के कारण वे निरंतर परिणमते रहते हैं। मैं किसीका कारण नहीं जो किसीको कुछ कर दे सकता हूं। मैं किसीका कार्य नहीं कि दूसरे लोग मुझे कर दिया करते हैं। सब अपने-अपने सत्के मालिक हैं। ऐसी दृष्टि यदि अपनेमें हो तो निश्चित मुक्तिका मार्ग है। समस्त जगतके जितने पदार्थ हैं वे सब अपने-अपने सत्में रहते हैं और कोई भी अपने अपने स्वरूपसे आगे नहीं जाते हैं।

हे आत्मन्! ऐसा अपने आपमें विश्वास कर कि जो मैं कर सकता हूं वह अपने को ही कर सकता हूं। दूसरे को कुछ नहीं कर सकता हूं व भोग सकता हूं तो अपने स्वरूपको ही। हाय विषयकषायोंके परिणाममें ही पड़कर जगतके सब जीव बरबाद हो गए हैं। मेरा भगवान तो अनन्त आनन्दमय है। इन सब परपदार्थोंसे मेरा कुछ सम्बंध नहीं, कुछ लेना देना नहीं, सब अपने अपने सत्में है, सब कुछ न्यारा न्यारा है, फिर भी बाह्य पदार्थोंके बारेमें ये कल्पनाएँ उठ जाती हैं कि यह मेरी है, यह उसकी है। यह एक बहुत बड़ी विपत्ति छायी है। इन बाह्य पदार्थोंमें मेरा कुछ नहीं है। अपने ज्ञानरसका परिचय यदि नहीं है तो कुछ नहीं है। यदि बाह्य पदार्थोंमें दृष्टि होगी, बाह्यकी आशा होगी तो अनन्त दुःख होंगे। सुखका उपाय अपनी स्वतन्त्रताका विश्वास है। जगतके सभी पदार्थोंको अपनी स्वतन्त्रताका विश्वास हो तो क्लेश नहीं है और यदि अपने स्वरूपसे छूट गए तो क्लेश ही क्लेश रहेंगे। यदि दूसरे पदार्थोंमें ही लग रहे तो आकुलताएं आयेंगी। सो यह सुख और दुःख किसका फल है? अरे दुःख सुख सो मोहका ही फल है। जगतके जीवोंको देखो बाह्यमें मोह करके दुःखी और सुखी होते हैं। देखो इस जगतके जीवोंका जो दुःख होते हैं वे उनके मोह और मिथ्यात्वके ही परिणाम हैं। मैं अपने आपको यह अनुभव करूँ कि मेरा तो मात्र मैं ही हूं, मेरेमें ममताका परिणाम नहीं है। यदि अपने आपमें ऐसी भावना बने तो वही कल्याणका मार्ग है।

भैया! कोई एक शराबी था। सो वह एक शराबकी दूकानपर गया। बोला कि हमें अच्छी शराब दो। उसने बतलाया कि यह बहुत बढ़िया है इसे ले लो। कहा नहीं नहीं हमें बढ़िया शराब चाहिए। कहा देखो हमारी दूकानपर जो पाँच-सात पड़े हुए हैं उनसे तुम अन्दाज लगा सकते हो कि शराब बढ़िया है या नहीं। मोहमें क्या हुआ करता है? तो मोहमें आकुलताएँ होती है। मगर देखते हैं कि ये जगतके सब जीव बाह्य पदार्थोंमें ही चिंताएँ किया करते हैं, मोह किया करते हैं, दुःखी होते जाते हैं। यही सब तो मोह मदिराका परि

णाम है। फिर भी मोहके नशेमें दुष्परिणामका विश्वास यह मोही नहीं करता।

देखो अपने मोहकी बेवकूफी देखना कठिन है तो दूसरे लोगोंको देख लो कि यह उसका लड़का है, वह भी कहता है कि यह हमारा लड़का है। अरे यह बताओ कि उससे तुम्हारा क्या सम्बध है? ये तो सब जुदा जुदा हैं। उनसे तुम्हारा कोई सम्बध नहीं है। जो तुम्हारे घरमें दूसरा कोई पैदा होता तो उसमें तुम मोह करने लगते। अरे जो पैदा हुआ उसका तुम कुछ कर लेते हो क्या? यह मेरा है—यह आशय आना ही दुःखका कारण है, दूसरा कोई दुःखका कारण नहीं है। अपने बारेमें यह विश्वास करो कि मैं अपने आपमें हूं, स्वतन्त्र हूं। मैं ही अपना कारण हूं, मैं ही अपना कार्य हूं। मैं जो कुछ कर सकता हूं, अपनेको ही कर सकता हूं। मैं अपने आपको ही भोग सकता हूं। जो कर सकता है वह अपने आपको ही कर सकता है। अपने स्वरूपसे बाहर दूसरेको कुछ नहीं कर सकता है। और दूसरे लोग भी मेरा कुछ नहीं कर सकते हैं। सब वस्तु अपने अपने स्वरूपमें हैं। ऐसा यदि अपने आपका विश्वास हो तो वह अमृतका पान करता है।

जिसने इस अमृतका पान किया उसको आनन्द है। उसका ज्ञान दूसरे पदार्थोंमें नहीं आता। शिष्यको गुरु ज्ञान देता है तो गुरु केवल शिष्यका निमित्त होता है। ज्ञान तो उस शिष्यकी आत्मासे ही प्रकट होता है, गुरुसे ज्ञान नहीं प्रकट होता है। अगर गुरु दूसरोंको ज्ञान देने लगे तो २०–२५ शिष्योंको ज्ञान देनेके बादमें गुरु तो खुद कोरा रह जायेगा। गुरु यदि दूसरोंको ज्ञान दे दे तो गुरु मूर्ख बन जायेगा। शिष्यमें खुद ही ज्ञान भरा हुआ है, सो गुरुका निमित्त पाकर वह ज्ञानी बन गया। देखो कोई बालक बुद्धिमान होता, कोई मूर्ख होता। किसीको एक बारमें ही याद हो जाता, किसीको मुश्किलसे याद होता। क्या हो गया कि वह स्वयं ज्ञानमय तो है सो पूर्व जन्मकी तपस्याके तारतम्यके अनुसार उसके ज्ञान प्रकट होता है। इसी तरह मेरा स्वरूप आनन्दमय है, मेरेमें मेरे ज्ञानका ही विकास हो रहा है और मेरेमें स्वयं आनन्द वर्त रहा है। दूसरे पदार्थसे मुझे आनन्द नहीं प्रकट हो रहा है। यदि बाह्य पदार्थोंसे आनन्द प्रकट होता हो तो बतलाओ। इन बाह्य अजीव पदार्थोंमें ज्ञान और आनन्द तो है ही नहीं, तो फिर वहांसे ज्ञान और आनन्द कैसे आयगा? किसी दूसरे चेतन पदार्थसे आनन्द कैसे आ सकता है? उनका ज्ञान व आनन्द उनमें ही परिसमाप्त है। मैं स्वयं आनन्दमय हूं, मेरा आनन्द मेरेसे ही होता है दूसरोंसे मुझे आनन्द नहीं होता है।

हे प्रियतम! बाह्य पदार्थोंके विकल्प छोड़ दो और अपने ज्ञानरसका स्वाद लो। यदि अपनी सहज इस स्वतन्त्रताका विश्वास हो जाय तो यही अनुपम मार्ग है। बाहरी पदार्थोंके विकल्पसे दुःख होते हैं, बाहरी पदार्थोंसे नहीं। कोई लड़का २० हाथकी दूरी पर खड़ा हो और दूसरा भी इतनी दूरी पर खड़ा है। यदि एक लड़का दूसरेको अंगुली दिखाकर चिढ़ाए।

जिम लडकेको चिढाशा ा रहा है नह यदि विकल्प बना ले कि अरे यह तो हमे चिढा रहा है, ऐसी वल्पना बनाने मे, ऐमा ख्याल करनेसे उस दुःख होता है, दूसरे लडकेकी अगुलीसे दुःख नही होता। बडे बडे लोगो को किस कारणसे क्लेश हो रहे है तो क्या विरोधीके कारण से क्लेश हो रहे हैं। अरे उन्होंने स्वय कल्पना बना ली है कि यह मेरा विरोधी है, यह मेरे खिलाफ है, यदि यह कल्पना बना ली है तो क्लेश होते है, दुःख होते है। देखो इन दुश्मनो से दुःख नही होता है। केवल कल्पनाएँ कर लेने मे दुःख होता है।

एक राजा था। वह किसी राजापर चढाई करनेके लिए जा रहा था, सो वह सेना सहित जा रहा था। रास्तेमे जगलमे निकला। उसी जगलमे एक साधु था। जिस राजापर चढाई करने जा रहा था वह साधुके पास बैठा था। साधु उसको कुछ उपदेश दे रहा था। अब राजाके कानमे शत्रुवोके शब्द सुनाई पडे। राजाने समझ लिया कि शत्रु आ रहे है। कहाँ तो वह उपदेश सुननेके लिए विनयासनसे बैठा हुआ था और कहा वह वीरासनी होकर बैठ गया। अब राजाने शत्रुवोको देख लिया तो उठ खडा हुआ और उस राजा ने अपनी तलवार निकाल लिया। साधु बोला कि राजन् यह क्या कर रहे हो ? राजा बोला कि महाराज ज्यो ज्यो दुश्मन आ रहे है त्यो त्यो मेरा दिल भडक रहा है। मैं शत्रुवोको गर्क कर दूँगा। साधु बोला, राजन् तुम ठीक कर रहे हो कि अपने दुश्मनोको गर्क करने जा रहे हो, परन्तु एक शत्रु तो तुम्हारे अन्दर ही पडा हुआ है उसका भी तो दलन करो। राजा बोला, अरे मेरे अन्दर भी कोई दुश्मन है ? बताओ तो वह कौनसा दुश्मन है ? साधु बोला—महाराज तुम्हारा दुश्मन दूसरेको दुश्मन माननेका विकल्प है। तुम्हारा शत्रु तुम्हारा मोह है, विकल्प है। यह विकल्प ही तुम्हे चैन नही लेने देता। दूसरे शत्रु है, ऐसा ख्याल छोड दो तो कोई शत्रु नहीं है। दूसरा कोई तुम्हारा कुछ नही कर सकता है। ऐसा ख्याल छोड दो कि फलाना मेरा दुश्मन है। साधुकी बात समझमे आ गयी। अब राजा शात होकर, मुनि दीक्षा लेकर मूर्ति की भाँति बैठ जाता है। दुश्मन आते है और देखते हैं कि ... शात, मूर्ति स्वरूप बैठा हुआ है। सब उसको प्रणाम करते है। दुश्मन ... देखकर प्रणाम करके चले जाते हैं।

बतलाओ कि यदि वे राज्य हडप लेते ... रहकर सत्य विजयी बने तो विजयी है। अरे ... उन्हे दुःख होता। आकुलताएँ व्याकुलताएँ सदा बनी ...

इस कारण अपने आपमे विश्वास कर ... है, सबमे निराला हू। बाह्य पदार्थ मेरे हो ऐसी

अपने आपमे है, किसीका दूसरेसे सम्बन्ध नही है ऐसे स्वतन्त्रकी दृष्टि हो जाय तो सुख और शान्तिका मार्ग मिल सकता है और कितना ही धन संचय हो जाय कितनी ही इज्जत मिल जाय, पर अन्यकी दृष्टिमे शांति नहीं मिल सकती। हम रात दिन दूसरेका ख्याल रखकर, दूसरा या विकल्प बनाकर परेशान रहा करते है। हम सबमे केवल एक यह ही बात नहीं आ रही है। किन्ही भी परपदार्थोंका ख्याल करना, अटपटी कल्पनाएँ करना और परेशान होना इतना ही काम प्राणियोका अब तक चला आ रहा है। कोई किसी का ख्याल करता, कोई किसीका ख्याल करता, मगर दु खी होनेकी एक यह ही पद्धति सबके अन्दर पायी जा रही है। दूसरा का ख्याल करते, इष्ट अनिष्टका ख्याल करते और परेशान होते हैं। योगियोमे और प्राणियोमे इन ही बातोका तो अन्तर है। योगी सम्यग्ज्ञानकी ही पद्धतिमे चीजाको जानते है, इष्ट अनिष्टो को नही जानते हू और अपने ही स्वरूपमे मग्न रहते है। इस तरहके ये योगी सदा प्रसन्न रहते हैं और हम जगतके जीव परवस्तुका विकल्पोको लिए हुए रात दिन परेशान रहते हैं। वस्तुवोका स्वरूप देखो—प्रत्येक पदार्थ केवल अपने स्वरूपमे उत्पाद और व्यय करते हैं। अगुली चाहे अपने आप टेढी हो चाहे दूसरे मनुष्य अगुलीको दाब दें, पर अगुलीमे जो टढापन बना है वह अगुलीकी ही परिणतिसे बना है, वह इन ही स्कन्धोकी परिणतिसे बना है, उस अवस्थाका करने वाला कोई दूसरा नहीं है। परपदार्थोमे जो कुछ भी हो जाता है वह उनके स्वय अपने आपमे होता है, कोई दूसरा उसको नही करता है। एक निमित्तकी बातको देख कर यह प्राणी गर्व करता है कि मैने यह काम किया। जसे अभी हारमोनियम बज रही थी तो वह कसे बज रही थी? ये इन भाईकी आत्माकी बात देखो तो यह आत्मा तो इच्छा, ज्ञान कर रहा था जिससे योग भी कर रहा था। इससे आगे इस आत्माका काम नही। इस शरीरको देखो तो अगोमे अग हिल रहे थे इससे आगे शरीरका काम नही। हारमोनियममे पीतलके तार हैं, उसमे हवा भी जाती है तब वह स्वर देती है, इतने पर भी वह स्वर शब्द नारूसे नही प्रकट हुआ, भाषावर्गणाके स्कन्धोसे प्रकट हुआ है। जगत इन प्राणियोका देखो इच्छा और योग अपने आपमे कर रहे हैं, इसके अतिरिक्त और कुछ नही कर रहे है। इच्छा हो रही है, ज्ञान हो रहा है, अभिलाषा हो रही है। इनका निमित्त पाकर उनके आत्मप्रदेश मे कम्पन हो जाता है। इच्छा जिसके होती है उसकी आत्मामे कपन हो जाता है। जैसी अनुकूल इच्छा इस आत्मामे है उसीके अनुकूल हलन इस शरीरमे है। उस योगका निमित्त पाकर शरीरमे जो वात है सो वायु चली, वातमे कम्पन हुआ, फिर वातका निमित्त पाकर इस शरीर के अग चले, अगुलियां चली। ऐसा स्वय हो गया। इस ही तरह शरीरमें वायु चली और फिर अग भी चल पडे। उसके निमित्तसे स्वरका दबाव हुआ, सो हवा निकलने का अवकाश मिला। देखो ये सब काम सबके अपने आपमें हो रहे हैं। यहाँ हवा पास होना हुआ और यहाँ

आवाजका निकलना हुआ। इस पर भी पीतलसे शब्द प्रकट नहीं हुआ, किन्तु भाषावरण से शब्द प्रकट हुआ। कोई किसी द्रव्यको कुछ नहीं करता सब पदार्थोंके जुदा जुदा काम हो रहे हैं पर निमित्त उनका एक दूसरोंमें है जिससे यह भ्रम हो जाता है कि अमुकने यह काम किया, अमुकने यह काम किया। वस्तुवोंके स्वरूपको देखो तो परपदार्थोंमें स्वतन्त्रतासे उनका अपने आपके परिणमनसे खुद काम हो रहा है। ऐसी स्वतन्त्रताकी दृष्टि जब आती है तब ज्ञानी जीव जगतके पदार्थोंके परिणमनको देखकर न हर्ष करते हैं और न विषाद करते हैं। अब यह देखिए कि हम परेशान हो रहे हैं तो किसलिए परेशान हो रहे हैं ? अरे उनमें परेशान होनेसे क्या कुछ लाभ बना दोगे ?

प्रथम तो ऐसा ही सोचें व यत्न करें कि मेरी दृष्टि बाह्यसे हट जानी चाहिए। इसमें असफलता हो तो फिर आगे सोचें कि मैं किसके पीछे बरबाद हो रहा हूं दुःखी हो रहा हूं ? देखो पदार्थ दो तरहके हैं—(१) जीव और (२) अजीव। जीव वह कहलाते हैं जिनमें देखन हो, जानन हो और अजीव वह कहलाते हैं जिनमें जानन तत्त्व न हो। दो ही प्रकारके तो पदार्थ हैं। इनमें से जीव तो दिखता ही नहीं, जो दिखा करते हैं ये दिखने वाले पुद्गल हैं अथवा ये जो दिखते हैं भौतिक है। एक तो भौतिक है और दूसरे चेतन पदार्थ या देखने जानने वाले पदार्थ। इन दोनों प्रकारके पदार्थोंमें किस प्रकारके पदार्थोंके पीछे परेशान हो रहे हो ? विचार करो कि जीव जिन जीवोंके पीछे परेशान हैं वे दिखते ही नहीं हैं। और जीवोंके स्वरूपमें दृष्टि दो तो उनमें देखन है, जानन है, ज्ञानानन्दमय चेतन पदार्थ है। वे तो वैसे हैं तैसे ही हैं और वैसे ही सब हैं। किसीमें कोई विलक्षणता नहीं है सब एक रस वाले हैं। जब कोई विलक्षणता नहीं है तो उनमें मेरे तेरेका भेद ही नहीं हो सकता। यदि विलक्षणता हो तो मेरे तेरेका भेद हो। परन्तु जीवोंके स्वरूपको देखो कोई विलक्षणता नहीं है। ये स्वयं ज्ञानमात्र ज्ञायकस्वरूप है, कोई विलक्षणता नहीं है। भारतके, विदेशके, गाँवके ये सब ही जीव शुद्ध ज्ञानमात्र हैं, आ माने सबमें दृष्टि डालकर देखो तो शुद्ध ज्ञानमात्र है, एक स्वरूपमें हैं। तो यह मेरा तेरा पन कैसे लिख गया कि यह मेरा है यह उसका है, यह दूसरेका है अथवा यह इष्ट है, यह अनिष्ट है। स्वरूपमें दृष्टि दो तो वहां कुछ नहीं मिलेगा। प्रथम तो इस जीवको पहिचानने वाला भी कोई नहीं है। और कोई पहिचाननहार मिल जाय तो इसका ज्ञाता द्रष्टा हो जायगा तो उसकी दृष्टि भली बुरी नहीं होती है। सब प्रभु नजर आते हैं एक चेतन पदार्थ नजर आते हैं। फिर वह कैसे व्यवहार करें, कैसे मेरा तेरा माने ? अपनी बरबादी दूसरोंके कारण नहीं होती है। अपनी बरबादी अपने ही कारण होती है। जो जीव हैं वे दिखनेमें आते नहीं हैं। जीवके पीछे तो हम बरबाद नहीं हो रहे हैं परेशान नहीं हो रहे हैं, क्योंकि जीव तो दिखते ही नहीं। यदि वह दिखेगा तो ज्ञानीको दिखेगा। सो ज्ञानीकी

वृत्ति ही अलौकिक है वह परेशान होता नही ।

परमार्थकी बात तो यह है कि जो कुछ भी दिखेगा वह अपने स्वरूपमें दिखेगा । सब जीव हैं, एक रस हैं इस दृष्टिमे व्यक्तिपन हो खत्म हो जाता है । जीवके देखने वाले ज्ञानयोगी पुरुष व्यक्तियोको नहीं देखते है । वहां उसे केवल एक चित्प्रतिभास ही नजर आता है । तो वहा परेशानी कैसी ? जहाँ व्यक्ति नजर नही आते हैं वहा मेरी तेरी नजर कैसे बने ? वहा परेशानी कैसे हो ? सो जीवके विषयमे तो यह बात है कि प्रथम तो जीव दिखने ही नही हैं, जो समझमें आते ही नही हैं उनमे परेशानी कैसे हो सकती है और नजर आ जाय तो यह जीव एक रस है, चैतन्यस्वरूप है, जीवके स्वरूपके समझनेपर व्यक्तियां नजर नही आती। व्यक्तियां हैं, भिन्न भिन्न हैं, परिपूर्ण हैं, आनन्दमय हैं । आनन्दका अनुभव सबके जुदा जुदा है, स्वरूपचतुष्टय सबका भिन्न भिन्न है । ये जगतके जीव सुखी दुखी होते है । सब सच है, परन्तु जीवके स्वरूपको देखने वाले लोग, ब्रह्मके स्वरूपको समझने वाले लोग व्यक्तियोको अपने मन मे नही रख सकते है तो उन्हे एक चित्स्वरूप ही नजर आता है । सो मात्र जीवोंके पीछे लोग परेशान नही हो रहे है । अब इन पुद्गलोकी बात देखो, ये दृश्य तो है मगर ये जड बुद्धिहीन, कुछ कार्य न कर सकने वाले, कुछ ज्ञानकी कलाको न समझने वाले ऐसे तो ये जड पुद्गल हैं, इनसे मुझे कुछ मिलता भी नही है । इनसे न तो कुछ सुख है और न ज्ञान ही आता है, उनके पीछे हम क्या बरबाद होते हैं ?

मानो ये ज्ञानी मनुष्य इस कमरेमे न बैठे हो । चौकी, १०, २० और टेबुल दो-चार तथा बहुतसे अजीव पदार्थ हैं, पुद्गल रखे हुए हैं । वहा कौन बोलेगा, कौन व्याख्यान देगा और कौन सुनेगा ? अरे उन अजीवोंमे लेना देना कुछ नही है । वे जड है, वे अपने आपमे हैं, उनसे क्या होगा ? उनमे भी बरबादी नही है । हाँ उनके विषयमे विकल्पचक्रमे पडनेसे बरबादी हानी रहती है । मैं बरबाद होता रहता हू तो अपने आप होता रहता हू । दूसरोंके द्वारा मै बरबाद नही होता हू । दूसरोके पीछे विकल्पमे पडनेमे परेशानी होती है और अपना ज्ञान बनानेमे सुख होता है । जैसे पताका अथवा झंडा वायुमे भर जाता है तो फडफडाने लगता है, वायुमे उलझ जाता है तथा सुयोगसे यदि हवा बंद हो जाय या अनुकूल वायु हो तो सुधर जाता है अथवा फडफडाना बन्द हो जाता है । उसी प्रकार ज्ञान और अज्ञानका निमित्त पाकर यानी अज्ञानका निमित्त पाकर स्वयमे उलझ जाता है और ज्ञानका सुयोगसे निमित्त बना लिया तो ज्ञान सुलझ जाता है । आपको परेशान करने वाला इस दुनियामे है कौन ? ये खुद बाह्य पदार्थोंको निमित्त बनाकर परेशान होते है । यह परेशान एक उर्दूका शब्द है । इसे संस्कृतके शब्दमे ले लो तो इसमे २ शब्द है—पर और ईशान । पर जिसका ईशान बन जाय । ईशान कहते हैं स्वामीको अथवा दूसरा मालिक बन जाय । यदि दूसरको

हम अपना मालिक समझ बैठे। यही परेशान शब्दका अर्थ है और इसे परेशानी कुछ नही है। दूसरको अपना मालिक समझ लेना, खुदको परका मालिक समझ लेना, बस यही परेशानी की जड है।

धन्य है वह परिस्थिति, धन्य है वह अनुभूति जिसको केवल सहज ज्ञानस्वरूप अनुभव आ रहा है। परमें विकल्प न हो तो वह परिस्थिति धन्य है। उस ही अनुभूतिका नाम दुर्गा है। 'दुःखेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा।' जो बडी कठिनाइयोंसे पूर्ण होना है उसे दुर्गा कहते हैं। यह स्वानुभव बडी कठिनाइयोंसे प्राप्त होता है। अपने आपमें ऐसा अनुभव बन जाय कि कोई बाह्य पदार्थ उपयोगमें नही है। केवल शुद्ध ज्ञानरसका अनुभव होता रहता है, ज्ञानदृष्टि होती रहती है, इसलिए ज्ञानदृष्टिसे भी परिपूर्ण है। तब तो जीवन सफल है। अन्यथा क्या दुष्परिणाम है। उसका प्रमाण यह है कि जो अभी तक इस समाजमें यह डोल रहा है। यदि शुद्ध स्वरूपका अनुभव हो जाय तो यह शुद्ध आत्मतत्त्व इस शरीरके बंधनमे मुक्त हो जाय। यह शरीर जड है, हड्डी और माससे बना है। इसमें कोई सार नही नजर आता है। इस शरीरमें फोडा फुसी हो जावें, अनेक परेशानियाँ आवें, इसमें कोई सार नही नजर आता है। जो सुन्दर चुपडे चापडे बैठा है उसको छेद करके लख लो, इसमें कोई सार नही नजर आता है। इसमें कुछ भी नही है। इस शरीरको असार और खोपडी समझो और अपने आपको समझो कि मुझमें शुद्ध ज्ञानस्वरूप चैतन्यमय तत्त्व मौजूद है। जैसे किसी गाडी में गधा और ऊँट जोत दो या हाथी और गधा जोत दो तो जैसी स्थिति होगी ऐसी ही स्थिति मेरी भी बनाई जा रही है। कहाँ तो ऐसा शुद्ध परमात्मतत्त्व मैं हूँ और कहाँ इस असार शरीरका बंधन। बधा है फिर भी अलग रहता हूँ। इसका अनुभव करते हो तो कितने उत्कृष्ट भाव बनते हैं? मैं तो पवित्र ज्ञानमात्र शुद्ध चैतन्य पदार्थ केवल ज्ञानमय, केवल ज्ञानानन्दमय हूँ और ये पुद्गल असार हैं अहित हैं, उनसे सम्बंध हो रहा है फिर भी सम्बंध ही नहीं। यह भीतरके अपने आत्माके स्वरूपको तो तकता नही और बाहरमें असारको देखकर सर्वस्व मान रहा है। ऐसी दृष्टि हो रही है। हे नाथ! धन्य वह क्षण है जब सबको छोडकर अपने आपपर शुद्ध नजर लगेगा। यदि बाहरमें ही फसे रहेगा बरबादी होगी। बाहरमें ही पडकर नष्ट हो रहे हो। इन जीवोंमें किसके पीछे पड रहे हो वे अशुद्ध, जीव पदार्थ हैं। वे अपने आपके स्वार्थके लिए अपनी चेष्टा कर रहे हैं। इस मायामय जगतके पीछे मोहमें पडकर मोही व्यर्थ बरबाद हो रहे हैं अर्थात् अपना ख्याल बनाकर, अपनी कल्पनाएँ बनाकर ही दुःखी हो रहे हैं। तो जगतका स्वरूप जब जान लिया तो फिर कष्ट ही क्या है? जो जैसा है वैसा जानते जायें तो स्वरूपरमण होना सुगम ही है। सो अब मेरी ऐसी ही भावना हो कि अब मैं तो अपने ही स्वरूपकी रुचि करके अपनेमें ही रमकर अपने लिए अपने आप विश्राम पाकर सुखी होऊँ।

मरा माश म ही हू। मेरा अन्य कोई कुछ नहीं है। किसीके पीछे दुःख होना क्या है ? हठ हा रहा है। जगतमे कौनसे विषय एसे हैं जा मेरो इस आत्माको पूरा पार देंगे ? ज्ञान करके देख लो। संसारके लगीरे घसीटामे चिंताएँ करना हठ करना यह मेरा है यह उसका है यह सब क्या है पुण्यके उदयका ऊधम है। बडा सोच करते हैं कि यदि हठ नहीं कर तो संसारके लोग क्या कहेंगे ? भैया, मायाकी हठमे इज्जत नहा बढती। हिंसा करे मान कर अन्याय करें, द्वेष कर परिग्रही बने तो क्या जीव महान हो गया ? क्या जीवकी इज्जत हो गयी ? अरे पाप किया और मर गए मरकर कीडे मकोडे हो गए तो फिर क्या इज्जत रह गयी ? अपने धर्ममे न बिगडना यह सबसे बडी कमायी है। अपना नीतिसे, स्वभावसे, आत्मदृष्टि से न बिगडना यह सबसे बडी कमायी है। इसमें इस जीवन सुख है और परलोकमे भी सुख रहेगा अन्यथा बाह्यमे दृष्टि दो तो तुच्छ तुच्छ बातोमे भी यह प्रभु फस जाता है।

एक सुना हुआ कथानक है। एक मास्टर और एक मास्टरनी थे। दोनो ही भिन्न भिन्न स्कूलोंमे पढाने जाते थे। समझ लो इतवारका दिन हो, मास्टरने मगोडी बनानेका प्रोग्राम बनाया। बहुत अच्छा सामान बाजारसे खरीदकर मास्टरने घरमे रख दिया। अब मास्टरनी मगोडी बनाने लगी। बनाते बनाते २१ मगोडियाँ बन गयी। अब मास्टर भोजन करने बैठे १० मगोडियाँ मास्टरको परोस दिया और ग्यारह मगोडियाँ अपनेको रख लिया। कभी मजाक भी हो जाती है। जरा जरासी बातोमे जिद हो जाती है। मास्टरने कहा कि हम दस मगोडियाँ परोसी और अपने लिए ग्यारह रख लिया। मास्टरनी बोली, मैंने तो परिश्रम किया है इसलिए मैं ग्यारह खाऊँगी और आप दस खावोगे। दोनोंका निर्णय हो गया कि दोनो चुप हो जावें। जो पहले बोल देगा उसे दस मिलेंगी और जो बादमे बोलेगा उसे ग्यारह मिलेंगी। अब दोनो चुप हो गए। एक दिन हो गया, २ दिन हो जाए, भूखा मर रहा रहे हैं। तीन दिन हो गए मरनेकी हो गए मगर जिद नही छोडी। स्कूलके बालकोने देखा कि मास्टर ४ दिनसे स्कूल नही आते। वे मास्टरके घर आए। देखा दोनो मर पडे हैं। मरे नहीं थे मरण हो गए थे। सब लोग जुड गए। सब लोगोने देखा कि दोनो एक साथ मर गए। चलो इनकी अर्थी बनाकर लिटा लें और ले चलें। यद्यपि अभी मर नही थे। पर वे मरने ही चुप थे चुप रहने की जिदमे। लोगोने अर्थी बना ली और दोनाको लिटा लिया अर्थी ले गए। आग लगाने ही वाले थे कि स्त्रीने देखा कि अब हम जिन्दा नही बचेंगे। तो भाग्य की बात देखो कि अर्थी ले जाने वाले भी इक्कीस लोग थे। स्त्री झट बोली कि आप ग्यारह खा लेना हम दस खा लेंगी। लोगोंने समझा कि ये मरकर भूत हो गए है। जब लोगो ने स्त्रीके शब्दोंको सुना तो डर गए। बोले कि अरे हम सबको ये खा जावेंगे। हम इक्कीसो ही खत्म हो जावेंगे। इसलिए छोडकर सब भाग गए। दोनो ही घर गए, बोले कि

जो पहले बोला वह दस खावे और हम ग्यारह खावेंगे।

ऐसी कोई कोई घटना अपनी जिन्दगीमे हो घटित हो जाती है। बहुतसी ऐसी बातें हो जाती है जिनमे कुछ ज्ञान नही होती है और जिद पूरी हो जाती है। यह अज्ञान ही तो है। मोहकी ही तो बात है। ज्ञानकी शरण लो भैया, यदि ऐसा होगा तो क्या, न होगा तो क्या? यो परिणम गया तो क्या, न परिणम गया तो क्या है?

आपने देखा होगा कि उनमे क्षमा कर देनेका माद्दा, दूसरोको माफ कर देनेकी बात बहुत अधिक होती है जो बड़े घरानेके लोग होते है। उपद्रव और ऊधम इत्यादि ज्यादा भी होते है तो भी वे धीर रहते हैं। यह ज्ञानकी ही बात तो है। खराब प्रवृत्तिके लोग जो होते है वे छोटी छोटी बातामे अड जाया करते है। जैसे कहते है सूत न कपास कोलीसे लट्ठमलट्ठा। दो आदमी चले जा रहे थे। एक किसान था और एक जुलाहा। एक मदान मागम मिला। किसान बोला कि अगर यह मदान मिल जाय तो हम कपास बोवेंगे और कपासके कपडे बनवाएँ, व्यापार करेंगे, बेचेंगे। जुलाहा बोला कि अगर यह मैदान मुझे मिल जाय तो मैं भैंसे चराऊगा। किसान बोला कि अरे तो भैंस कैसे चरावेगा, मैं कपास बोऊँगा। जुलाहा बोला कि अच्छा देखो मेरी भैंसें चरती है या नही। रास्तेमे चले जा रहे है। हाथ चलाकर किसान बोला तो मैंने मदान हलसे जुता लिया, बीज बो दिया। कपास पैदा हो गया। जुलाहा, दस ककड उठा लता है और कहता है कि लो हमारी एक भस आ गयी, २ भसें आ गयी और बीस भसें आ गयी। दोनामे तेज लडाई हो गई।

ये जगतके प्राणी व्यथकी बातोमे ही विवाद खडा कर देते हैं। घरकी ही बात देख लो, घरमे तो गुजारा करना ही पडता है। कई बातोके लिए लडाई लडनी पडती, फिर भी एक लक्ष्य होनेसे शांत हो जाती। धमसे ही काम हो तो धमके प्रसगमे भी विवाद समाप्त हो। धमके कामोमे लगें और विवाद रहे यह सब तो आश्चयकी बात है।

अरे ये सब क्या है? अपने धर्मको छोडकर कहाँ दृष्टि डाल रहे हो? धम अपने आपकी आत्मामे है। अपने आपके स्वरूपमे दृष्टि हो तो धम है। धम बाह्यदृष्टिसे बाह्यमे मोह करनेमे नही मिलेगा। शुद्ध परिणाममे ताल्लुक रक्खा तो धम होगा। अगर क्रोध आदि कषायका बधन होगा तो धम नही होगा। अरे मैं यह चेतन पदाथ जिन पदार्थोके पीछे बरबाद हो गया, जिनमे कोई सार नही है। इस जगतमे जो जीव हैं वे दिखते नही है और जो अजीव हैं वे दिखते है, किन्तु जड हैं और जो जानने वाले समझने वाले हैं वे दीखने नही और जो समझते नही व दीखते हैं। भाई जो रफ्तार चल रही है उसमे फक करना चाहिए। अपने को अपने आपमे झुका लो तो शान्तिका माग मिलेगा अन्यथा ससारमे रुलना ही बना रहेगा।

जब तक हम अपने आपमें मुड़कर विमुख रहेंगे तब तक शांति नहीं आयगी। ज्ञानेकी बात रखने के लिए समय स्वाध्याय है, आत्मचिंतन है। यदि अपने ज्ञानमें सही ध्यान बने तो अपने आपको शांति प्राप्त होगी और यदि अपने आपमें सही ज्ञान न बना तो अशांति ही रहेगी। आत्म-कल्याणके बाहर दृष्टि करनेमें भी अपन को दुःख ही है। अत ज्ञानबलमें अपने आपको सेवकर, मैं अपने आपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं। सुखी होने का उपाय अन्य नहीं है आत्मदर्शन ही सुखका उपाय है।

अब तक भी जिन जीवोंसे सम्बन्ध हुआ उस प्रसगको याद कर लो। क्या उनमें कुछ भला हुआ? उनसे कोई हित है क्या? अबसे १० वर्ष पहले, २० वर्ष पहले जो सग था, परिचय था उस प्रसगमें कितना लाभ पाया था? इस बातका भी ध्यान कर लो। जो भी सम्बन्ध हुआ उनमें यह जीव पछताता ही रहा है व पछताया करता है। उसमें लाभ कुछ नहीं मिलता है। परिस्थितियाँ सब अलग अलग हैं लेकिन तरीका एक ही सबका है। सम्बन्ध हुआ, राग किया, द्वेष किया, घटनाएँ बनायी कार्य किए। जिन जिनसे परिचय हुआ उनमें क्लेश ही मिला, पछतावा ही मिला, अशांति ही मिली और वहाँ भी ऐसा तो जो जीव मोही है वह तो भूल भूलकर पछताता है। रागमें पड़कर यह जीव तड़पकर व्याकुल होता और परेशान होता। मगर जो ज्ञानी जीव हैं वे रागमें नहीं पड़ते। समयके अनुकूल ही अपनी अवस्था गुजार देते हैं, उन्हें कोई परेशानी नहीं होती और न दुःख ही सहने पड़ते। अज्ञानी जीव अपने आत्मतत्त्वको नहीं समझ पाता है, वह अपना जीवन यों ही गुजार देता है। अज्ञानी दूसरोंमें अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। इस सम्बन्धका फल पछतावा होना है और उसका कोई निर्णय नहीं। जिनका सम्बन्ध अन्य जीवोंसे है वे भले ही मानें कि हम सुखी है, मौजमें है, परन्तु अन्तमें उसका फल अत्यन्त पछतावा ही रहता है। इस कारण कोई भी परपदार्थ मेरा हितरूप नहीं है। जो मेरा हितरूप है वह मैं ही हूँ अर्थात् मैं अपनेमें यथार्थ हूँ, मैं स्वतन्त्र हूँ सत् हूँ चित् प्रतिभासमात्र चैतन्यस्वभावमात्र, जिसका काम केवल जानन और देखन है ऐसा मैं हूँ। हूँ अपने आपमें हूँ। यह मैं आत्मस्वरूप हितरूप हूँ। यदि इसी तरह मैं अपनी आत्माको देखूं तो यह मैं हितरूप आत्मा हूँ, सो ऐसा हितरूप मैं मूर्त पदार्थ नहीं हूँ जो आत्माको देखा जाय, पकड़नेसे जो पकड़ा जाय। नाकसे जो सूंघा जाय ऐसा मैं मूर्त पदार्थ नहीं हूँ। जो हितरूप हैं वे किसीको दिखते नहीं और जो दिखते हैं वे हितरूप नहीं। फिर मैं किसके चिंतनमें, किसके विचारमें अपने आपका नष्ट कर रहा हूँ? ये सारे विकल्प अनर्थ हैं। ये मेरे प्रयोजन को सिद्ध न करेंगे। प्रथम तो जितने विकल्प उठते हैं वे सब अनर्थ है। मेरे बाहरके सोचनेसे बाहरसे कुछ आता नहीं। जितने भी लोग काम करते है, दुकानका, दफ्तरका, घरका, समाजका वे सब अपने आप होते रहते हैं। आप तो केवल अपना ज्ञान

और गोग करते रहते ह । इच्छा कर लें और जानकारी कर लें इसके अलावा कोई काम नही करते । जो कुछ काम होने है वे अपने आप होते है । यदि मै कर्ता होता तो जो मै करूँ सो होवे । पर ५ प्रतिशत तो इच्छा माफिक होत नजर आते है और ६५ प्रतिशत नही होते या प्रतिकूल होते नजर आते है । यदि सोचा तो ५ प्रतिशत भी मेरी इच्छामे नही होते हैं, करनेसे नही होते, वहा केवल विकल्प करना है । जो अनथ है, कायकारी नही है । ऐसा सयोग सुयोग जिनका होगा वह होगा । मेरे करनेसे कुछ नही हुआ करता । मेरा करनेमे मेरा मै ही होता हू । दु ख, सुख होते, कषाय होते अशाति होती । जो कुछ होते हैं वे मेरेमे मेरे ही किएसे होते हैं, मेरेसे बाहर कुछ नही होते । परपदाथ भी मेरे कुछ नही है और न होंगे । कितनी ही बातें ऐसी हो जाती है जिनको आप बहुत दिनोंमे सोचते आते हैं पर पूरी नही होती हैं । किसी कामको १० वर्षसे सोचते आते हैं पर काम नही होना है । ये तो सब पुण्य पापके उदयके निमित्तकी बातें ह । जैसा पुण्य पापका निमित्त है तसा बाहरमे सयोग होता है ।

ये जगतके जीव अपने आप कर्मोदयवश सवत्र विचरते रहते ह । इनके जन्ममरण होते रहते हैं । जन्म होगा फिर मरण होगा । फिर जन्म होगा फिर मरण होगा । एक पचेन्द्रियका शरीर भी प्राप्त हो गया । आँखें देखनेके लिए प्राप्त हो गयी, कान सुननेके लिए प्राप्त हो गए । यह कुछ देखने लगा—यह शहर है, यह मोहल्ला है, यह फला है इत्यादि । अरे यह सब मोहका आनन्द है । यहा पर पदा हो गए । यहाँ कुछ समागम हो गया । उस समागममे इतना लीन हो गए कि अपने स्वरूपको भी खो बठे । यदि अपने स्वरूपकी चर्चा करे, अपने ही स्वरूपके निकट पहुचें तो वहाँ आकुलताओका नाम नही रहता है । अपना स्वरूप है केवलज्ञान । आत्मा सवपदार्थोंमे विलक्षण एक सत् है कि यह ज्ञान ज्ञाता ही बना रहता है । इसका और कोई काम ही नही है । सब अपनी अपनी धुनमे ह । सब पदाथ अपने अपने स्वरूपमे परिणमते है । जैसे घडीमे चाबी भर देनेमे चला करती है । तुम चाहे जो कर रहे हो घडी अपना काम कर रही है । वह खुद अपना काम कर रही है । दूसरा कोई उसके लिए नही है । जब काम कर चुकती देखा अरे २ बज गए १ बज गया अरे ३ घटा हो गया, इत्यादि । घडी अपने ही काम व्यस्त है हम चाहे कुछ भी करें । इस मोटे दृष्टान्तके आधारपर देखो जगतके प्राणी अपने अपने काममे व्यस्त ह, अपना अपना काम करते है । ये प्राणी यदि दूसरे पदार्थोंके बारेमे सोचते हैं तो मानो वे पागलपन की बातें सोचते ह ।

एक आदमी सडकके पास एक कुवे की जगहपर बैठ गया । सामने से एक मोटर आयी । कुछ लोग मोटरसे उतरकर कुवेपर पानी पीने गए । पानी पीकर मोटरमे बैठकर लोग चले गए । अब वह व्यक्ति जो कुवेंकी जगह पर बैठा था, मोटर चली जाने से दु खी हो गया । हाय मेरी मोटर चली गयी । इसी तरह इस जगतके जीव इस सडकके बीच कैसे

पड़े हुए हैं ? चारों तरफसे इस लोकमें जीव आ रहे हैं, कोई यहींसे, कोई वहांसे आ रहा है। यह पागल प्राणी मान लेता है कि यह मेरा है, यह उसका है इत्यादि। तो ऐसा सोचनेसे क्या उसका हो गया ? अरे जो आए हैं वे मिट जावेंगे। उनका अस्तित्व भिन्न भिन्न है, पर इस मोही जीवने मान लिया कि ये मेरे हैं। सो वे अपने परिणमनसे आये हैं और अपने परिणमनसे ही जायेंगे। जब जानेका टाइम होगा तब चले जावेंगे और यह व्यर्थ सोचकर दुखी बनेगा। पर यह मोही प्राणी उनके ही पीछे पागल हो रहा है, दुखी हो रहा है। यह मेरा था और चला गया। इस तरहसे व्यर्थके विकल्पसे ही मोही दुखी होते हैं। जरा अन्तरदृष्टि तो दो। हमारा इस जगतमें है क्या ? अरे यह मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूं सबसे निराला हूं सबसे जुदा हूं। ऐसी दृष्टि यदि बने तो आत्मज्ञान मैं पा सकता हूं, नहीं तो आत्माका भान पा सकना मुश्किल है। इस आत्माको स्वतन्त्रताकी दृष्टिसे देखो कि मैं आत्मा ज्ञानमय हूं, यह आत्मा ही मेरा धन है। यही मेरा निजी घर है। यह आत्मा ही मेरा निजी परिवार है। इस मेरी आत्मामें जाननकी ही व्यवस्था है। जाननके अतिरिक्त मेरा कहीं कुछ नहीं है। ऐसा मात्र ज्ञानस्वरूप अपनेको निरखें तो वहां न तो भोगका पता रहता है और न जगतका पता रहता है। किन्तु ज्ञानमात्रका अनुभव रहना व भोगना रहता है यही सिद्ध योगियोंकी स्थिति रहती है। जिनके विवेक है, ज्ञान है, समझदारी है तो वे संसारके दुःखोंसे दूर रहते हैं और जिनके भ्रम है, अज्ञानता है व इस समागममें ही पड़े रहते हैं, दुःख उठाया करते हैं, उनकी उन्नति नहीं हो सकती है। हे आत्मन् ! इन बाह्योंमें कौनसा सार है, कौन शरण है, उनमें पड़नेसे तुम्हें क्या लाभ मिलता है ? अरे इन बाह्योंसे कुछ नहीं मिलेगा। यदि अपनेमें ऐसा ज्ञान बनाओ, ऐसी हिम्मत बनाओ जिससे तुम स्वयं स्वयंमें स्थिर हो सको तो मुक्तिका मार्ग मिल जायगा, नहीं तो मुक्तिका मार्ग न मिलेगा। हे प्रभो ! मुझे मुक्ति मिले या न मिले किन्तु इतना बल होवे कि रागमें पड़कर अन्धा न बनूं द्वेषकी ज्वालामें न जलूं। राग द्वेष करना ठीक नहीं। यदि इतनी बात हो जाय तो मुक्तिका मार्ग तो मिलेगा ही, रागद्वेषमें पड़नेसे कुछ लाभ न हो सकेगा। राग जिससे करते हो उनको सामने लेकर प्राइवेट बात कर लो। उनके पीछे पड़कर क्यों रात दिन चिंतन किया करते हो ?

इतना ही ध्यान रक्खो कि ये क्या मेरे किसी हितमें काम आ सकते हैं ? मेरे कल्याणमें क्या साधक हो सकते हैं ? जब तक हम जानते हैं कि उनसे हमारा कल्याण होता है तब तक हम भूले हुए हैं। अरे उनसे हमारा भला नहीं होगा। उनके सम्पर्कसे तो हम जहांके तहां ही हैं और वहांसे भी कुछ नीचे हैं। कौनसा पदार्थ हितरूप है—निर्णय करो और निर्णय आ जाय तो परपदार्थोंमें उपेक्षा भाव कर लो। कोई मेरा हितरूप नहीं, इसलिए किसकी चिंता करके, किसका विचार करके अपने आपको बर्बाद करें ? सब ओरसे हटकर केवल ज्ञान

मात्र, प्रतिभासमात्र मैं ह—ऐसा दृढ सत्यका आग्रह रखें और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ। सुखी होनेका दूसरा उपाय अन्य नहीं है। मैं ही मान जाऊँ कि मैं सब कुछ हू, परिपूर्ण हू, अधूरापन मेरेमें नहीं है। मेरा बाहरमें करनेका कोई काम नहीं है। मैं हू, ज्ञानमय हू, ज्ञानमें ही जनता रहता हू, इसके आगे मेरा काम नहीं है। अन्यका मान लें कि मेरा काम है। इसमें गलती है। दुख ऐसा प्राकृतिक ज्ञान है। जिसमें हू मान लू तो दुख होने की कोई बात ही नहीं है। हम तो भगवानस्वरूप है। जैसा जानन भगवानका है वैसा ही मेरा है। मगर हम तो बहुतसी बातें बनाकर जानते है, जैसा है वैसा नहीं जानते हैं। सो देखो उस से भी बढ़कर बन गए हैं। कोई छोटा आदमी किसी बड़े आदमीसे स्पर्धा कर, हिम्मत करे कि मैं इससे बड़ा बन जाऊँ तो इसका फल पतन है। हम भगवानसे बढ़कर बनना चाहते है। भगवान नहीं जानता है कि यह मेरा घर है यह फलाने लालका घर है यह मेरी चीज है, यह फलाने की चीज है। मगर हम कहते है कि यह मेरा घर है यह फलाने लालका घर है यह चीज मेरी है इत्यादि। यह भगवान तो शुद्ध है, सीधा सादा सही जानता है, अकलमंद नहीं बन रहा है। जैसे वह इस मकानको ऐसा जान रहा है जैसा कि यह परिणमता है, रूप रस, गंध स्पर्श वाला है पुद्गलवाला स्कंध है जैसा है वैसा इसे जानता है प्रभु। यही जानन है। और यह मैं जो नहीं है उसे भी जाननेका विकल्प करता हू। मोही यह जानता है कि यह अमुक लालका घर है, अमुककी चीज है, अमुक लालकी चीज है। परन्तु वह प्रभु तो जो है उसे ही जानता है और जो नहीं है उसे नहीं जानता है। यह जगतका प्राणी जो है वह नहीं जानता है और जो नहीं है वह जानता है।

हे आत्मन्! २४ घटेके समयमें कुछ ही समयमें यथार्थ जानकारी कर लो, सम्यग्ज्ञान कर लो। हे आत्मन्! अपनेसे अलग चीजमें लगनेमें कोई फायदा नहीं है। मगर स्वच्छ उपयोगमें जान जावो तो रोज रोज लाभ ही मिलता रहेगा और जो मोहमें ही रहेगा तो उस अंतमें मिलेगा कुछ नहीं। जाना पड़ेगा अंतमें अकेला ही। मुट्ठी बाँधे आया है और हाथ पसारे जावेगा, यह कवियोंकी एक कल्पना है। जब बच्चा पैदा होता है तब मुट्ठी बँधी हो रहती है। कवियोंकी ऐसी कल्पना है कि जो पूर्वजन्ममें पुण्य किया है उस पुण्यको ही यह मुट्ठीमें लिए हुए है। जन्म समय उस बच्चेके पास सब पुण्य होता है परन्तु ज्यों ज्यों आयु बढ़ती है, विषय कषायके भाव बढ़ते हैं पुण्य खुलता है त्यों त्यों हाथ खुलता जाता है। वह मरते समय तक सब पुण्य खतम कर चुकेगा विषय कषायोंमें रत होकर। जिसने बचपनमें ज्ञान नहीं किया, जवानीमें विषयोंमें उपेक्षा नहीं की और चाहे जो कुछ भी जीवनमें धर्मक्रिया की हो, व्यवहार बिना यह कुछ नहीं रहता है, केवल विषयकषायोंकी आकुलताएं ही रहती है। जन्म समय बच्चा कहाँ कहाँ बोलता है। कवियोंकी कल्पना है कि बच्चा मानो है

कि 'मैं कहाँ था और कहा आ गया ? कैसा सुखसे था और अब कहाँ दु खोमे आ गया ?' बचपनमे माँ बापने खूब लाड-प्यार किया, खूब मौज किया। विवाह हो गया, स्त्री प्रसग किया और एक क्षणको भी अपने आत्मस्वरूपपर ध्यान न दिया तब, जब वृद्धावस्था आयी, दु खोंसे घिरे तब पछतावा करते ह। विषयकषायोकी भावनाएँ रखनेका ही कुफल इस वृद्धावस्थामे मिलता रहता है।

अगर बचपनसे ही अपने आपके स्वरूपके अध्ययनपर ध्यान लगता, धमके काम करता तो ऐसी परेशानी वृद्धावस्थामे नही आती। य जगनके प्राणी जन्मते समयसे ही विषय कषायोमे मोहमे रहे, आरम्भ परिग्रहमे रहे और धमके कार्योंमे न लगे। निजके स्वरूपको न देख सके तो तब अतिम अवस्थामे बरबाद होते है, दुखी होते रहते है। मरनेके समय उनकी वैसी गति हो जाती है जैसी कि मति रहती है। वे जन्ममरणके चक्रमे ही पडे रहते हैं, ८४ लाख योनियोंमे ही वे पडे रहते हैं। अनेक प्रकारके शरीरोमे जन्म ले करके जो इस मनुष्य शरीरके जन्ममे आते हैं और अपनी जिम्मेदारी नही रखते हैं, अपनी जिम्मेदारी न रखनेसे ही वे खराब होते रहते हैं और अपने भविष्यको खराब किया करते ह। जिन्होंने अपनेको उत्तम बनाकर अपने भविष्यको बनाया, अपनेको अपने आपके उपयोगमे लगाया तो उनकी सद्गति होती है और भविष्य उज्ज्वल होता है। अगर अपने भविष्यको खराब किया, आत्मतत्त्वको न समझ पाया तो उनका पतन होता है। हम अपनी जिम्मेदारी अनुभवमे लेनी चाहिए और वह जिम्मेदारी यह है कि भाई हजार पाचसौ कम आते है तो कम आने दो। नष्ट होते है तो नष्ट होने दो, उनसे तुम्हारा कोई सम्बध नही है। मेरा सम्बध तो मेरे परिणाममे है। यदि मेरा परिणाम मेरे स्वभावके अनुकूल है तो उत्तम है और यदि प्रतिकूल है तो दु ख होंगे। भाई अपने पर्यायके गवमे आकर अपनेको महान् समझना और दूसरोको तुच्छ समझना, इससे तो कोई लाभ नही है। यदि ऐसे ही विचार बन रहेंग तो अपने सही स्वरूपका पता नही हो पायगा और यदि यथार्थ विचार बनेंगे तो कोई उपद्रव नही होगा और न दु ख ही होंगे।

सब ज्ञानी है, ऐसी दृष्टि रहे और जिस दृष्टिके प्रतापसे बडा न्यायपूर्ण व्यवहार बनता है वह व्यवहार भी रहे। अगर ऐसा सत्य व्यवहार रहे तो लाभमे रहे और अगर न रहे तो मोहका स्वप्न है। जो चाहो विकल्प कर लो, मगर फल खराब ही रहेगा, कोई हित नही रहेगा। यह उपयोग सिंहासन ऐसा स्वच्छ स्वभावका है कि जिसपर ज्ञानमय प्रभु विराजमान रहते ही हैं, चाहे प्रभुका ज्ञान हो, चाहे अनोखिर ज्ञान हो, ऐसे आसनपर मोही जीव मोही जीवोको बठाकर, जगतमे रुलने वाले अज्ञानी जीवोको बैठाकर गदा कर रहा है ना। मैं अपने आपको गदा न करूं तो स्वच्छ ही बना रहूं। अपने आपको शुद्ध एव स्वच्छ बनाओ। यही तेरा सवस्व है और यही तेरा सिंहासन है।

अपने आपको यह समझो कि मैं सबसे निराला, ज्ञानानन्दघन, भावात्मक, चैतन्यस्वरूप पदार्थ हूँ। इस प्रकारकी दृष्टि अपने निज प्रभुपर रहे तो यही यथार्थ ज्ञान है। राग, द्वेष विकार इत्यादि की तरंगें तेरेमें न हों। ऐसा यह तेरा प्रभु ही याने तेरा स्वरूप ही उत्कृष्ट है। ऐसा यदि उपयोग अपने प्रभुके प्रति लगाए रहे तो हमारा उपयोग स्वच्छ होता है और सारे उपयोग पाप, अज्ञान और मोह इत्यादिसे संसारमें रुलता ही बना रहता है। अगर इस संसारमें ही भटकते रहे तो सदा अपवित्र ही बने रहेंगे। इस जगतके प्राणीको अपवित्र रहना ही सुहावना लग रहा है। इसमें ही विपत्तियाँ हैं, दुःख हैं। यदि यह प्राणी अपने उपयोगमें परलगावको टाल दे तो प्रकाश मिलेगा, ज्योति मिलेगी और मुक्तिका मार्ग मिल जायगा।

अरे अपनेको बरबाद किये जा रहे हैं। अपने आपके अन्तरङ्गमें दृष्टि नहीं लगाता है। यह एक बड़ा भारी जीवको संकट है। अरे इनको क्या संकट मानें? १० हजार रुपयेका नुकसान हो गया, अमुक गुजर गया। इनमें तू संकट मानता है। मेरी आत्मा जाननस्वरूप है, जाननको ही लिए हुए है, स्वच्छ है। जिनका संयोग है, होगा उनका कोई रोकने वाला नहीं है। अपने स्वरूपको लख, तू सर्वदा पूर्ण है। ज्ञानी होगा तो वह सदैव ही आनन्दमय होगा और प्रसन्न चित्त रहेगा, परन्तु यदि अज्ञानी है तो निरन्तर दुःख ही रहेगा। इस तरह अगर बाह्य पदार्थोंमें ज्ञान आता है कि यह मेरा है, यह उसका है तो यह एक बड़ा भारी संकट है। इन संकटोंका करने वाला मैं ही हूँ। मेरेमें संकट इन बाह्य पदार्थोंके उपयोगसे ही आता है। जो साधु जन हैं, योगी जन हैं, प्रभुके भक्त हैं वे बाह्यमें अपनेको नहीं फँसाते हैं। यही कारण है कि उनके पास संकट नहीं आते हैं। जिन बाह्यको अपने उपयोगमें लाकर संकट सहते हो, मौज मानते हो वे संकटोंको बढ़ाने वाले हैं संकटोंके हटाने वाले नहीं हैं। अरे संकटोंके बढ़ाने वालोंमें इतना मोह और हटाने वालोंसे इतनी विमुखता। जो संकटोंको देते हैं उनसे इतनी प्रीति है। ये चेतन अचेतन वैभव जो मिले हैं उनमें मोह अथवा राग मिलता है राग मिलता है जिसका फल क्लेश ही है सो क्लेश सहते जाते और उसीमें मौज मानते जाते हैं। जैसे मिर्च खाने की आदत हो जाती है। खाते जाते हैं, सी सी करते जाते हैं, आँखोंसे आँसू गिरते जाते हैं दुःखी होते रहते हैं, फिर भी खाना नहीं छोड़ते हैं। ये सब बाहरी पदार्थ हैं। इनमें जो बुद्धि करेगा उसे उपद्रव प्राप्त होंगे, दुःख होंगे संकट होंगे। संकट सहते जाते हैं और प्रीति करते जाते हैं। उनमें उच्छ्वास, खींसें, घरके तमाशे, रागके झगड़े चलते रहते हैं रिसा जाते हैं, रूठ जाते हैं और शामको फिर ला अपना लिया। इस तरहसे इन मोहियोंका काम चलता रहता है। गृहस्थीमें रहें, और परिवारके लोगोंको छोड़कर रहें, यह तो नहीं हो सकता है। रहो, पर भीतरमें ज्ञान साफ होना चाहिए।

मेरा मात्र मैं ही हूँ, मेरा सर्वस्व मुझमें ही है इसलिए अपने आपमें साफ बना रहता हूँ। अगर मैं अपने आपमें मजबूत हूँ तो किसीकी ताकत नहीं कि दुःखी करदे। ऐसी ताकत अपने आपमें बना लेनेसे दुःख नहीं हो सकते हैं। इस जगतके पदार्थ परमाणुमात्र भी मेरे नहीं है। ऐसा निर्णय अगर बन जावें तो दुःख नहीं हो सकते हैं। महिमा तो ज्ञानकी है और ज्ञान ही निर्मूल है। महिमा तो एक ज्ञानमें ही है। शुद्ध ज्ञान है तो विजय है और नहीं है तो मलीन है, ज्ञान मलीन होनेसे सबके संकट ही संकट हैं। ये संकट कोई दूसरा थोड़े ही लाता है, खुद अपनी ही तो संकल्प करे। अपनेको संक्लेश बनाता है तो उपाय यही बना और ऐसा संकल्प हो ज्ञानमात्र है ज्ञानदर्शन है अपने आप ही परिणमता रहता है, इसके बाहर मैं कुछ नहीं हूँ—ऐसा उपयोग बने।

अब क्या करना और है? भीतरमें कषायकी प्रवृत्ति होती है उसमें प्रेरित होकर क्या करते हैं, अपने भीतरमें ऐसा ज्ञान जगे कि मैं ज्ञानमय हूँ ज्ञानानन्दघन हूँ, मैं अपने परिणमनोंके अतिरिक्त कुछ नहीं करता हूँ तो वह सदा सुखी रहेगा।

एक आदमी था। वह अच्छे घरानेका था। किसी कारणसे उसको कैद हो गयी। कैदमें चक्की पिसाई जाती थी। चक्की पीसता रहता था। कभी कभी यह ख्याल आ जाता कि अरे मैं अच्छे घरानेका हूँ और चक्की पीसना पड़ता है। वह यह नहीं सोचता कि यह जेलखाना है चक्की पीसना ही पड़ेगा। वह यह सोचता कि मैं अच्छे घरानेका हूँ चक्की पीसना पड़ रहा है, दुःखी हो जाता है और रुलाई भी आ जाती है। यह सोच सोच कर दुःखी बन हो जाते हैं। उसे यदि यह मालूम हो जाय कि यह जेल खाना है। चक्की पीसना ही पड़ता है तो उसका दुःख आधा ही रह जायगा और यदि इसकी ख्यालमें परिणाम रहे तो दुःख शांत हो जाता है।

अगर यह परिणाम हो कि मैं ज्ञानमात्र हूँ मेरा आत्मा ज्ञान स्वरूप है तो ऐसा ज्ञान करने पर अज्ञानता ही रहेगी आकुलताओंका नाम नहीं रहता। जैसा मैं हूँ वैसा न सोचकर इससे विपरीत नाना माना रूपा रूप मानता हूँ तो दुःखके मारे पहाड़ टूट पड़ते हैं। ये दुःखके पहाड़ जो मायारूप हैं इनका कारण अज्ञान है। मैं अपने ज्ञानसे ही यथार्थ ज्ञानको समझूँ और अपने में अपने लिए रहूँ और स्वयं सुखी होऊँ।

लोकमें जितनी भी प्रवृत्ति है वह सब अज्ञानका फल है अर्थात् जितने काम किए जाते हैं, जितनी चेष्टाएँ की जाती हैं, जितने व्यवहार किए जाते हैं सब अज्ञानसे होते हैं। अज्ञानका फल राग है। यह बात, गम्भीर, किसी मानना है, देशका काम, जातिका काम, धर्मका काम, व्यवहारका काम, चलना, उठना, खाना, पढ़ा करना, गृहस्थ धर्मपालन, साधु धर्मपालन, यावन्मात्र जितनी भी प्रवृत्ति है सब अज्ञानका फल है। ज्ञानका फल तो निवृत्ति

है । जितना हट गए उतना तो ज्ञान है और जितना लग गए उतना अज्ञान है । जो कुछ हम कर रहे हैं वह अज्ञानका गध है, अज्ञानका फल है । ज्ञानका फल तो निवृत्ति है । प्रवृत्ति अज्ञानका फल है । यहाँ शक हो सकता है तो धार्मिक प्रवृत्तिमे भी क्या मूल अज्ञान हो सकता है ?

हम मिश्रीको जानते है तो यह ज्ञानका फल है या अज्ञानका फल है । तत्वदृष्टि करके देखो तो अज्ञानका फल है । तब सोचो कि हम ज्ञानका फल उत्पन्न करते हैं कि अज्ञानका । यदि मात्र जानना हो तो ज्ञानका फल है किन्तु इष्टपनेका भाव होना तो अज्ञान है । बहुत भीतरके सूक्ष्मकी बात कह रहा हू । हमारी वह हिंसा न हटे तो नानाका फल है कि अज्ञानका फल है ? अज्ञान का फल है । अच्छा धर्मके कितने काम बताए जाते है, कितने व्यवहार धर्मके करते हैं ? आसन लगाते है, पचपरमेश्वरकी उपासना करते हैं, मालाएँ जपते है, यह सब लोकदृष्टिमे भले ही ज्ञान है, पर है अज्ञानका फल । ज्ञान कहते किसे है ? ज्ञानका उगना क्या है ? यह हम सूक्ष्म बात बतला रहे हैं । ज्ञान एक प्रतिभास सही जाननहार है उसके होनेसे आत्मामे कुछ भी तरग कहाँ रहती ? यह तो है ज्ञानका फल और जान करके किसी भी काम को करना क्या चाहिए कि स्वाध्याय होना चाहिए । जानन होना चाहिए, साधु सेवा होनी चाहिए, देशसेवा, समाजसेवाके अन्य काम होने चाहियें आदि कुछ भी जिनका लगाव है वह है अज्ञानका फल और सब परभावमे जो निवृत्ति है वह ज्ञानका फल है ।

एक उदाहरण लो । एक रस्सी सामने पडी हुयी है, कुछ उजेला अधेरा है । रस्सी को देखकर यह भ्रम हो जाय कि यह साँप है । इस भ्रमके होनेका फल अज्ञान है । वह भ्रम मे पडकर घबडा जाता है, डर जाता है और अगर सोचे कि आखिर चलकर देखें तो कि कौनसा साप है । वहाँ गया तो गौरसे देखा । गौरसे देखा पर यह पता चला कि यह तो कोरी रस्सी है । इतना ही जाननेसे उसने घबडाहट छोडी, कुछ चैन मिली । यह चैन भी मानना उसके अज्ञानका फल है । तो ज्ञानका फल क्या है ? अन्यरूप जानना मिट गया, भ्रम व घबडाहट गई यह तो ज्ञानका फल है और जितना लगाव है उसका फल अज्ञान है । अज्ञानको छोडो तो अपना स्वरूप समझमे आ जायगा । हम सत्सगमे बैठे है वो रागमे बैठ है, अज्ञानमे बैठे हैं । ज्ञानसे नही बैठे है क्योकि ज्ञानका फल तो ज्ञान है । ज्ञानका फल कहीं बाहर से नहीं आता है । अपने आत्मस्वरूपमे ही आता है । भगवानकी पूजा करूँ, साधुजनो की सेवा करूँ तो यह सब राग है, अज्ञानका फल है । रागका होना यह अज्ञानका फल है अज्ञानसे राग पदा है । ज्ञान कितने भीतरकी ममकी चीज है ? हम इस ज्ञानको जानते है या नही इसकी परख कर लो । केवल बाहरी दैहिक प्रवृत्तिको ही धर्म जान कर सतुष्ट हो जाते है लोग या इतना ज्ञान हो चुकनेके बाद सतोष कर लेते हैं, मगर ज्ञान तो और इससे बढ

कर अन्तरमें रहना है । ज्ञानमें केवल ज्ञानानन्दका दर्शन रहता है । ज्ञानदृष्टिका फल निवृत्ति होना चाहिये, यह शुद्ध केवलज्ञान की चर्चा है । यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो भगवान्का यह स्वरूप है विदित हो जायगा । यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो उसके प्रागण हमपर क्या गुजरगा ? केवलज्ञान । जानना मात्र ही ज्ञानका फल है । ज्ञानका उपासक प्रभुके इस स्वरूप में झूमेगा । यदि बाह्य भक्तिमें लगेगा, पूजनमें लगेगा, नाचने लगेगा तो यह ज्ञानका फल है कि नाचना ? अरे यह नाचना फल है । आज देखो दुनियामें रागमें लोग कितना नाच रहे हैं । ज्ञान कहीं भिन्न नहीं पाना है । सब देखो, परपदार्थोंमें अज्ञानतावश पगकर नाच रहे हैं ।

इसका यह आत्मस्वरूप हम और आपके भीतर तो है उसका यह मोही जीव नहीं देखता है । परपदार्थोंमें ही पगकर मुसीबतें सह रहा है । यह भी अज्ञानका फल है । इसी तरह इन सबकी प्रवृत्तिमें व्यवहारमें भी अज्ञानता ही है । जैसे गति इन्द्रिय कषाय, योग विषय इत्यादि को उपेक्षित करके मात्र ज्ञान किया जाय तो वह प्रकाशमय है । ऐसा यदि नहीं है तो कर्म सञ्चित हो जाते हैं । उस ज्ञानके होनेमें ही ये कर्म भस्मीभूत हो जाते हैं । तब तो बतलाओ, कोई पुरुष साधु होकर भी, मुनि होकर भी यह ख्याल करता रहे कि मैं मुनि हूं मैं साधु हूं मैं ऐसा हूं, मैं वैसा हूं, यह तो मिथ्यात्व होगा ना । कोई गृहस्थ यह विचार करे कि मैं गृहस्थ हूं, मैं बाल बच्चों वाला हूं, मैं दूकानदार हूं इत्यादि ये सब मिथ्यात्व है, अज्ञानता है । तो उस साधुने भी अपने आप यह सोच लिया कि मैं साधु हूं । जैसे कि गृहस्थने अपने आपमें यह सोच लिया कि मैं गृहस्थ हूं । पर्यायकी पकड़ दोनोंमें है सो दोनों आशय पररूपके हैं । पर वे न तो साधु हैं और न गृहस्थी हैं । वे तो ज्ञानानन्दघन, चैतन्यस्वरूप एक पदार्थ हैं । ये सब अपने आपमें है । अपने आप ही परिणमते रहते हैं । यह कैसे मान लिया कि मैं ग्राफीसर हूं, मैं दूकानदार हूं मैं फलाना हूं । अरे ये सब तू कुछ नहीं है । तू तो ज्ञानानन्दघन, चैतन्यस्वरूप एक पदार्थ है । प्रतीतिकी बात चल रही है । विश्वासकी बात बोल रहा हूं कि तुमको यह विश्वास है कि मैं गृहस्थ हूं । इसमें तो मोह होगा । गृहस्थका यह विश्वास कि मैं गृहस्थ हूं साधुका यह विश्वास कि मैं साधु हूं तो मोहमें दोनों दब गए । अरे मैं तो एक चेतन पदार्थ हूं । अगर गृहस्थ साधु बन गया तो यह आफत है । अरे अज्ञान और मोहमें कुछ फायदा नहीं हो सकेगा । जो कुछ कह रहे हैं वे सब उल्टी बातें मालूम होंगी, मगर ये सब विश्वासकी बातें हैं । इस लोकमें बहुतसी कलाएँ लोगोंने सीख ली हैं—कोई मशीनरी कला, ज्योतिषी कला, जीवनकी कला, भाषणकी कला, मशीनरी कला इत्यादि सब खेल है । ऐसा कलाकारीका जानने वाले अपने मनमें सन्तोष रखते हैं कि मैं बहुत बुद्धिमानीका काम कर रहा हूं । मैं सुधारको, समाजकी सेवा कर रहा हूं । आपको देखने वाले जानते हैं कि मैं इनसे गोरा

से विरक्त रहा करता है, इसी तरह साधु भी शुद्ध सम्यग्ज्ञानके अनुकूल व्यवहार करते हुए भी व्यवहारसे विरक्त रहा करता है।

एक ज्ञानी गृहस्थ अपने कुटुम्ब, परिवारमें रहते हुए भी अपनेको भिन्न समझता है, न्यारा समझता है। अहितरूप है, ऐसा जानकर परिवारसे विरक्त है। तब साधु भी अपने शुद्ध काम करते हुए साधु रहते हुए भी उस प्रसंगसे विरक्त है। शुद्ध ज्ञानके काम की यह बात चल गयी और लम्बी खिंच गयी। प्रयोजन यह है कि जितना हटे उतना धर्म है और जितना लगे उतना अधर्म है। ज्ञानका काम मात्र निवृत्ति है। इतना ही ध्यानमें लाना है। तो यह निवृत्ति ज्ञानका साम्राज्य है। यदि मैं अपने साम्राज्यकी ओर अर्थात् निवृत्ति का उपयोग कर मैं प्रवृत्तिसे हट जाऊँ तो मैं सुखी होऊँ।

देखो जितने भी सुख मिलते हैं वे हटनेसे मिलते हैं, लगनेसे नहीं मिलते हैं। गृहस्थी में रहते हुए भी उससे हटकर रहनेमें जो आनन्द मिलता है वह आनन्द उसमें लगनेसे नहीं मिलता है। गृहस्थीमें लगनेसे रंचमात्र भी आनन्द नहीं मिलेगा। आनन्द इच्छाके अभावमें मिलता। इच्छाकी पूर्ति व इच्छाका अभाव वही बात एक ही है। हटना ज्ञानका काम है और लगना अज्ञानका काम है। आनन्द भी जितना होता है वह हटनेसे होता है, लगनेमें नहीं होता है। जैसे एक मित्रका पत्र आए कि १० बजे हम गाडीसे आ रहे हैं। बस पत्र पाते ही सारी तयारीमें लग गए। वह इसलिए कि मेरा मित्र आ रहा है, मैं अपने मित्रसे मिलूँगा। वह मिलनेके कारण ही जल्दी जल्दी काम करता है। रसोई जल्दी जल्दी बनवा ली और भी जितने काम हैं जल्दी जल्दी कर लिये। ऐसी ये सब व्याकुलतायें क्यों की जा रही हैं, इसलिये कि मित्र मिलनके कामोंमें अपना लगाव रक्खा। १० बजे स्टेशन पहुंचे, पूछा कि गाडी लेट तो नहीं है। यदि कोई कह दे कि अभी १० मिनट लेट है तो दुखी हो गए। गाडी आने ही झट इस डिब्बेमें देखा उस डिब्बेमें देखा। मित्र मिल जाता है तो वह आनन्दमय हो जाता है। अच्छा अब यह बताओ कि उसे आनन्द मित्रके मिलनसे आया है कि मित्रके मिलनेका काम हट गया इससे आया है, इसका उत्तर दो। अरे उसे मित्र के मिलनसे आनन्द नहीं। उसके मिलनेका विकल्प हट गया उसका आनन्द। क्योंकि अगर मित्रसे मिलनेका आनन्द है तो मित्रसे डिब्बेके अंदर मिलता ही रहे। इधर-उधर डिब्बेमें बाहर न झाँके। गाडी चलने वाली है तो वह बाहरको भागता है। अरे बाहर क्यों भागे? यदि मिलता है तो मिलता ही रहे। मित्रसे मिलनेका काम समाप्त हो गया, इससे तो आनन्द आया, किन्तु अब उसे घर जानेका लगाव हो गया तो दुखी हो गया, उस लगावसे दुःख होगा। उसका निर्णय भी दुःख है लगावका है।

मित्रसे मिलनेकी इच्छा हो गयी। इच्छासे ही दुःख मिला है। इस दुःखसे दूर होनेके

लिये ही वह मित्रसे मिलने जाता है, क्योंकि उसको विकल्प सता रहा था। अरे यह विकल्प स्वय ही पहिलेसे न रहे तो क्या आनन्द न आवे ? आनन्द अवश्य आयगा। यदि ऐसी भावना हो कि भाई विकल्प न करो, वहाँ क्या रक्खा है ? उनसे इच्छा न करो। इस तरह मिलनकी इच्छा ही न हो तो वहाँ भी अनाकुलता है। जो इच्छाएँ हो उन्हें समाप्त कर दो, इन्द्रियोंके विषयोंमे बरबादी है। यह एक अन्तरके ममको देखकर कह रहा हू। अरे विषयामे अगर लग गए तो समझो विषयोंमें ही जल गए और मिट गए तो इच्छाओंका अभाव कसे हो जायगा ? विषयबुद्धि के होनेसे इच्छाओका अभाव नही हो सकता है। विषय प्रवृत्ति अधम है। अगर विषय प्रवृत्ति नही हटेगी तो लगाव भी नही हटगा और आनन्द भी नही आयगा। अपने ज्ञानको अन्यके लगावमे लगाना ही अज्ञानका फल है। निवृत्तिका तो फल ज्ञानका है और प्रवृत्ति फल अज्ञानका है।

अपने आपके भीतरमे निवृत्ति स्वरूप शब्द निरपेक्ष केवलज्ञान जिसका नाम है, ऐसा ज्ञानमय मेरा स्वरूप है। मेरा काम क्या है ? देखना नही बोलना चालना नही, हाथ जोडना नही और और करके अपनी बातोमे लपेट लेना नही। जितने काम लगावके हैं, व्यवहारके हैं वे सब अज्ञानमे होते हैं। ज्ञानमे केवल एक प्रवृत्तिका अभाव होता है, नथिङ्ग, कुछ नही करता है, कुछ नही सोचता है, कुछ नहीं बोलता है या कुछ काम नही करता है। ऐसी जो निवृत्ति है, जिसमे काम तो बराबर स्वभावविकासका लगा रहता है। जानन, जानन, जानन, केवल जानन ज्ञानका काम है। ऐसा साम्राज्य हो और स्वयकी पहिचान हो तो उसे मोक्षका मार्ग प्राप्त होगा, नही तो नही प्राप्त हो सकेगा।

मैं आत्मा जो हू वह हू, जसा स्वरूप है उस ही स्वरूपमें हू। मैं अन्य सब पदार्थोंसे विलक्षण, जानने, देखनेकी स्वभावका नाम तन्मय हू। यह एक भावात्मक पदार्थ है, जिसमे रूप नहीं, रस नही, गध नही, स्पर्श नहीं। केवल चिदानन्दघन, चैतन्यस्वरूपमात्र एक ऐसा विलक्षण सत् हू। इस ही को ब्रह्म कहते हैं क्योंकि ब्रह्म नाम उसका है जो ज्ञानसे बढता हुआ रहे वही ब्रह्म है। अपने ज्ञानको बढाने की कला इस आत्मामे है। पुद्गल तो रूप है, पुद्गल बाह्य है। पुद्गलके गुणका ऊँचेमे ऊचा विकास हो तो क्या होगा, रूपका क्या होगा ? परतु आत्माके ज्ञानगुणका विकास ऊचा क्या होता वह कहा जा सकता। आत्माके ज्ञानका विकास हो तो सभी कुछ ज्ञानमे आयगा। इसका स्वभाव बढनेका है। जैसे कोई स्प्रिंग होती है उसे दबाएँ तो दबी रह जायगी और छोड दें तो स्वत उठी रहेगी। इसी प्रकार यदि ज्ञानको विषय कषाय परिणामोंके द्वारा दबावें तो दब जायगी और यदि दबाएँ नही तो ज्ञान फलता हो जायगा। ज्ञानके फलनेका तो स्वभाव ही है। ये विषय कषायोके परिणाम, रागद्वेषादिक भाव ज्ञानको दबानेके कारण हैं। जब तक ये विकार रहेगे तब तक ज्ञान दबता

ही रहता है। विरोधीपन हटे, आत्मतत्त्वका विकार मिटे तो यह विकसित हो जाता है। क्योंकि आत्माका स्वभाव ही ऐसा है कि अपने ज्ञानसे वह वर्धनशील रहे, बढता हुए ही रहे। इसलिए आत्माका नाम ब्रह्म है। इस ज्ञानस्वरूप आत्माको कहा जा रहा है। यह आत्मा विष्णु कहलाता है, क्योंकि विष्णु उसे कहते हैं जो व्यापक है। जिसका स्वभाव ही ऐसा है कि सर्वत्र व्यापक ही होता रहे वही विष्णु है। ज्ञान वह कहलाता है जिसमे बीचका कोई हिस्सा न छूटे। जैसे किसी टकीमे पानी भर दिया जाय तो पानी लबालब भरा हुआ है। उस पानीमे ऐसा नही है कि कही एक इंच पानी न रहे। जो पानी भरा हुआ है वह पानी पूर्णरूपसे भरा हुआ रहता है। उसका कोई भी स्थान खाली नही रह सकता है। इसी तरह इस ज्ञानका फैलावा है कि यह ज्ञान सर्वत्र फल जाता है। किसी जगह खाली नही रह सकता है कि लो मैं अमुक कोई नही जानता। जसे टकीके बीच कोई चीज उठी हुई आ जाय या कोई चीज पानीमे ऐसी पड जाय जिसमें कुछ टीला सा हो तो वहाँ पानी नही पहुच सकेगा। पर पानी अपने स्वभावके कारण न पहुच सका ऐसी बात नही है किन्तु वहाँ कोई चीज ऐसी आ गयी है जिससे रुकावट आ जाती है। इसी प्रकारसे ज्ञानमे विषयकषायोकी आड आ जाती है जिससे ज्ञानके विकसित होनेमे रुकावट पदा हो जाती है।

यदि कही ज्ञान न पहुचा तो वहाँ पर ज्ञानके स्वभावके कारण नही पहुच सका ऐसी बात नही है। ज्ञानके विकसित होने मे जो रागादि भाव रुकावट पैदा करते है उसीसे ज्ञान वहाँ नही पहुच पाता है। ज्ञानका स्वभाव सर्वत्र फैल जाने का है, सब जगह व्याप जानेका है। ऐसे ज्ञानका स्वभाव व्याप्त होना ही है इसलिए ज्ञान ही विष्णु है। यह ज्ञान ही जिन है अथवा जिनेन्द्र है। जिन कहते उसे है जो समस्त बाह्य पदार्थोको जीत ले, खत्म कर दे और स्वय शुद्ध स्वच्छ बना रहे। उसे ही जिन कहते हैं। जिन ज्ञान ही है, सो यह भावात्मक तत्त्व है कि ज्ञान ज्ञान ही है जानन जानन ही है, जानन ही काम है, यह मेरा ज्ञान स्वच्छ है, इसमे दूसरेका प्रवेश नही है। यह अपने ऐसे ही स्वच्छ ज्ञानकी बात कर रहा हू। ज्ञान का काम सुदर शुद्ध प्रतिभासको बार-बार पदा करते चला जाना है। कब तक ? अनतकाल तक। इसलिए इस ज्ञानकी शुद्ध, स्वच्छ, सुन्दर एक सृष्टि करता रहे वह ज्ञान है। जो ज्ञान अपनी सृष्टि करता हो, चाहे वह बिगड जाय, रूठ जाय गुस्सा हो जाय, मलीन हो जाय, आपेसे बाहर हो जाय तो भी यह पूर्ण ही रहता है, पूर्ण ही परिणमता है। यह जगत जितना दिखता है उस रूपमें रचना हो जाय यह भी ज्ञानमय आत्मतत्त्वकी सृष्टि है। ऐसा यह ज्ञान तत्त्व भीतरका है। यह ज्ञानतत्त्व मलीन हो जाय, काबूमे न रहे, सयत न रहे तो बिगडा हुआ प्रभु ऐसी सृष्टियो को कर डाले, ऐसी ज्ञानकी महिमा है। यही ज्ञान पदार्थ, जीव तथा पुद्गलके रूपमें आ जाता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव जन्तु जितने भी हैं उन सबके रूपमे यह

ज्ञान आता है। यह ज्ञान ही ब्रह्म है। इसका ऐश्वर्य स्वलक्षण है। शुद्ध सृष्टि करे, अशुद्ध, सृष्टि करे सब ज्ञान की महिमा है। उसके ऐश्वर्यका पता लगा लेना बिरले ही सूक्ष्मदृष्टि ज्ञानी योगीका काम है। कैसा है यह ? कुछ नही है और सब कुछ है। ज्ञान तत्त्व है। जिसके अन्तरणमे कुछ नही है और सब कुछ है, कुछ बचा नहा है और है कुछ पिण्ड ऐसा नही है। ऐसा जाननहार यह आत्मतत्त्व विलक्षण ऐश्वर्य वाला है। इसका काम जानन है सो अपनी ही कलामे, अपनी ही लीलासे अपना काम कर रहा है। इसका काम केवल जानन है, जान लेना। इस जाननमे सुख दुःख नही, जाननका काम केवल जानना ही है। जान लो फिर उसके बाद महान् आनन्द आता रहता है। जमे प्रयोजन अशुद्ध है तो वहाँ सकट है और जहा प्रयोजन अशुद्ध नही वहाँ सकटोको तो जान लिया। किसलिए जान लिया ? जाननके लिए जान लिया। मिला हुआ दूध और पानी एक क्षेत्रमे है पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूधके कण दूधमे हैं और पानीके कण पानीमे हैं। दूधमे पानी मिला होने पर भी दूधमे दूध है और पानीमे पानी है। यह सारा विश्व ज्ञानमे आवे फिर भी विश्व व ज्ञान अलग अलग है। और हम और आप लोगोको तो इतनी चीजें जाननेमे आ ही रही है इनमे ही देख लो हम अलग हैं और ये सब अलग हैं। देखनेमे यह सारा लोक, सारा जगत आ रहा है फिर भी जो यह है वह मै नही हू। जाननमे जानन है, पदार्थोंमे जानन नही। जानन की ओर ही जानन है और जाननमे ही जानन बना रहता है। किन्ही बाह्य पदार्थोंमे जानन नही रहता है।

जाननमें ही जानन बना रहता है। ऐसी विचित्रताओ और ऐसे ऐश्वर्यका पता योगी और ज्ञानी पुरुषोको ही हुआ करता है। विलक्षण ऐश्वर्यको जानकर ही उन योगियो और ज्ञानियोका मन प्रसन्नचित्त रहता है। जगलमे योगी जन एकान्तमे रहते हैं। गृहस्थो को ऐसा लगता है कि जगलमे रहने वाले लोग कैसे रहते है ? उनको कोई पूछने वाला भी नही है, उनके पास कोई नौकर नही है, कोई साधन नही है, खाने पीनेका कैसे इनका काम चलता होगा, परन्तु उनका काम अद्भुत रूपसे चलता रहता है। वे अपने ज्ञानरस का स्वाद लेकर ही आनन्दमग्न हो जाया करते हैं। यही उनका ऐश्वर्य है। वे अपने ज्ञानअमृतमे ही छके हुए रहते है, इसलिए वे सदा प्रसन्नचित्त रहते है। अत हम ज्ञानका नाम ही ईश्वर है। आनन्दमय, कल्याणमय, सर्वोत्कृष्ट सारकी चीज दुनियाके अन्दर क्या है ? मोही जीव अपने सारमे अलग होकर बाहर को निरखा करते है। सारभूत चीज क्या है ? मकान हो गया, बालबच्चे हो गए, मित्र लोग हो गए, लाखो और जन ही सारभूत हो गए। ऐसी कल्पनामे इस तरहसे वे माही बाहर ही घूमा करते है। सारको ढूढनेके लिए और जगह-जगह मारे मारे फिरा करते हैं। योगियोको अपने ज्ञानका पता है, ज्ञानी गृहस्थियोको भी अपने

ज्ञानका पता होता है। उन ज्ञानियोको पता है कि दुनियामे सारकी चीज कोई मिलती नही है। सार वह खुद ही है। इसका जो सहजस्वरूप है, अपना अस्तित्व है, वह ज्ञानमय है, प्रकाशमय है, कल्याणमय है। सारको, कल्याणको, उत्कृष्टको शिव कहा करते हैं। यह ज्ञान तत्त्व ही शिव है।

राम किसे कहते हैं? राम उसे कहते है, जिसमे योगी पुरुष रमण किया करते है। जिसमे योगी जन, ज्ञानी जन, रमण किया करते है उसे राम कहते हैं। वह राम मेरा कौन है मैं जिसमे रमण किया करता हू? वह मेरा राम है। मैं अनादिसे अनन्तकाल तक सदा अपने आपमे रमण किया करता हू। यह तो लोगोको भ्रम है कि मैं घरमे रमता हू, इन्द्रिय विषयोंमे रमता हू दुनियावी कार्योंमे रमता हू। अरे कोई किसी बाहरी चीजोमे नही रमता है। यह खुद ज्ञानमय है, चारित्रमय है। स्वय ही स्वयके स्वरूपमे रमा करता हू, खुदमे ही रमा करता हू। कोई अपनी दुकानमे ही रमा करता है, कोई विकल्पोमे रमा करता है तो कोई जानकार विद्वान विकल्प करता है, कल्पनाएँ करता है वह उनमे रमता है और ज्ञानी योगी साधु पुरुष अपने ज्ञानस्वरूपमे रमते हैं और प्रसन्न होते है। मैं अपने ज्ञानमे रमा करता हू। तात्पर्य यह है कि सभी जीव अपने आपके जाननमे रमा करते है। विशेषता यह है कि कोई वैसे रमा करता है, कोई वैसे मगर सभी अपने आपमे रमते है। बाह्यपदार्थोंमे कोई रम नही सकता है, कोई बाह्यमे लग नही सकता है, परन्तु कोई मान ले कि मैं बाह्यमे रमता हू तो वह परेशान हो जायगा। पर न कोई बाह्यमे रम सकता है और न बाह्यमे लग सकता है। तो मैं रमता हू और अपनेमे ही रमता हू। तो ज्ञानस्वरूप यह आत्मा ही राम है, ज्ञानतत्त्वकी आत्माराम है। यह प्राणी अपनी शरण बाह्यमे ढूढता है, बाह्यमे ही हित और अहित ढूढनेका प्रयास कर रहा है, परन्तु बाहर कही शरण नही है। यह प्राणी इधर उधर भटकता है परन्तु यह शरीर देवता इसकी रक्षा नही करता है। यह ज्ञानस्वरूप ही हमारा सच्चा देव है, रक्षक है, अपने आपके लिए स्वय सर्वस्व है। जिस प्रकार हम सवरस हैं उसही प्रकार की बातें करें तब तो ठीक है। परन्तु हे आत्मन! यह प्राणी शुद्ध प्रगति नही करता है। यह तो उल्टी अटपटी बात करता है। यह जैसा शुद्ध है, स्वच्छ है, चैतन्यस्वरूप है वैसी बातें नही करता है।

हे आत्मन्! अपने आपपर दृष्टि दो तो अपना प्रभु अपनेको ही मिल जायगा। यह प्रभु ही तेरे पापोको हर सकता है। पाप क्या है? विकल्प और कल्पनाएँ ही पाप हैं। ये बाहरके जो पाप हैं। झूठ बोल दिया, जान ले लिया, परिग्रह किया, यही बाहरी बातें पाप हैं। ये पाप होते भी कैसे हैं? यो ही कल्पनाएँ उठती है तब यह इन पापोको करता है। इन पापोंके कारण ही उसे दुःख मिला करते है। तो इन पापोको हरेगा कौन? इन पापोको मेरा प्रभु ही हरेगा, इन पापोसे उत्पन्न दुःखोको मेरा प्रभु ही मिटायगा। जो पापोको हर वही

हरि कहलाता है। हम अपना प्रभु कसे ढूंढें ? हमारी शरण, हमारा रक्षक, हमारा हित यह प्रभु ही है।

इस एक अपने स्वरूपपर ही ध्यान हो तो सब सफलता है। मैं तो यथाथ हू कृत-कृत्य हू स्वभावमात्र हू। यह लोकका धन कुछ महत्व नही रखता है। यह धन पिंडरूप है धन पुद्गल है, इन पुद्गलोमे कोई सार नही दिखता है। ऊँचे-ऊँचे महल, बडे-बडे धन वैभव आदि इनमे कोई महत्वकी चीज नही दिखते है। यह ज्ञानी जब ज्ञानदृष्टिसे देखता है कि मैं सबसे निराला हू, ज्ञानमय वस्तु हू तो अनुभवरसका स्वाद मिलता है। अन्यथा जिस के बारेमें जैसे विचार किये वसा ही उसको समझ लिया और वैसा ही उसका वर्णन कर दिया। सो इसी अदशनके फलमे बौद्ध, भट्ट, नैयायिक, मीमासक, साख्य इत्यादि नाना प्रकार के दर्शन बन गए। पर जिसपर समस्याएँ खडी हुई है वह दर्शनका मूल आधार यह स्वय ज्ञानतत्त्व है।

ऐसा यह मै ज्ञानतत्त्व हू, मेरा काम केवल जाननही जानन है। बाह्य पदार्थोंको करनेका इस ज्ञानमात्र भावात्मक आत्मा पदार्थका काम नही है। किन्तु अज्ञानी मानता है कि हम करने वाले हैं, मैं अमुक करने वाला हू, मैं दुकान करने वाला हू, इत्यादि यह मिथ्यात्व है। ये विचार धर्ममे ले जाने वाले नही हैं। ये सब मिथ्यात्व है। तू है और परिणमता रहता है। इतना ही तेरा काम है। तू पूराका पूरा है। पाप बनें तो पूरा है चाहे न बनें तो पूरा है। तू तो परिपूर्ण है। जैसे लोग कहते हैं कि तू तो अधूरा है, तेरी आत्मा अधूरी है, अरे तेरी आत्मा अधूरी नही है। तू तो एक सत् है, सत् अधूरा नही होता है। अधूरापन तो दुनियामे होता ही नही है। यह ऐसी मानी हुयी चीज है कि जसे अनेक चीजें मिली होती हैं। कुछ यहां हटा दिया, कुछ वहां हटा दिया तो लोग कहते हैं कि आधा आधा कर दिया। अरे कुछ नही कर दिया। जो चीज है वह पूरी की पूरी है।

य स्कन्ध है, ये दिखते हैं, ये सब चौकी, पुस्तक, कमडल इत्यादि एक एक चीजें नही हैं। ये अनेक पुद्गल परमाणुओमे मिलकर बने हैं। लकडी फाडी गई, हथोडेसे पीट गए पुस्तक मशीनमे ढाली गई इत्यादि अनेक पुद्गल परमाणु मिलकर बने हैं। इनमे आधी आधी चीजें कुछ नही है, उनमे जो एक एक चीज है वे सब पूरेके पूरे है इसी तरह जगतके जितने जीव है सब पूरेके पूरे हैं। अगर बिगड गए तो पूरेके पूरे बिगड गए और अगर बन गए तो पूरेके पूरे बन गए। आधा न तो बिगडेगा और न बनेगा। प्रत्येक जीव परिणमता है। अगर कोई परिणमता है तो अपने ही परिणमनसे परिणमता है दूसरेके परिणमनसे नही परिणमता है। अगर मैं विकल्प कर रहा हू तो अपना ही विकल्प कर रहा हू, दूसरेका विकल्प मैं नही कर रहा हू। अपनी परिणतिके अतिरिक्त मैं और कुछ नही कर रहा हू। मैं परिण-

मता हू, अपने आपमे ही परिणमता हू–ऐसा अगर ज्ञान हो तो यही अमृतका पान है। जिसने अपने स्वरूपको लक्ष्मे न लिया, अपने को ही कर्ता धर्ता माना तो समझो कि वह दूसरी दुनियामे चला गया, अपने स्वरूपसे हट गया। यदि वह अपनेसे हट गया तो समझो दुःखोंकी परम्परा उसके ऊपर आ गयी। क्योकि अपने स्वरूपको भूलकर कही भी लगो सर्वत्र क्लेश ही क्लेश है।

हे आत्मन्! अपने स्वरूपसे विमुख होना विकल्पकी परम्परा बढाना है। मैं इसको करता हू—ऐसा सोचना रागोका बढाना है और यह अज्ञानका काम है। मैं इसको नही करता हू, मेरा यह करनेका काम नही है—ऐसा विचारना ज्ञानका काम है। इसका न तो करनेका स्वभाव है और न मना करनेका स्वभाव है। करनेमें क्लेश हैं और मना करनेमे क्लेश है। क्लेश दोनो मे ही है। महकारको देख लो उसमे ही दुःख आते है। महकार करना या न करना, बल्कि उसके प्रति विकल्प करना ही दुःख है। इससे अपनेको पूरा नही पडेगा। मैं तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपको देखू जिसका काम केवल जानन है, ज्ञानमात्र है। जान लो तो भाई फायदा उठाओ। अरे इतना ही फायदा है, इसके आगे किया तो नुकसान है। भगवान सारे विश्वको जान गया, पर अब फायदा तो उठाओ। सट्टेका सार तो जान गए, पर अब फायदा तो देखो। अरे जानन ही बना रहे तब तो भगवान फायदेमे है। अगर जाननसे आगे आ जाय तो सटोरी सटारोकी तरह दुःख होग। भगवान अपने स्वरूपको भूल-कर अन्य कुछ नही करते। इस जो जाननके आगे कुछ फायदा सोचता है तो उसीको ससारमे रुलना पडता है। केवल जाननमात्र का फायदा रह जाय और कर्मचेतना व कर्मफलचेतनासे जुदा रहे, ऐसी दृष्टिसे आनन्द होता है। वह सब सहज पारमार्थिक आनन्द है। भक्ति वाले कहते है कि ऐसे ही क्षण मेरे व्यतीत हो। सो हे आत्मन्! तुम बाह्यमे कुछ न करो, तुम हो और परिणमते रहते हो, इतना ही तेरा काम है। इसके आगे तेरा कोई काम नही है। अपने आपको देखो तो तेरसे दुःख दूर हटेंगे और फिर समाधिका अनुभव करोगे। यह आत्मा आनन्द व ज्ञानविकासमे जब बढता जायगा, बढ चुकेगा तो प्रभु हो जायगा। अपने स्वभावसे हटकर, बाह्यको कुछ निरखकर, बाह्यमे लाभ देखकर बाह्यमे जा पड रहते है तो उनका टोटा पडता है, नुकसान होता है। ये भोग पुण्य उदयसे प्राप्त है, निकट है, जरा मुडे और भोग लिये ऐसे सुगम हैं, सो ये भोग बडे सस्ते लग रहे है, किन्तु ये बडे महगे पडेंगे। जैसे खेतोंसे कोई चला जा रहा है। खेतमे एक ककडा पड मिले। किसी तरहसे बस तोड लिया। इतना काम तो बडा सस्ता लगा, पर यदि उस खेतका मालिक आ जावे और उसे मारे तब कितना महगा पडेगा? इसी तरह ये मोह रागादि भाव सस्ते लगते हैं पर यह नही जानते है कि ये कितने महगे पडते हैं? जरा सी देरमे जो कुछ कर लो। सस्ते है, मगर स्वभावदृष्टिसे हटा हुआ

रहता है ना। कर्मोंके तीव्र बन्धन होते रहते हैं जिनके उदयमें महा क्लेश हो जाता है। यह ज्ञानकी बात, संयमकी बात, साधनाकी बात स्वरूप निरखनेकी बात इत्यादि कहनी पड़ रही है। अरे जरासा दिमाग लगाना पड़ेगा कि वह सस्ता हो पड़ेगा। जब चाहे अपने स्वरूपको देखो। ऐसा ज्ञानस्वरूप देखो तो सुखी होंगे। मेरी शरण यह मैं स्वयं ही हूं। जैसा मैं हूं उसी रूपमें अपने को देख तो मेरा कल्याण हो जायगा। यह आत्मा तो जिन, शिव, ईश्वर ब्रह्मा, राम विष्णु आदि रूप है। सब ज्ञान इसीके अन्दर हैं। ऐसा महिमा निधान, ज्ञान दर्शनधान यह मैं स्वयं हूं अपने आपको समझता हूं और ज्ञानभाव लिए हुए हूं। मेरेमें विपदाएँ नहीं हैं। विपदाएँ तो मात्र भ्रममें विकल्पमें हैं। हम और आप सभी आत्मा परिपूर्ण हैं, सब प्रकारसे ज्ञान और आनन्दमय हैं। सब बातें इस आत्मामें ठीक हैं केवल एक गड़बड़ी इसके आत्माके अन्दर है जिससे सारा बिगाड़ हो गया। वह गड़बड़ी क्या है? वह गड़बड़ी यह है कि हम आत्मामें इच्छाएं भरी हुई हैं। सारी बातें करते रहो हम किसी की मान नहीं करते। क्रोध आता हो करो, मान आता हो करो, लोभ आता हो करो मगर एक इच्छाओंको ही निकाल दो तो सारे संकट समाप्त हो जावेंगे। इच्छाओंके समाप्त होने पर कषाय भी किसपर असर करेंगे? इच्छाएँ ही एक बंधन है जो जीवोंको बाँधे हुए है। इन पुरुषोंको कौन बाँधे हुए है? इनमें कौन गांठ लगी हुई है? अरे ये सब न्यारे-न्यारे हैं, मगर अपनी अपनी इच्छाएँ बनाए है और बन्धनमें पड़े हुए हैं। कोई किसीमें बंधा हुआ नहीं पड़ा है इच्छाओंने ही बांध रखा है।

कौशलकुमार विरक्त हुए। लोगोंने बहुत समझाया। अरे राजकुमार अभी तुम्हारी कुमार अवस्था है अभी कुछ दिन हुए तुम्हारी शादी हुई है तुम्हारी स्त्रीके गर्भ है। उत्पन्न होने वाले पुत्रके लिए राजतिलक कर जावो, फिर चाहे घर द्वार छोड़ देना। कौशल कहते हैं पिंड बचानेके लिए कि जो गर्भमें है उसे मैं राज्यतिलक दिए देता हूं। कौशलका बंधनमें बंधनेकी इच्छा नहीं थी तो उनके कोई बंधन न था। इच्छाएं हैं तो बंधन हैं। गृहस्थीमें क्या बंधन है? अरे नहीं, गृहस्थीमें बंधन नहीं है, केवल इच्छाओंके कारण ही ये फंसे हुए हैं। हमें तो बाल बच्चोंकी फिकर है घर द्वार कुटुम्ब परिवारकी फिकर है, इसीसे हम फंसे हुए हैं। हम तो स्वतंत्र हैं परन्तु बाल बच्चोंमें मोह होनेसे अपने मोहमें ही फंस गए हैं। क्या उम्मीद है कि हम इन बन्धनोंसे निकल पायेंगे? जो जो व्यवस्था हम सोचे हुए हैं क्या इनको पूरा करके विश्राम कर लेंगे? दसों मेढ़कों को कोई तौल सकता है? नहीं। अरे वे तो उछल जावेंगे। कोई इधर उछलेगा, कोई उधर उछलेगा। वे तौले नहीं जा सकते हैं। इसी तरह क्या आप परिग्रहमें रहकर अपनी व्यवस्था बना सकते हो? कितनी ही व्यवस्था

बन जायगी तो फिर कोई नई बात खडी हो जायगी। क्योकि बात बाहर खडी नही होती, अदरमे खडी होती है। सो अतर उपादान अयोग्य है ही। जब तक इच्छाए समाप्त नही होती तब तक बन्धन नही मिटता अर्थात् जब तक इच्छाए रहेंगी तब तक बधन रहगे। बगीचेमे एक चिडीमार जाल फैलाए है। जालके नीचे थोडेसे चावल या गेहूके दाने डाल दिए हैं। अब चिडिया आती है, उस जालमे फस जाती है। देखने वाले दो चार लोग आपसमे चर्चा करते हैं कि देखो चिडीमारने चिडियाको फाँस लिया। दूसरा बोला—नही, चिडीमारने चिडियाको नही फाँसा, जालने चिडियाको फाँसा है। तीसरा बोला—नही नही, जालने चिडियाको नही फाँसा है, चावल और गेहूके दानोंने चिडियाको फास लिया है। चौथा बोला—नही, नही, चिडियाने स्वय दाने चुगनेकी इच्छा की, इसलिए स्वय ही वह बधनमे बध गयी है। प्रभुमे और आत्माम भेद कहा? सब लोग चिल्लाते हैं कि प्रभु और आत्माम भेद नही है। कहते हैं ना कि "आत्मा सो परमात्मा" भेद कुछ नही है। आत्मा है हम और आप और परमात्मा है कोई निर्दोष सवज्ञ, शुद्ध, ज्ञानी आत्मा। उसम और इसमे कोई भेद नही है। सारा मामला तैयार है, केवल इच्छाओंको निकाल दो। यह एक इच्छाए जो कि उत्पन्न होती है जिनसे बाह्य पदार्थोंसे कोई मतलब नही है, जो जसा है वसा ही है। किसीके करनेसे कुछ होता नही है। मेरा सोचनेसे बाहर कुछ नही होता है, सब अपने अपने स्वरूपके धनी हैं, अपने-अपने सत्के स्वामी हैं, केवल य व्यथकी इच्छाएँ उत्पन्न करते हैं और दुखी होते हैं। रात दिनके कार्योंके अदर अपने को देखत जाओ कि मेरे लिए लोग बधन हैं या काम बधन हैं या इच्छाए बधन हैं। अर अपने लिए तो केवल इच्छाए ही बधन है। इच्छाए न करो तो सुखी हो। अच्छा देखो शुद्ध किसे कहते ह? शुद्ध कहते उसे है जो इच्छाओंका सयम लिए हैं अथवा इच्छाए रचमात्र भी नही है। इच्छाओंके होने न होने पर ही सुख दुख निभर है। अन्य पदार्थोंके सयोगमे सुख नही ह, दुख ही है। ससारमे दृष्टि पसारकर देखो तो सब दुखी ही नजर आ रहे है, सबको कष्ट है। और किसीको यहाँ कितना ही आराम मिले फिर भी कष्ट है। जितने एक दीनको कष्ट है उतने एक धनीको भी कष्ट ह। यद्यपि जितनी असुविधाएँ दीन को हैं धनीको नही ह, फिर भी धनीको भी उतने ही कष्ट होते है।

अरे सुविधाओंसे सुख नही होते हैं और न सम्पदाओंसे ही सुख होते है। इज्जतसे भी सुख नही होता। इच्छाएँ यदि न रहे तो सुख होता है। तो कैसी भी परिस्थिति आ जाय, इच्छाएँ अगर कर ली तो दुख हो गया। इच्छाएँ ही एक बधन है। इन शिशु, बालकों को देखो, कसे आजादसे फिरते है, कोई फिक्र नही है। कसा सुखी रहते है? पर भाई जैसे-जैसे अवस्था बढती जाती है वैसे वसे इच्छाएँ भी बढती जाती ह और इच्छाओंके नातेसे ही

दु:ख भी बढते जाते हैं । तो भाई दु:खोंका कारण इच्छाएँ ही हैं । पर बड़ा कठिन प्रश्न है कि इन इच्छाओंको कैसे दूर किया जाय ? अरे जिसका तुम्हारा प्रसंग है तथा कुटुम्ब, परिवार इत्यादिसे सम्बंध होनेकी जो इच्छाएँ हैं वह न हो तो तुम्हारा काम न बने, यह नहीं हो सकता है । इच्छाएँ न हों यह नहीं हो सकता है, इच्छाएँ तो होंगी ही । पर गृहस्थीमें भी इस बारेमें दो काम तो किए जा सकते हैं । एक तो यह कि मैं आत्मा इच्छारहित हूँ ज्ञान स्वभाव वाला हूँ, मेरा स्वभाव इच्छारहित रहनेका है, मैं आत्मा ज्ञानमय हूँ आनन्दको लिए हुए हूँ मैं इच्छाएँ नहीं करता । इच्छाएँ न रखनेसे मेरा कुछ मिट नहीं जायगा कुछ नष्ट नहीं हो जायगा, मेरा तो ज्ञानस्वभाव है, जानन ही मेरा काम है, मेरा जाननहार मैं हूँ । एक तो यह काम गृहस्थीमें भी किया जा सकता है । पर इसे ज्ञानी गृहस्थ ही कर सकता है । यह केवल कहनेकी बात नहीं है सत्य बात कही जा रही है, पर ऐसा किया जानेमें कुछ अभ्यास चाहिए कुछ ज्ञानभावना चाहिए ज्ञानदृष्टि चाहिए, संसारसे मुक्तिकी भावना चाहिए आत्मकल्याणकी भीतरमें भावना होनी चाहिए । यदि ये बातें हों सकती हैं तो गृहस्थ यह काम कर सकता है कि मेरा इच्छारहित स्वभाव है, जानन ही मेरा स्वभाव है । जानन अगर मिट गया तो मैं मिट जाऊँगा । इच्छाएँ अगर हो गयी तो मैं मिट जाऊँगा । इच्छाओंके मिट जानेमें मैं मिट जाऊँगा ऐसी बात नहीं है । इच्छाओंके मिटनेसे मैं नहीं मिटता, बल्कि इच्छाओंके मिट जानेसे मुझे आनन्द है । ये इच्छाएँ मेरा स्वभाव नहीं, मैं तो ज्ञानस्वभाव हूँ भीतरमें एक ऐसा विश्वास बना लेवो । एक तो गृहस्थी यह कर सकता है । दूसरे यह कर सकता है कि इच्छा माफिक यदि काम नहीं है तो इससे नष्ट हो जाऊँगा, ऐसी बात नहीं है । इच्छाएँ होती हैं और इच्छाओंके अनुसार ही काम किया जाता है फिर भी इच्छाओंके अनुसार काम नहीं होता है । यदि इच्छाओंके अनुसार काम नहीं होता है तो मैं नष्ट नहीं हो जाऊँगा । अरे मैं तो वही सत्का सत् हूँ । यदि ऐसा होगा तो क्या न होगा तो क्या ? ऐसी भावना बाहरी तत्त्वोंसे उपेक्षा धारण कर । यह दूसरी बात भी गृहस्थ कर सकता है । बाह्यकी यदि इच्छा बन गयी तो क्लेश ही क्लेश है । ये इच्छाएँ ही बन्धन हैं । यदि मैं इच्छाएँ न रखूँ ज्ञाता द्रष्टा रहूँ, ज्ञानमात्र रहूँ तो मेरी हानि नहीं है । इच्छाओंमें ही हानि है । मेरा पूरा इच्छाओंसे नहीं पड़ेगा । इच्छापासे तो मुझे दु:ख ही मिलेंगे । मेरा पूरा तो ज्ञानमात्र भावोंसे ही पड़ेगा । मैं जितना हूँ, स्वयं हूँ, इससे ही मेरी ठीक व्यवस्था बनेगी । इसलिए इच्छाओंको दूर करके ज्ञानमात्र रहकर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ ।

देखो हाथी, मछली, भवरा, ये प्रत्येक जीव बंधनमें पड़ जाते हैं, जालमें बँध जाते हैं, शिकारियोंके चंगुलमें फस जाते हैं । उनकी इच्छा नहीं होती तो व बंधनमें नहीं पड़ते । अभी मनुष्य भी रंग ढंगसे चलते हैं दूसरोंमें मनमानी अन्यायकी प्रवृत्ति नहीं कर पाते, एक

मनुष्य दूसरे मनुष्यके बंधनमें पड़ जाते हैं। तो एक दूसरेके बंधनोंमें पड़ना भी इच्छाओंके ही कारण है। पुत्रकी इच्छा है कि मैं ठीक रहूं। मेरा बढ़िया गुजारा बने, मेरी उन्नति बने। ऐसे इच्छाओंके कारण ही वह पिताके साथमें रहना स्वीकार कर लेता है। यह मेरा बच्चा बुढ़ापेमें काम आयगा, मेरी सहायता करेगा, इन इच्छाओंके कारण ही वह पुत्रसे मिला हुआ चलता है। इसी प्रकार स्त्रीकी इच्छाएँ अपने पतिके प्रति, पतिकी इच्छाएँ अपनी स्त्रीके प्रति होती हैं, इस तरहसे वे सब एक दूसरेके बंधनमें बन जाते हैं। नौकर अपने मालिकके बंधनमें है। मालिक अपने नौकरके बंधनमें है, बड़ा अपने छोटेके बंधनमें है और छोटा बड़ेके बंधनमें है। यह सब इच्छाके कारण ही तो होता है इसलिए इच्छाएँ ही बंधन हैं।

सीता जी अग्नि परीक्षामें सफल हो गयी तो रामचन्द्र जी हाथ जोड़कर खड़े हुए। बोले—देवी क्षमा करो। आपको बहुत कष्ट पहुंचा, चलो अब महल चलो। लक्ष्मणने भी हाथ जोड़े और भी सब लोगोंने हाथ जोड़े। भला सोचो कि सीता जी ने मृत्युसे भेंट करानेवाली अग्निपरीक्षाके बाद क्या अपने मनमें इच्छाके भाव बनाये होंगे? क्या सीता जी के मोहकी प्रवृत्ति हो सकेगी? नहीं ऐसा नहीं है। इसीसे तो सीता जी के वैराग्य उमड़ा, सीता जी के लिए कुछ बन्धन नहीं हुआ, विरक्त हो गयी। तपस्यामें लग गयी। जब तक इच्छाएँ थी तब तक बंधन था। जब इच्छाएं खत्म हो गयी तब उनका बंधन भी खत्म हो गया।

अब घरमें ही देखो लोगोंकी इच्छा नहीं रहती है, इसलिए जुदा हो जाते हैं, अलग हो जाते हैं, वे तलाक दे देते हैं। जब इच्छाएं नहीं है तब मोहके बन्धन भी टूट जाते हैं। मोह बंधन खत्म हो जाता है। हमको बांधने वाले कोई पदार्थ नहीं हैं। जब हम बाह्य पदार्थोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं तब अपने आपको ही बेड़ियोंमें जकड़ते हैं दुःखी होते हैं। बड़े बड़े रईस लोग आजकल भी अपने स्त्री, धन वैभव इत्यादिको छोड़कर अलग हो जाते हैं, विरक्त हो जाते हैं। यह क्यों, यों कि इच्छाका बंधन उनके नहीं रहा। इच्छा तक साम्राज्यमें लगाव था। इच्छाओंके समाप्त होते ही वे बड़े बड़े साम्राज्य छोड़ देते हैं। कहते हैं ना कि फलाँ आदमी मोहममतासे अलग हो गया। अरे अलग हो गया तो अपनेको बंधनमें बांधनेकी इच्छा नहीं थी, इसलिए अलग हो गया। बंधन तो इच्छाको कहते हैं। किसीको अपना मानना कि यह मेरा है, यह अमुकका है, यह फलानेका है इत्यादिमें विपदाएँ हैं। भीतरमें अगर जरा भी मान आ गया है कि यह मेरा है तो बस दुःख उत्पन्न हो गए। देखो दूसरेसे लात घूंसे मिला करते हैं, पर कहते हैं कि यह मेरा है। परको अंगीकार करनेसे ही सुख दुःख हो जाते हैं। परको अङ्गीकार करना ही इच्छा है, मोह है। यह मोह इस जीवके ऐसा फैला हुआ है कि उसे चैन नहीं आती है। यह जीव किसी किसी बातसे मौज मनाता है और किसी किसी बातसे दुःखी होता है। जिन चीजोंमें मौज मनाता है उन चीजोंमें मौज

के साथ साथ दुःख ज्यादा आते हैं। रात दिनके २४ घंटेके अंदर यह बताओ कि बहुत बढ़िया मौज आपको कितने मिनट रहती है ? रात दिनमें २-३ मिनटके लिए शायद मौज आ जाती होगी, बाकी समयमें कष्ट ही रहते हैं। कभी कोई बच्चा आ गया, उसकी प्रवृत्तिको देखकर दो एक मिनटके लिए मौज हो गयी, बाकी समयमें दुःख ही रहते हैं। दूकानपर बैठे हैं, कोई ग्राहक आ गया तो सौदा पटनेपर दो एक मिनटके लिए मौज आ गया। सौदा न पटा ग्राहक चला गया तो फिर दुःखी हो गये। और ग्राहककी अपेक्षामें तो पहिलेसे भी दुःखी बैठे थे। मौज और दुःखमें अन्तर देखो कि मौज तो राईके समान है और दुःख पहाड़के बराबर है। मौज और दुःखोंको फिर देख लो। दुःख तो सार साचे है, मगर मौज जो दो मिनटको आता है वह भी झूठ है। मौज झूठा हो गया और दुःख साँचे हो गए। अरे भाई कोई बात हो तो बताओ। इन सबका क्या कारण है ? देखो भाई क्षणिक मौज माननेसे ही कारण इच्छाएँ ही हैं। इन इच्छाओंसे ही दुःख हो जाते हैं, दुःखोंमें दब जाता है। इस मौज माननेका कारण इच्छायें ही हैं। इन इच्छाओंमें ही दुःख हो जाते हैं।

जैसे कोई कहे कि साहब अपनी कहानी सुनाओ। अच्छा, सुनो। ५ मिनट तक सुनाया। तो उसमें यही पावोगे कि इसकी इन विषयोंमें इच्छा है, इसकी इन विषयोंमें इच्छा है। निर्णय कर लो कि इसमें अमुककी इच्छा है, इन सबसे दुःख होते हैं। इन सब इच्छाओंसे ही दुःख होते हैं, क्लेश होते हैं। सारी बातें ठीक हैं ना। सारी बात समझमें आयी हैं ना। सारी बात समझमें क्या, सिरपर ही तो आ रही है। अब समझते यह हैं कि ऐसा कोई उपाय बन जाय कि सारी समस्याएँ समाप्त हो जावें। हम कहते हैं कि जिसमें मोह है, जिसमें इच्छाएँ हैं उनको कभी सुख नहीं हो सकता है। इतना तो निश्चय कर ही लो। जिनके क्रोध हो, मान हो, चाहे कुछ भी हो पर एक ये इच्छा न हो तो आनन्द ही आनन्द है। इच्छा मिटी फिर क्या पड़ा है ? तो ये इच्छाएँ मिटें कैसे ? अरे इन इच्छाओंके मिटने की तरकीब तो हो। जो शास्त्र पूजे जा रहे हैं उनमें इच्छाएँ मिटाने की तरकीब लिखी होती। इसीसे हम पन्ने पन्ने शास्त्र आदरसे पलटते हैं, पूजते हैं, उनका मनन करते हैं और यह भगवान की मूर्ति मंदिरमें विराजमान है, परमात्मा अरहंत, जिनेन्द्र की मूर्ति विराजमान है, उनकी उपासना उन्हें आदर्श मानकर ही तो करते हैं। इच्छा प्रभु के समान है। सो निरीहको पूज करके हम अपनी इच्छाओंका नष्ट करें। हम गुरुवोंका सत्संग करते हैं, गुरुवोंकी उपासना करते हैं क्योंकि इच्छाओंके मिटानेकी तरकीब उनके सत्संगसे मिलती है। जैसी इनकी वृत्ति है ऐसी बनाकर मैं प्रसन्न रहूँ। जिसके पास इच्छायें होती हैं और चाहसे ही मौज किया करते हैं, उन्हें क्लेश ही रहते हैं। देखो भाई जिसके पास आनन्द है उसके पास हम नहीं आते हैं और जिसके पास जानेसे अपनेको क्लेश है

मनुष्य दूसरे मनुष्यके बधनमे पड जाते है। तो एक दूसरेके बधनोंमे पडना भी इच्छाओंके ही कारण है। पुत्रकी इच्छा है कि मै ठीक रहू। मेरा बढ़िया गुजारा बने, मेरी उन्नति बने। ऐसे इच्छाओंके कारण ही वह पिताके साथमे रहना स्वीकार कर लेता है। यह मेरा बच्चा बुढापेमे काम आयगा, मेरी सहायता करेगा, इन इच्छाओंके कारण ही वह पुत्रसे मिला हुआ चलता है। इसी प्रकार स्त्रीकी इच्छाएँ अपने पतिके प्रति, पतिकी इच्छाएँ अपनी स्त्रीके प्रति होती हैं, इस तरहसे ये सब एक दूसरेके बधनमे बन जाते है। नौकर अपने मालिकके बधनमे है। मालिक अपने नौकरके बधनमे है, बडा अपने छोटेके बधनमे है और छोटा बडेके बन्धनमे है। यह सब इच्छाके कारण ही तो होता है, इसलिए इच्छाएँ ही बधन हैं।

सीता जी अग्नि परीक्षामे सफल हो गयी तो रामचद्र जी हाथ जोडकर खडे हुए। बोले—देवी क्षमा करो। आपको बहुत कष्ट पहुचा, चलो अब महल चलो। लक्ष्मणने भी हाथ जोडे और भी सब लोगोने हाथ जोडे। भला सोचो कि सीता जी ने मृत्युसे भेंट करानेवाली अग्निपरीक्षाके बाद क्या अपने मनमे इच्छाके भाव बनाय होंगे? क्या सीता जी के मोहकी प्रवृत्ति हो सकेगी? नही ऐसा नही है। इसीसे तो सीता जी के वैराग्य उमडा, सीता जी के लिए कुछ बन्धन नही हुआ, विरक्त हो गयी। तपस्यामे लग गयी। जब तक इच्छाएँ थी तब तक बधन था। जब इच्छाए खत्म हो गयी तब उनका बधन भी खत्म हो गया।

अब घरमे ही देखो लोगोकी इच्छा नही रहती है, इसलिए जुदा हो जाते है, अलग हो जाते हैं, वे तलाक दे देते हैं। जब इच्छाए नही है तब मोहके बधन भी हट जाते हैं। मोह बधन खत्म हो जाता है। हमको बाधने वाले कोई पदार्थ नही हैं। जब हम बाह्य पदार्थोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करते है तब अपने आपको ही बेडियोमे जकडते हैं दुःखी होते हैं। बडे-बडे रईस लोग आजकल भी अपने स्त्री, धन वैभव इत्यादिको छोडकर अलग हो जाते है, विरक्त हो जाते हैं। यह क्यो, या कि इच्छाका बधन उनके नही रहा। इच्छा तक साम्राज्यसे लगाव था। इच्छाके समाप्त होते ही वे बडे बडे साम्राज्य छोड देते है। कहते हैं ना कि फलां आदमी मोहममतासे अलग हो गया। अरे अलग हो गया तो अपनेको बधनमे बांधनेकी इच्छा नही की इसलिए अलग हो गया। बधन तो इच्छाको कहते हैं। किसीको अपना मानना कि यह मेरा है, यह अमुकका है, यह फलाका है इत्यादिसे विपदाएँ हैं। भीतरमे अगर जरा भी तान आ गया है कि यह मेरा है तो बस दुःख उत्पन्न हो गए। देखो दूसरेसे लात घूसे मिला करते हैं, पर कहते हैं कि यह मेरा है। परको अगीकार करनेसे ही सुख दुःख हो जाते है। परको अङ्गीकार करना ही इच्छा है, मोह है। यह मोह इस जीवके ऐसा फैला हुआ है कि उसे चैन नही आती है। यह जीव किसी किसी बातसे मौज मनाता है और किसी किसी बातमे दुःखी होता है। जिन चीजोमे मौज मनाता है उन चीजोमे मौज

के साथ साथ दुःख ज्यादा आते हैं। रात दिनके २४ घंटेके अंदर यह बताओ कि बहुत बढ़िया मौज आपको कितने मिनट रहती है ? रात दिनमें २-३ मिनटके लिए शायद मौज आ जाती होगी, बाकी समयमें कष्ट ही रहते हैं। कभी कोई बच्चा आ गया, उसकी प्रवृत्तिको देखकर दो एक मिनटके लिए मौज हो गयी, बाकी समयमें दुःख ही रहते हैं। दूकानपर बैठे है, कोई ग्राहक आ गया तो सौदा पटनेपर दो एक मिनटके लिए मौज आ गया। सौदा न पटा ग्राहक चला गया तो फिर दुःखी हो गये। और ग्राहककी अपेक्षामें तो पहिलेसे भी दुःखी बैठे थे। मौज और दुःखमें अन्तर देखा कि मौज तो राईके समान है और दुःख पहाड़के बराबर है। मौज और दुःखोंको फिर देख लो। दुःख तो सारे साचे है, मगर मौज जो दो मिनटको आता है वह भी झूठ है। मौज झूठा हो गया और दुःख साँचे हो गए। अरे भाई कोई बात हो तो बताओ। इन सबका क्या कारण है ? देखो भाई क्षणिक मौज माननेसे ही कारण इच्छाएँ ही हैं। इन इच्छाओंसे ही दुःख हो जाते है, दुःखोंसे दब जाता है। इस मौज माननेका कारण इच्छायें ही हैं। इन इच्छाओंसे ही दुःख हो जाते हैं।

जैसे कोई कहे कि साहब अपनी कहानी सुनाओ। अच्छा, सुनो। ५ मिनट तक सुनाया। तो उसमे यही पावोगे कि इसकी इन विषयोंमें इच्छा है, इसकी इन विषयोंमें इच्छा है। निर्णय कर लो कि इसमे अमुककी इच्छा है, इन सबसे दुःख होते है। इन सब इच्छाओंसे ही दुःख होते हैं, क्लेश होते है। सारी बातें ठीक हैं ना। सारी बात समझमें आयी हैं ना। सारी बात समझमें क्या, सिरपर ही तो आ रही है। अब समझते यह हैं कि ऐसा कोई उपाय बन जाय कि सारी समस्याएँ समाप्त हो जावें। हम कहते हैं कि जिनमें मोह है, जिनमें इच्छाएं हैं उनको कभी सुख नही हो सकता है। इतना तो निश्चय कर ही लो। जिनके क्रोध हो, मान हो, चाहे कुछ भी हो पर एक ये इच्छा न हो तो आनन्द ही आनन्द है। इच्छा मिटी फिर क्या पड़ा है ? तो ये इच्छाएं मिटें कैसे ? अरे इन इच्छाओंके मिटने की तरकीब तो हो। जो शास्त्र पूजे जा रहे है उनमें इच्छाएं मिटाने की तरकीब लिखी होती। इसीसे हम पन्ने पन्ने शास्त्रके आदरसे पलटते है, पूजते हैं, उनका मनन करते हैं और यह भगवान की मूर्ति मंदिरमें विराजमान है, परमात्मा अरहन्त, जिनेन्द्र की मूर्ति विराजमान है, उसकी उपासना उन्हे आदर्श मानकर ही तो करते हैं। इच्छा प्रभु के समाप्त है। सो निरीहकी पूजा करके हम अपनी इच्छाओंका नाश करें। हम गुरुवोंके सत्संग करते है, गुरुवोंकी उपासना करते है, क्योंकि इच्छाओंके मिटानेकी तरकीब उनके सत्संगसे मिलती है। जैसी इनकी वृत्ति है ऐसी बनाकर मैं प्रसन्न रहूं। जिसके पास इच्छायें होती हैं और चाहसे ही मौज किया करते हैं, उन्हे क्लेश ही रहते हैं। देखो भाई जिसके पास आनन्द है उसके पास हम नहीं जाते है और जिसके पास जानेसे अपनेको क्लेश है उनके पास जाते

है। जिसके पास जो है उसके पास जाकर उसे पाना चाहिये। दरिद्रतामे दुःख है—यह सोचकर जिनके दरिद्रता नही ऐसे धनीके पास जाते है। लोग जिनमे उन्हे कुछ मौज मिलता है उनके पास जाते है। इसी तरह इच्छाओंसे दुःख है। जिसके यह दुःख न हो उनके पास ही ज्ञानी जाते है और परन्तु मोही दुखियोंसे चिपटते है और जिनके पास दुःख नही हैं उनके पास हम नही जाते हैं। देखो मिल चल रहे हैं खटपट खटपट। यह चीज वहाँ बन रही है, वह चीज वहा बन रही है, खूब काम चल रहा है। वैसे ही हमारी भावनाओंकी मिल चल रहे हैं। एक इच्छा यह हुई, दूसरी इच्छा यह हुई, इस तरहसे इच्छाओंकी मशीन चला करती है। जितने दुःख आते है वे सब इन इच्छाओंके द्वारा ही आते हैं। अरे इन अटपट इच्छाओंमे पड़नेसे क्लेश ही क्लेश रहेंगे। अरे इन इच्छाओंको हटा दो, इनसे कोई मतलब नही निकलता। कोई इच्छा करो, पर उससे लाभ नही मिलने का है। जैसे ऊंटका पता ही नही रहता है कि वह किस करवट बैठ जाय? जैसे ऊंटका पता नही रहता है कि किस करवट बैठेगा। बैठनेमे भी यह भी नही पता रहता है कि किस तरफको बैठ रहा है? पहले तो वह जरा सा झुकेगा, फिर धर लचाकर बैठ जाता है। जब वह बैठ जाता है किसी तरफमे तो फिर पता लगता है कि ऊंट इस करवटसे बैठा है। पुद्गलोंके चाहे लट्ठ चले, चाहे तलवार, अटपट वहाँ कुछ नही होगा। और इस मनुष्यकी तरफ जरा देखो। इस मनुष्यका पता नही कि एक मिनटमे ही कब दिमाग बदल जाय या कुछ समय बाद क्या उसका बदले, उसका कोई पता नहीं चलता है। वह अपनी भूलमे आकर ही गलतियाँ कर डालता है। इन गलतियो के कारण ही इच्छाएं हो जाती है। इन गलतियोको अगर अपनेमे निकाल दें तो दुःखके बंधन छूट जावेंगे। दुःख तो इच्छाओंसे ही होते हैं। इच्छाएं न हों, केवल ज्ञाता द्रष्टा मात्र मैं होऊं तो उस ज्ञानमे ही मेरा पूरा पड़ेगा। इच्छाओंसे मेरा पूरा नही पड़ेगा। देख लो केवल एक इच्छा हो गयी तो बैठे-बैठे ही इच्छाओंसे दब गए।

जब बच्चे थे तब भी इच्छा उत्पन्न की थी, नीचे नही बैठते थे, गोद मे ही बैठते थे। जब थोड़ा बड़े हुए तो यह खा लें, वह खा लें, और तनिक बड़े हुए तो अनेक इच्छाएं आ गयी। स्कूल जावेंगे, परीक्षा देंगे, यह करेंगे, वह करेंगे और अगर मुखराज हो गये तो, हाय मैं तो स्कूल नही जाऊंगा, यह सोचकर इधर खेल रहे उधर खेल रहे। तनिक और बड़े हुए, शादी किया विवाह किया, पुत्र हुए देखो अन्य अन्य ढंगको बातें हो रही हैं। तो इच्छाओंने आराम नही लिया। इच्छाएं मेरे मनमे बहुत सवार हुयी। इन इच्छाओंने हमे बहुत सताया, फिर भी हम इनका आदर करते जा रहे हैं। अरे ये इच्छाएं बेकारकी है, व्यर्थकी हैं, इनमे कुछ मतलब नही, कुछ प्रयोजन नही। भला सोचो तो सही, इस शरीरका तो मरण होगा ही। इस शरीरकी क्या दशा होगी, खाक कर दिया

जायगा, भस्म कर दिया जायगा। वह जाननस्वरूप ज्ञानस्वरूप कहाँ जायगा ? ४३ घनराजू प्रमाण लोकमें पता नहीं कि वह किस जगह जायगा ? फिर उनके लिए कानपुर नहीं होगा। उनका हिंदुस्तान नहीं होगा। उनका घर द्वार इत्यादि भी नहीं होगा। वह तो ज्ञानमात्र अपने आपके स्वरूपमें अगर विश्वास कर ले तो सुखी हो जावें। तो ऐसा ही अब जान लो कि मेरा यहाँ कुछ नहीं है। जो कुछ भी हो धर्म कर लो तो उसका फल है। शरण कोई नहीं होगा। अपना आत्मबल ही शरण होगा, दूसरा कोई शरण नहीं होगा। इस लिए मैं इस अपने ज्ञानमय आत्माको देखूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप रमकर आनन्द पाऊं।

कुछ भी चेष्टायें करनेपर भी फिर जैसेके तस ही खाली हाथ रहते हो। किसी भी प्रकारकी चेष्टायें करो—दूकानकी, घरकी, मन्दिरकी, रहनेकी, पढ़नेकी, सोसाइटीकी समाजकी सेवाकी, देशकी सेवाकी तो वैसेके वैसे ही खाली हाथ रहते हो। इस आत्मामें कुछ भर जाता है, बन जाता है, बड़ा हो जाता है तो यह भी कुछ नहीं होगा, बल्कि उन चेष्टाओंसे कुछ खाली हो जाता है। नाना प्रकारकी चेष्टायें करो मगर कुछ लाभ नहीं मिलेगा।

अगर मैं कोई चेष्टायें न करूँ तो स्वच्छ बना रहूं। चेष्टायें न करनेमें कोई हानि नहीं। मेरी तो वास्तविक चेष्टा ज्ञानमय ही है। भीतरके स्वरूपको देखो तो यह केवल जाननहार एक आत्मा है अपने आपके स्वरूपमें घुला मिला है। मुझ आत्माका काम केवल जाननस्वरूप है, केवल जाननका काम है, इसके आगे और कोई काम नहीं है। इसके अतिरिक्त और कुछ करनेका अगर स्वभाव माना है तो धोखा है। यह तो जाननहार है, जानन ही इसका काम है। ऐसा ज्ञानमात्र मैं अपनेको देखूं। भीतरमें यह प्रवृत्ति बन जाय कि मैं तो सबसे निराला, निज तत्त्व हूं। इसका किसीसे सम्बन्ध नहीं है। कहींसे कुछ आता हो या कुछ हो जाय, ऐसी बात नहीं है। सब हैं, पूरेके पूरे हैं परिणमनशील हैं, अपने आपमें परिणमते रहते हैं। परिणमना ही तो इसका काम है। इसको कहते हैं कि उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् जो बन जाय बिगड़ जाय और बना रहे वही तो सत् है। यह प्रत्येक पदार्थोंका स्वभाव है। मैं किसीको बना दूं सो बात नहीं है। मैं किसीसे बन जाऊँ यह भी बात नहीं है। सो न तो मेरा स्वभाव है परका बनाना और न स्वभाव है परका बिगाड़ना। यह कला पदार्थोंमें अपने आप भरी होती है। प्रत्येक पदार्थोंमें यह उत्पादव्ययध्रौव्यकी कला स्वयं है। दुनियाके लोग यह नहीं समझते हैं सो उनकी यह बुद्धि बन जाती है कि ये चीजें बन जाती हैं तो कोई बनाने वाला अवश्य है। उस बनाने वालेका नाम ब्रह्मा है। देखा कोई चीज बिगड़ी, खतम हो गयी, गुजर गयी तो ऐसा करने वाले महेश हैं। ऐसा उत्पाद व्यय हो जानेपर भी कुछ रहा करता है उसका नाम विष्णु है। भैया! प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक है। पदार्थके स्वभावको तो देखता नहीं, अपने रूपको तो समझता नहीं, केवल बाहरमें ही देखकर कल्पनायें बनाकर यह

कहता है कि मैं अमुकको बना दूं अमुकको बिगाड दूं, अमुकको कुछ कर दूं । कोई दूसरा ह
बिगाड दे—इस शकामे भी सदैव दुखी रहता है । अरे मैं तो स्वच्छ हूं, मेरा कोई कुछ न
कर सकता । उत्पादव्ययध्रौव्य मेरेमे सदा होता है सो मैं स्वय अपने स्वरूपको जानता देख
हूं । मेरी ज्ञातामात्र ही चेष्टा है, बाकी काम नही है । सो मैं अपने ज्ञानस्वरूप आत्मामे र
कर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ ।

यह अन्तरकी बात, तत्त्वकी बात, इसको जो जानता है वह मूक हो जाता है, बो
नही सकता मौन हो जाता है । जैसे कोई किसीको कोई चीज समझाने और समझाता
समझने वालेकी समझमे नही आता है । अब समझाने वाला भी यद्यपि जानता है सब
पर यह ऐसा नही समझता है तो समझाने वाला बार-बार समझाता है, प
एक्सप्लेनेशन नही कर पाता है । जब सुनने वाला समझ नही पाता है तो बोलने वाल
टेबुलमे हाथ मारकर यो ही रह जाता है । क्या समझाया जाय बताया नही जा सकता है
अच्छा मिश्री तो सबने खायी होगी । कोई भाई खडे होकर मिश्रीके स्वादका एक्सप्लेनेशन क
देवें । अरे भाई आप जान रहे हैं मिश्रीके स्वभावको, पर बताता कोई नही है । जानते सब है
पर बता कोई नही सकता । जानते सब है, पर वर्णन कोई नहीं कर सकता है । ज्ञानस्वरूप
कैसा है ? कोई बतावेगा । जो तत्त्वका जानने वाला है वह मूक हो जाता है । सो मूक जीवन
एक छल पकड लिया कि जिसके जाननेमे गूगा हो जाता है । उस तत्त्वसे हमे क्या प्रयोजन
२०-२५ वर्ष बाद धर्म पढनेका रिवाज था । संस्कृत पढनेका रिवाज था । लडके विद्यार्थ
संस्कृत पढनेके लिए जाते थे । घरके मां बाप कहते कि अरे देखो संस्कृत पढनेसे कोई पंडित
हो गया, तो घाई-भाई तो घर छोडकर चल दिया । तो ऐसे पढानेसे कोई फायदा नही है
ऐसा मां बाप लडकोंके प्रति सोचते थे । अरे सच्चे तत्त्वको जिसने समझ लिया, जिसको ज्ञान
हो गया वह अगर घरसे चला जाय तो उसे आसानीसे चला जाने दो । उसका उत्सव मानो ।
ऐसा जो ज्ञानी ध्यानी निर्णय कर रहा है कि यह तो अपने आपका कल्याण करता है और
दूसरोंका भी कल्याण करता है तो उसका गौरव होना चाहिए । मान लिया आपने दूकान
कर ली, बहुतमा साम्राज्य कर लिया तो उससे क्या होगा ? बतलाओ । अरे ये तो सबसा
लगे हैं ही । अगर जीवोंका उद्धार हो जाय तो खुशी होनी चाहिए । यह मूर्ख पुरुष छल
करता है कि मेरको इस तत्त्वमे क्या लाभ होगा ? अरे भाई ऐसे तत्त्वमे, उपयोगमे ही शांति
है बाहरमे शांति नही है । बाहरी कामोमे तो अशांति ही अशांति है । अपने उपयोगमे लगने
से शांति ही रहेगी, अशांतिका कोई काम नही है । क्या आप बतला सकते है कि किसमे
शांति है ? शांति क्या सर्विसमें है, क्या दूकानमें है, क्या दुनियाके कार्य कामोंमे है ? अरे शांति
कही नही है । केवल अपने आपके स्वरूपका ज्ञान हो तो वहांपर शांति ही शांति मिलेगी । वहां
अशांतिका नाम नही है । अशांति कितने प्रकारकी होती है ? एक एक आदमीमे कमसे कम

एक एक हजार अशांति होगी। फिर एक आदमीमे इतनी प्रकारकी अशांतियां हैं तो दूसरोंमें भी एसी ही नाना अशान्ति हैं। ये अशांतिया भी एक दूसरेसे मिलती नहीं। इसकी और तरहकी अशांति, इनकी और तरहकी अशांति। कितनी तरहकी अशांतियां हैं, कोई हद नहीं है। मगर शांतिका जो रूप होता है वह केवल एक है और अशांतिके रूप करोडो हैं। शांति अगर मिली तो उसका केवल एक ढग है। अगर मान लिया इन लौकिक मौजामे कि हमे शांति मिले तो वह शांति नही हुई। शांति तो केवल एक प्रकारकी है। तो यह तत्त्व जो अपने आपमे विराजमान है उस ओर दृष्टि दो तो उसे शांति है। तो ऐसा तत्त्वको जानकर मै अपनमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

कोई एक मनुष्य बोल रहा है कि उस तत्त्वके जाननेमे क्या फायदा? जिस तत्त्वके जाननेसे मानो आलसी हो जाता है। तत्त्वको जानने वाला आलसी होता है। ऐसा आलसी होता है कि आंखें खोलना है तो पलक गिरानेमे आलस्य आता है। आंखोंके पलक अगर गिर तो उठानेमे आलस्य आता है। और की बात तो दूर रहो, जिनको योगी कहते हैं उनको भी, पलक अगर गिर गयी है तो पलकें उठानेमे आलस्य है और अगर नजर उठी तो पलकें बन्द करनेमे आलस्य है (यान बाह्यमे दृष्टि नही करता) ऐसे तत्त्वको जाननेका हमें क्या प्रयोजन है? और ज्यादा पढे तो ऐसे प्रश्न हो जाते हैं कि हम भी मुक्त हो गये तो दुनिया कैसे चलेगी? दुनियाके क्या हाल होंगे? सारे जीव सब वहां बन जायेंगे? सब तो नही बनेंगे मगर अनन्त बन जावेंगे। अनन्त बनने पर भी अनन्तानन्त हो रहेंगे। मगर इस ही प्रकारसे रह तो खुदको शांति कैसे मिल जायगी? अगर बाहरमे ही दृष्टि गयी तो वहा शांति नही मिलेगी। शांति तो वहां है जहां बाहरमे दृष्टि न हो। कुछ मत सोचो, कुछ मत बोलो, कुछ मत करो। देखिए, कल्पना, जल्पना, चलना क्या है? कल्पनाओंका सम्बन्ध मनसे होता है। जल्पना का सम्बन्ध वचनोंसे होता है। जिससे जल्प व गल्प गप्प बने और चलपना उठकर चल दे, उठाकर धर दे वह चलपना हुई। न कोई कल्पना हो, न कोई जल्पना हो और न कोई चलपना हो, केवल स्वरूपका ही परिग्रह हो तो तत्वज्ञानकी प्रवृत्ति बढे। शांति तो वहीं है। लोग कहते हैं कि उस तत्त्वके जाननेसे क्या फायदा जिसको जानकर आलसी हो जाते है। भया! शान्ति तो उस निर्विकल्प तत्त्वमे है। मैं अपने ही तत्त्वको निरखकर, उसमे ही उपयोग देकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

मन मेरा स्वभाव नही जो दौडा करता है। मनका काय मेरा कोई कार्य नही। मन मेरी वस्तु नहीं। मै तो मैं ही हू। मेरे स्वरूपका पता मुझे न हो—यह कैसी अनहोनी बात है? एक राजा था। घोडे पर चढ हुए जा रहा था। दीवानके घर परसे निकला। दीवान बुद्धिमान था। राजा बोला, दीवान! मुझे यह समझा दो कि आत्मा क्या चीज है और

परमात्मा क्या चीज है ? जो प्रसन्न होता है वह बड़ी बातें करता है । राजा भी प्रसन्न थे । घोड़े पर चढ़े हुए दीवानसे बात कर रहे थे । बड़े आदमी प्रायः जब प्रसन्न होते है तो बहुत बोलते है । राजा बोला, जल्दी समझा दो कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? दीवान बोला, अच्छा समझा दूंगा । राजा बोला—समझा दूंगा नहीं, ५ मिनटमें ही समझा दो । दीवान बोला—राजा माफ करो, मैं ५ मिनटमें नहीं आधा मिनटमें समझा दूंगा कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? राजाका घोड़ा छुड़ाया और चार छः कोड़े राजाके जमा दिये । राजा बोला—अरे भगवान, अरे भगवान । दीवान बोला—जिसको तुम अरे अरे कहते हो वह है आत्मा और जिसको भगवान कहते हो वह है परमात्मा । हे आत्मन् अपनेसे बाहर न जाओ, अपने से बाहर दुःख हैं । खुदके जाननेमे ही सुख है । सबको मानो कि भगवान सबमें है । अत्यन्त यथार्थ रूपमें आत्मा है । यदि उस अपने यथार्थरूपको देखा तो तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे सामने है । जहाँ यह रागादिक प्रतिभासित हो वह तो मैं हूं किन्तु रागादिक मैं नही हूं । मैं तो एक ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हूं । इस ज्ञानमय आत्मतत्त्वका जब नयोंसे हल न हो सका तो एक एक एकांत दर्शन बन गया । सब प्रकारसे देखनेपर आत्म-तत्त्वका सही ज्ञान हो सकता है कि मैं आत्मतत्त्व यह हूं मैं आत्मा सुखी हू, निज उपादान वाला हू, किन्तु माने यह कि मैं अमुकके कारण सुखी हूं तो इसीको कहते है निमित्तदृष्टि । और जो दृष्टि अपना आधार निज अपनी जुम्मेदार होती है इसीको कहते हैं उपादानकी दृष्टि । एक पुस्तक है, उसमें एक गधे की कहानी लिखी है । मैंने बचपनमें भी उसे पढ़ा था । अब चाहे दूसरा एडीसन तयार हुआ हो या नहीं उस कहानी की पुस्तकमें बहुत सी शिक्षाएं थीं । एक उपकहानी यह है कि एक धोबीके पास गधा और एक कुतिया थी । कुतियाके बच्चे २० — २५ दिनके हो गए । धोबी कुतियाके बच्चोंको उठा भी लेता था । प्यार भी करता था । कुतिया अपने पंजे मारकर धोबीको प्रसन्न करती थी । कुतिया पंजोंसे ही तो मारती है । कभी मुहमें धोबीके हाथ पगोंमें भरकर काटती । इसी तरहसे तो कुतिया खेलती ही है । इसी तरहसे धोबी उस कुतियाके बच्चोंसे प्रेम करता था । गधे ने यह देखा कि धोबी कुतियासे तो प्यार करता है जो बिल्कुल काम नहीं करती है और हम तो बहुत काम करते है फिर भी हमसे प्यार नहीं करता है ।

उसने इस बातको सोचा कि आखिर हमसे प्यार क्यों नहीं करता है । सोचा तो समझमें आ गया । गधेने समझ लिया कि कुतिया धोबीको लातोंसे मारती है और दांतोंसे काटती है इस वजहसे वह प्यार करता है । चलो ऐसा ही हम करें तो हमसे भी यह मालिक प्यार करेगा । गधा अपने स्थानसे चला और धोबीके पास पहुंच गया । सोचा कि लातें मारें तो शायद खुश हो जायगा । खूब लातें मारने लगा, काटने लगा । अब धोबीने डंडा उठाया

और उसे पीटने लगा। उस गधेने सोचा कि अरे कुतियासे तो वह प्यार करता है और हमे मारता है। तो भाई बातें सबकी न्यारी न्यारी है, उपादान न्यारे न्यारे है। कोई जीव किसी तरह पीडाओमे रहकर शान्त रह सकते है, कोई अशान्त रह सकते है, कोई किसी भी स्थितिमे धर्मात्मा रह सकते ह। इसकी परख बाहरी बातोमे नही होती, भीतर तत्वमे होती है।

ऐसा उपादान तत्त्व अगर समझमे आ गया तो सब कुछ ठीक होगा और जिसकी समझमे न आया तो यह ठीक नहीं होगा। जसे कोई नावसे नदीमे जाय, कभी इस दिशामे, कभी उस दिशामे तो लक्ष्य बिना भटकता ही रहता है उसी तरहमे इस जगतमे व जीव जिनका कोई शुद्ध लक्ष्य नही व भटकते ही रहते। इतना धन चाहिए, इतनी इज्जत चाहिए बाल बच्चे चाहियें। अरे ये सब क्या ह ? वे भी बूढे होगे और मरेंगे। क्या ज्ञानस्वरूप यह आत्मा यहाँसे निकलकर नही जायगा ? यहाँ कौनसी चीज सारभूत है जिनमें हम गडे हुए हैं ? सारी चीजें छोडकर जाना पडेगा। यहाँ कुछ रहता नही है।

एक सेठ था। उसके चार लडके थे। अपनी चाबी किसीको भी वह सेठ नही देता था। अपनी फेंटमे वह बाँधकर रखता था, किसी बच्चेपर वह विश्वास नही करता था। सेठ जब खतम होने लगा, गुजरने लगा तो बच्चोसे बोला, बच्चो लो, चाबी ले लो। बच्चे कहते है कि नही पिताजी, चाबी हमे नही चाहिए, आप अपने साथमे लेते जाइए। शान्तिका मार्ग प्राप्त कर लें, ऐसी कोई चीज दुनियामे है क्या ? बाहरी बात कुछ भी हो उसमे तो असतोष न करो। अरे भोजन करते है तो देहातोमे पूछते है कि किस चीजकी दाल बना दें, क्या बना दें तब पुरुष उत्तर देता है कि कुछ भी बना दो। उडदकी बनाओ, चाहे मसूरकी बनाओ चाहे चनेकी बनाओ, चाहे मूगकी बनाओ, चाहे अरहरकी बनाओ, जो होगा सो खा लेंगे। तो भाई जैसे खानेमे सतोष है उसी तरह यदि बाहरी व्यवस्थाओमे सतोष हो तब तो ठीक होगा। सतोष तो अतमे करते ही हैं। कोई गुजर जाता है तो कहते ह कि इतनी ही अवस्था थी, यदि भेदज्ञानसे सतोष करें तो लाभ है। ४ ६ हजारका टोटा पड जाय तो वहाँ या सतोष करते है कि वह तो किसीसे कर्ज लिया था सो चुक गया। अरे धन आए तो क्या, न आए तो क्या ? वह मुझ से सर्वथा भिन्न है। इस भेदज्ञानसे ही सतोष करें तो ठीक है। उसमे भेद तो रहता ही है, जबरदस्तीमे क्या है ? भया बात तो भेदविज्ञानकी ही एक पक्की है और यही रोज रोज चल रही है। अब कुछ भाइयोकी मर्जी है कि भक्तामर स्तोत्रका अर्थ हफ्ताभर चले। ठीक है चलेगा, किन्तु भैया ! बात पक्की भेदज्ञानकी ही है। एक कथा याद आ गयी। एक रगरेज था, वह आसमानी नीले रगकी रग ही रगना बहुत बढिया जानता था। कोई उससे आकर बोलता कि हमारी पगडी हरी रग दो, कोई बोलता सुनहरी रग दो

रंगरेज सब पगड़ी रक्खा लेता था वह कहता था कि अच्छा रंग तो देंगे। किन्तु रंग आसमानी ही ठीक खिलेगा। सो भाई कुछ पढ़ा लो, आनन्द तो भेदविज्ञानसे ही मिलेगा। चमत्कार तो तभी बनेगा जब ज्ञानस्वभावके विश्वासकी पूंजी हो। सो मैं अपने आपमें स्वयं निर्विकल्प, ज्ञानानंदघन हूं अथवा शरण हूं। अगर यह समझमें आ जाए तो मेरा भविष्य सफल है।

एक ऐसी दृष्टि बनाकर कि कोई समय ऐसा आयगा जब कि यह मैं आत्मा इस जड़ शरीरसे न्यारा होकर चला जाऊंगा। और उस समय शरीरकी क्या स्थिति होगी? मिलजुलकर यह मित्रमंडल इसे खाक कर देगा। इस शरीरसे जब जीव निकलेगा उस समय क्या स्थिति होगी? ज्ञानज्योतिमात्र यह आत्मा होगा, यह शरीर छूट गया, दूसरा शरीर मिला नहीं तो जो बीचके क्षण है वे क्षण किस प्रकारके होवेंगे एक। ज्ञानानन्दघनका पिंड जैसा है उस समय मैं परिणमता हूं वैसा ही परिणमता हुआ होऊंगा। एक भावस्वरूप पदार्थ होऊंगा। ऐसा भावस्वरूप पदार्थ मैं शरीरमें हूं अब भी हूं। दूसरे शरीरमें जब जाऊंगा तब भी मैं भावस्वरूप पदार्थ ही रहूंगा। शरीरमें रहकर भी मैं शरीरसे न्यारा हूं। मुझमें जो परिणमन तत्त्व है वह भी चित्स्वभावमात्र मुझसे न्यारा ही रहेगा। और उन परिणमन तत्त्वोंके मायने रागद्वेष की छाया न हो, शुद्ध ज्ञानमात्र सबसे न्यारा मैं होऊं। ये रागादिक ऐसे कैसे हो गए हैं? मुझमें स्वभावसे तो ये रागादिक नहीं हैं। मेरा स्वभाव तो रागादिक करनेका नहीं, केवल जाननका है। जैसे पानीका स्वभाव बहनेका है याने द्रवता का है। पर ठंडा होने व गर्म होनेका नहीं है। ठंडा करनेसे पानी ठंडा हो जाता है और गर्म करनेसे गर्म हो जाता है, पर पानी सर्वत्र द्रव ही है, गीला ही है बहने वाला ही है। पानी अपने स्वभावसे न तो गर्म ही होगा और न ठंडा ही होगा। पानी तो कूलर या ठंडा करने वाली मशीनसे ठंडा होगा और अग्निके द्वारा गर्म होगा। ऐसी स्थितिमें भी पानी द्रव है, बहने वाला है। इसी तरह यह आत्मा चाहे क्रोधरूप परिणमन रहे, चाहे लोभरूप परिणमन रहे चाहे विषयकषायरूप परिणमन रहे पर अपने ज्ञानस्वभावको नहीं छोड़ता, केवल जाननके स्वभावमें रहता है। इसी कारण विषयकषाय यद्यपि आ जाते हैं तो भी जानन रहता है। जो जानने वाला नहीं है उसमें विषयकषायके परिणमन नहीं आते। ये विषयकषाय मेरे स्वभावसे नहीं आ रहे हैं, बल्कि उपाधि पाकर आ रहे हैं। जो क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि हो जाते हैं उनका करने वाला मैं नहीं हूं।

जैसे एक दर्पण सामने है। दर्पणके स्वभावका काम केवल स्वच्छता है, केवल झलक है, झिलमिलाते रहनेका स्वभाव है। अपनी चमक बनी रहे यही उसका काम है। जो चीज सामने लेकर रक्खो तो उसकी छाया दर्पणमें सही सही पड़ती है, दर्पणमें ही प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। अगर मुक्का बनाओ तो मुक्का दर्पणमें दिखाई देगा। इसी प्रकार ओंठ अगर बनाओ तो ओठोंका प्रतिबिम्ब सामने आ जायगा, आंखें अगर तिरछी

बनाओ तो आँखोंका तिरछा प्रतिबिम्ब आयगा। दर्पण क्या करे ? इसी तरह तेरी आधीनता की बात है कि क्रोध कर ले, मद कर ले, मैं अपनी आधीनतासे यह कुछ नहीं कर पाता, किंतु जैसी उपाधि सामने आती है वैसा कर डालता है। इसी तरह दर्पणका परिणमन केवल शुद्ध, स्वच्छ है। आत्माके परिणमनमें रागद्वेष नहीं, विषयकषाय नहीं, वह केवल शुद्ध स्वच्छ एवं ज्ञायकस्वरूप है। ऐ आत्मा! मलीन बननेका तेरा काम है क्या ? आत्माका उत्तर यह है कि मेरा काम नहीं। मेरा काम तो प्रभुकी तरह शुद्ध ज्ञानमें परिणमते रहनेका है। पर क्या करूँ ? जब यह उपाधिका उदय होता है तब शुद्धकी अशुद्ध योग्यतामें यह परिणमन आता है, अशुद्ध, विकारमय, रागादिक, क्रोधादिक, तो मैं इनको करता नहीं हूं इनके करने वाले तो कोई दूसरे ही हैं। इस बुद्धिसे अपनेको ज्ञानस्वरूपकी ओर ले जाया जाता है। इसका कर्ता तो कर्म है। मैं तो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप ही हूं, मैं तो जाननस्वरूप हूं। मरमें रागात्मक भाव नहीं। विपरीत परिणमनमें बड़ी विचित्रताएँ हैं, उनका कर्ता कर्म है। प्रकृति कहो या कर्म कहो। जैनसिद्धांतमें प्रकृति भी कहते हैं और कर्म भी कहते हैं। अपनेको शुद्ध स्वभावकी ओर ले जाने वाली इस दृष्टिमें कितना आराम मिलता है ? विषयकषाय होते हैं वे कर्मके उदयसे होते हैं। यह मेरा काम नहीं है। मेरा काम तो ज्ञानमात्र होनेका है, जाननका है। जिनमें मेरा अधिकार नहीं उन्हें मैं अङ्गीकार नहीं करता। ये रागादिक होते हैं, होने दो, होकर मिटने दो। इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। इन बाहरी वस्तुओंके विषयमें ज्ञान होता है। सो ज्ञान तो मेरा काम है विकल्प मेरा काम नहीं। जब अपनेको ज्ञानमात्रका अनुभव होगा तो ये रागादिक कर्म नष्ट हो जावेंगे। सो मैं ज्ञानमात्र अपने स्वरूपको देखूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

कहते हैं कि मेरा काम तो जानन है मेरी क्रिया तो जानन है। मैं कितना क्या हूं ? अपनेको ही देखनेमें पता पड़ेगा। मेरा काम तो जानन है ये विकल्पकी तरंगें उपाधिके कारण आती हैं। मेरा काम विकल्प करना नहीं है। जगतके जीव तो विकल्पोंके कारण बिगड़े रहते हैं और वे आजीवन इस जगतमें सोचते रहते हैं। ये रागादिक उठते हैं तो उठें, उनसे मेरा क्या ताल्लुक है ? मैं तो ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानमात्र ही मेरा काम है, जानन ही मेरा काम है। मुझ आत्मामें न जागरण है न सोना है, न वचन बोलना है, न खाना है, न पीना है। मेरा काम तो मेरा काम तो यह है कि मैं जाननमात्र हूं, ज्ञाताद्रष्टा हूं। कर्ता भोक्तापनकी ख्याति तो दूर किये हैं उसका भाव करना तो विपत्ति है। जैसे कभी स्कूलमें बच्चोंसे कोई काम बिगड़ जाय, या कोई बच्चा किसी कामको बिगाड़ दे तो मास्टर उसकी प्रशंसा करता है। मास्टर यदि यह कह कि वाह यह तो बड़ा ही अच्छा काम किया है, बड़ी बुद्धिमानीका काम किया है। इतना सुनते ही जिस बच्चेने काम बिगाड़ दिया है वह झट कहेगा कि

मास्टर साहब मैने यह काम किया है। मास्टर केवल यह जानना चाहता था कि किस लडके ने काम बिगाडा, इसलिए प्रशसा करता था। इसी तरहसे ये जगतके जीव मास्टर बने रहते हैं, प्रशसा दूसरोकी विनय करते है। वाह यह तो बडी बुद्धिमानीका काम है, बडा ही सुदर काम है आदि। यह पता नही कि इस प्रशसाके फलमे मेरे को विपदा ही आवेगी। बाल बच्चोको पढा दिया। अरे उन बच्चोंके जीवन भर दास बने रहे, उनकी सेवा की, उनको खिलाया पिलाया। उनका क्या किया ? अरे वे तो स्वय ज्ञानमात्र आत्मतत्व है। केवल जानन ही उनका काम है। जगतके १०—२० हजार आदमियोंके बीचमें जरा अच्छा सुन लिया तो क्या इज्जत बढ गई। यदि यहाँ न रहते अन्यत्र कही रहते तो यह समागम मेरेको क्या था ? अगर कही कीडे मकोडे होते, पेड वनस्पति होते या अन्य किसी पर्यायोमे होते तो इस रग ढगका ख्याल आता। अरे मनुष्य हो गये हो तो यह अपनेको समझो कि हम यहाँकी मौजके लिये पैदा ही नही हुए है। हम ऐसा ही समझें कि अन्य भवमे होते तो यहाँ क्या था ? हम निश्चय करें कि हम अपने ही कायके लिए पैदा है हम दूसरोकी दिखावटके लिए बनावटके लिए, तथा सजावटके लिए नही। हम यही अन्यत्र पैदा हो गए हो यह तो है नही। यह मै किसी भी क्षण अपने विकल्पोको छोडकर अगर काम करूँ तो अपने आपमे आनन्दमग्न हो सकता हू। यदि मै विकल्परहित होकर काय करता हू तो ठीक है, नही तो सब दुदशा हो जायगी। इस जगतमे कोई किसीका मोह करता, कोई किसीका मोह करता, पर मोही प्राय सभी है। इसी कारण दुखी भी सभी है।

देखो थोडा ही ज्ञान हो, पर मेरी आत्मामे विवेक हो तो ठीक है। पर बहुत ज्ञान हो और आत्मामे विवेक न हो तो ठीक नही है। उल्टा ज्ञानसे तो विकार है। थोडा ज्ञान हो पर सही ज्ञान हो तो सबसे न्यारा, ज्ञानमात्र अपने आपमे समझ रहती है। बहुतसे शास्त्रोका ज्ञान हो, तीन लोककी रचनाओका ज्ञान हो, बहुत ज्ञान हो, पर विचार उल्टा हो, विवेक साथ न हो तो सही ज्ञान नहीं है।

एक बुढियाके दो लडके थे। दुर्भाग्यसे उन दोनो लडकोके आँखका रोग था। एकको कुछ कम दिखता था और एकको ज्यादा दिखता था, पर पीला दिखता था। दोनो बच्चोको बुढ़िया वैद्यके पास ले गयी। वैद्यने दोनोको एक ही दवा दी। कोई सफेद सफेद भस्मसी थी। कहा कि चादीके गिलासमे गायके दूधमे इस पुडियाको इतनी इतनी खुराक मिलाकर देना, आखें ठीक हो जावेंगी। बुढिया दवा लेकर गयी। दादीको चाँदीके गिलासमे गायके दूधमे भस्म डालकर देने लगी। पहले उस लडकेको दिया जिसको पीला दिखता था। लडकेने कहा—मा, क्या हमी तुम्हारे दुश्मन मिले ? इस पीतलके गिलासमे मूत डालकर हमे दे रही हो, हम तो इसे नहीं पीवेंगे। अब उस लडकेको दिया, जिसे कम दिखता था। उसने देखा कि

चाँदीका गिलास है, दवा है भस्म पड़ी हुई है । उसने उस दवाको पी लिया । उस दवाके पी लेनेसे आँखोंका रोग दूर हो गया । जो ज्यादा रखता था, ५० हाथ, १०० हाथ दूर तक देखता था, उसकी उल्टी दृष्टि थी, इसलिए दवा नहीं पी और उसे भला नहीं हुआ । जिसका ज्ञान ज्यादा है मगर प्रयोग या उपयोग उल्टा है तो भला नहीं होगा । मेरा भला तो निजी आत्माके अनुभवमें होता है जो कि सही ज्ञान है । यदि ज्ञान ज्यादा है पर सही नहीं है तो उससे भला नहीं हो सकेगा । जिसकी अपनी दृष्टि होती है, अपने चरित्रकी दृष्टि होती है अपने चरित्ररूप परिणमनकी दृष्टि होती है वह ही दृष्टि सही मानी जाती है । ज्ञानी पुरुष यह सोचता है कि जानन ही मेरा काम है । सोना, उठना, बोल-चाल इत्यादिक मेरा काम नहीं है । ये होते हैं उपाधिका निमित्त पाकर, अपने आप होते हैं । अरे होते हैं तो होने दो । मेरा यह काम नहीं है । मेरा काम सर्वत्र जानन ही जानन है । केवल जानन ही इस मुझ आत्माका काम है । मैं करूँगा क्या ? अरे इस आत्मस्वरूपको उपयोगसे खोल लो इसको देख लो । देखोगे कि यह आत्मा तो केवल जाननका ही काम कर रही है । जानता सबमें रहता हूँ । केवल जानन ही मेरा काम करता रहता है । यह काम कठिन हो रहा है । मैं सब ओरसे जानता हूँ सर्वत्र ऐसी ही पद्धति जाननस्वरूपकी है । ससुराल जाने वाली बहुत-सी लड़कियाँ हँसी खुशीसे जाती हैं, मगर रोना पड़ता है । भीतरसे तो यह होता है कि चूल्हा ठीक करना है, शृंगार करना है, यह करना है वह करना है कुछ हँसी खुशी होती है, मगर यह जानती है कि रोना चाहिए यही ठीक है । इसी तरह दूकानपर मुनीम ग्राहकोंसे ये बात करते हैं कि तुमपर मेरा इतना दाम गया है, मेरा तुम्हारा मेरे पास इतना आया है । इस तरह मेरा भी कह रहा है, परन्तु श्रद्धा यह है कि मेरा कुछ नहीं, यह तो सेठका है । अरे मेरा तो यह काम नहीं, मेरी यह ड्यूटी नहीं । यह तो सेठका काम है । और भी देखो विवाह इत्यादिमें पड़ौस की स्त्रियाँ बाजा बजानेके लिए आ जाती हैं, गाने गाती हैं—"मेरे बना सरदार, राम जैसी जोड़ी" आदि सो तो ठीक है । अगर यही दूल्हाकी घोड़ीसे गिरकर टाँग टूट जाय तो उनको कोई दर्द नहीं होता । और अगर दूल्हाकी माँ को इसका पता लग जाता है तो वह कितना दुःख करती है ? उसके दुःखका ठिकाना नहीं रहता है । सो भैया ! अगर परपदार्थोंको मान लें कि ये मेरे हैं तो दुःख होगा और अगर यह समझमें आ जाय कि ये मेरे नहीं हैं तो दुःख न होगा । मेरा काम केवल जाननमात्र है । ऐसे जाननमात्र स्वरूप वाले आत्माका काम ही केवल जानन है । हे प्रभो ! मैं जाननके कामसे ही संतोष पाऊँ और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ ।

अहा हा ! यह सारी दुनिया, यह मेरा सारा संसार केवल मेरे संकल्पमें ही उत्पन्न हो गया व कल्पना मिटते ही नष्ट हो गया । यह मेरा है क्या ? संसार केवल कल्पनाओंरूप

ही बना हुआ है। कल्पनासे यह उत्पन्न हुआ और यहाँसे मरकर अकेले ही चला जायगा। जब तक मैं इस शरीरमें हूँ तब तक यह मेरा है, यह उसका है, इस संकल्पसे ही मैं बन गया हूँ। केवल संकल्प ही हो गए हैं, यह मेरा काम है, यह मेरा परिवार है आदि। जब ■ जुदा हो जावेंगे तो फिर दुनियाभरका पता चल जाय। ज्ञानस्वरूप आत्मा इस देहसे निकल जाता है। यह तो सबसे न्यारा है, पर महसूस यह करता है कि यह मेरा ही है। यही तो संकल्प है। यह सारा संसार संकल्पोंमें ही बैठा हुआ है और सारे संस्कार ज्ञान होनेसे ही नष्ट हो जावेंगे।

एक बुढ़ियाका छोटा बेटा मर गया। उसी छोटे बेटेको ही वह सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छोटा पुत्र मर गया तो वह बुढ़िया उसे जलाने नहीं देती। उसको अपनी छातीसे लगाए रही। उस बुढ़ियाको एक जगह साधु मिला। साधुसे बुढ़ियाने बताया कि महाराज मेरा पुत्र मर गया है, जिन्दा कर दीजिए। साधु बोला कि जिन्दा हो जायगा, मगर एक काम यह करो कि जिस घरमें कभी कोई मरा न हो, उस घरसे पावभर सरसोंके दाने ले आवो। बुढ़िया जल्दी जल्दीसे दूसरेके घर गयी बोली कि हम एक पाव सरसोंके दाने दे दो। घर वाले बोले—हां, हां एक पाव नहीं ? सेर ले लो। बुढ़ियाने पूछा—मगर यह तो बतलाओ कि इस घरमें कोई मरा तो नहीं है। घर वाले बोले—मां इस घरमें तो बहुत लोग मर गए—दादा मर गए, भाई मर गया, बहिन मर गयी आदि। बुढ़िया बोली—तो हमें ये सरसों नहीं चाहिए। अब बुढ़िया तीसरे घर गयी। बोली—पाव सरसों चाहिए, बोले—हां हां १० सेर ले लो। मगर यह तो बताओ कोई घरमें मरा तो नहीं है, वे बोले अरे यहां तो बहुत मर गए है। इसी तरहसे बुढ़ियाने १०-१०-१० घर ढूंढ लिए, सभी जगह यही एक उत्तर मिला। इतना पूछनेके बाद उसके ज्ञान जगा कि अरे सारी दुनियामें यही हाल है। इतना ज्ञान जब बुढ़ियामें जग गया तो प्रसन्न हो गयी। बोली—अरे ये तो सब न्यारे-न्यारे पदार्थ है। अब तो उसके ज्ञान जग गया। बुढ़िया प्रसन्न चित्त साधुके पास गयी, साधुसे नमस्कार किया। साधुने पूछा—मां तुम प्रसन्न दिखती हो क्या तुम्हारा बच्चा जिन्दा हो गया। बुढ़ियाने उत्तर दिया कि हां हमारा बच्चा जिन्दा हो गया। आपने सुनाया था कि सारी बातोंमें ३ प्रकार हुआ करते हैं—(१) शब्द, (२) अर्थ, (३) ज्ञान। शब्द पुत्र, अर्थ पुत्र और ज्ञान पुत्र। अगर शब्द पुत्र हो तो वह यह है जो केवल पुत्र शब्द लिखा हुआ है। अर्थपुत्र यह है जो दो हाथ पैर वाला है और ज्ञानपुत्र वह है जो पुत्रके बारेमें ज्ञान होता है।

बुढ़िया बोली कि मेरा तो ज्ञानपुत्र था, ज्ञानपुत्रकी ही मृत्यु हो गयी थी, वह अब तक जिन्दा है। वह अपने आपमें है वह जीवित हो गया है। सो भाई इस सारे विश्वमें मेरा कुछ है नहीं। यह बात पक्की मानो, नहीं तो धोखा ही धोखा रहेगा। जगतकी व्यवस्था यह है कि कोई किसीकी चीज छुड़ाना नहीं, पर सोच लो कि अरे ये कुछ मेरी नहीं हैं। इतना सोच

लेने स नय। विगाड हो जायगा ? जमे बुढ़ियाको ज्ञान जग गया कि यह मेरा पुत्र ज्ञानपुत्र है, बोली महाराज मेरा ज्ञानपुत्र जिन्दा हो गया है । अरे मैं तो ठीक हू । मेरा ठीक करने वाला कोई इस जगतमे नही है । यह ध्यान अपने आपमे रमना चाहिए कि मेरा मात्र म ही हू ये जगतके सारे पदार्थ हमसे छूट जावेंगे । यह विश्वास बनना चाहिए कि मरा कोई इस जगतमे नही है । यह मं सदा ज्ञानमात्र स्वन परिपूर्ण हू, मं जसा हू तसा ही हू ।

अपने आपको छोडकर वाकी जगतके जितने भी पदार्थ हैं वे पदार्थ क्या आपके आधीन हैं ? वे आपके आधीन नही है । वे तो स्वय सत् है । उनके चतुष्टयमे उनका परिणमन होता रहता है । ये तो आपके आधीन हो ही नही सकते हैं । यदि कुछ आपकी इच्छाके अनुकूल हो गया तो यह काकतालीय न्याय है । जैसे कोई नारियलका पेड है, नारियल लगे हुए हैं, एक कौवा नारियलके पेड पर उडता है, उसके उडते समय ही अगर एक नारियल नीचे गिर पडे तो एसा लोग सोचते हैं कि कौवे ने नारियलको गिराया । अरे वह तो अपने आपमे ही गिर गया है, कौवेके गिरानेसे नही गिरा है । एक बार अगर ऐसा समय आ गया तो आ गया, बार बार नही आता है । कोई कभी आपके मनके माफिक काम बन जाय आपके मित्र जन आपके अनुकूल हो गए, आपके परिवारके लोग आपके अनुकूल हो गए, ऐसी बात तो शायद ही कभी हो जाय, नही तो सवथा आपके अनुकूल कुछ नही होता । देखो भाई उस नारियलके गिर जानेमे क्या कौवेकी करतूत थी ? नहीं, वह तो स्वय ही गिरा था । मगर लोग कहते हैं कि कौवेके चले जानेसे नारियल गिरा । सो भाई परपदार्थ स्वय परिणमते हैं, जितने भी परपदार्थ हैं, वे किसी दूसरेके आधीन नही है, बल्कि स्वय ही अपने आधीन हैं । बडो बडोके भी ऐसा नहीं हो पाता कि जैसा वे चाहें वसा अन्यत्र परिणमन हो जावे ।

राम और सीताका कितना बडा भारी स्नेह था, कोई प्रमाण द सकता है ? राम जानते थे कि सीता निर्दोष है । धोबीके द्वारा वही बात फैल गयी थी । जब रामने वह बात सुनी तो फिर लोकमर्यादा को बचानेके लिए सीता जी को जगल छुडवा दिया । राम यद्यपि जानत थ कि सीता निर्दोष है फिर भी कहते हैं कि लोकधमकी मर्यादा रखनो चाहिए । लोग कुछ अप्रीति न ग्रहण करें—यह सोचकर ही उन्हे जगल भेज दिया था । तो भाई देखो सीता के आधीन राम भी नही हुए । सीताका इतना स्नेह था, फिर भी सीताके मनमाफिक कुछ न हुआ ।

जिन लडको बच्चोंसे तुम प्रेम करते हो वे आज्ञाकारी भी हैं, फिर भी व अपने विषय कषायों को लिए रहते हैं । वे अपने स्वार्थके लिए ही आज्ञाकारी बने हुए हैं । वे मेरे आधीन नही है । भाई कोई किसीके आधीन नही है । वे स्वय ही परिणमते रहते हैं । वे मेरे

अनुकूल नहीं परिणमते, वे मेरे आधीन नहीं है। मेरे आधीन तो मेरा ज्ञानस्वरूप है। मैं अपने ज्ञानस्वरूपको जानू तो मेरी रुकावट करने वाला कोई नही है। हम ही स्वय विषय कषायोमे पडकर अपने ज्ञानमे रुकावट पैदा करते हैं, अन्य कोई दूसर पदाथ मेरे ज्ञानमे रुकावट नही पैदा करते। बाहरी पदार्थोमे पडने से ज्ञानकी रुकावट होती है। कभी किसी चीजकी इच्छा हो जावे कि अमुक चीज खा लें, अमुक चीज पी लें। न जाने कानमा विघ्न आ जाय वह चीज कहीं न मिले।

भाई परपदार्थोके सयोगमे तथा अपने आपके ज्ञानस्वरूपमे नाना विघ्न नही होते हैं। अपने आपके स्वरूपका अनुभव करें तो करें और अगर न करें तो न करें। पर बाह्य-पदार्थोके ख्यालको भुला देवें, विश्रामसे बैठें तो अपने ज्ञानका अनुभव सुगम हो जायगा। मेरे काममे दूसरे पदाथ कोई बाधा नही डाल सकते हैं। हम स्वय अपने कार्योमे बाधा डाल लेते है। जब वाय वाला पुरुष खुद ही खटियासे उठकर बाहरको भागता है, इसी तरह विषय कषायोकी वेदना से हटकर बाह्यमे भागते हैं। बाह्यके उपयोगसे ही ये विषय कपाय बन गए है और दूसरी कोई बात नही है।

अर तू तो अत्यन्त स्वाधीन है। तू अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव तो कर। लोकके व्यवहारकी सारी बातें पराधीन हैं। स्वाधीन तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव है। लेकिन देखो जो स्वाधीन बात है, सरल बात है, सुगम बात है, निर्विकल्प बात है उसकी ओर तो दृष्टि ही नहीं जाती। जो पराधीन है, दुगम है जिनमे विघ्न ही भरे होते हैं, ऐसे बाह्य पदार्थोके सयोगके लिए कमर कसे हु। भैया अपनेको ज्ञानानन्दमय स्वय सर्ववैभवसम्पन्न समझकर बाह्यपदार्थोको अपने उपयोगमे न लेकर, अपने आपमे ही विश्राम पाकर, अपनेमे अपने लिए अपने लिए स्वय सुखी होओ।

देखो राज्यमे महान क्लेश हैं। राज्यका मतलब केवल राज्यसे न लो। राज्यका मतलब दुकानसे, व्यापारसे, आजीविका इत्यादि से है। ये सब बाहरी बाते हैं इनमे पडनेसे क्लेश ही क्लेश ह। भाई करोडो रुपयोंका धन एकत्रित कर लें तो उसमे भी क्लेश ही क्लेश हैं। धन कमाने मे, रोजिगार करनेमे, राज्य करनेमे, हुकूमत करनेमे देखो कितने क्लेश ह? अनन्ते क्लेश उत्पन्न हो जाया करते हं। अब योगी सन्यासियोकी भिक्षावृत्ति देखो—कोई पुरुष ज्ञान उत्पन्न करके अतरगमे विरक्त हो जाय अपने ध्यानमे लीन हो जाय वह योगी सन्यासी है। उसे कभी क्षुधा लगे तो उसे क्लेश नहीं होत। क्योकि जब भूख लग तब वह बच्चेकी भाँति गोचरीको निकलता है। वह किसी गाँवमे निकल जाय। यदि कोई आदरसे बुलाये, कुछ खानेको मिल जाए तो खा ले नही तो सतोष कर यही भिक्षावृत्ति कहलाती है। भिक्षा वृत्तिमे केवल क्षुधामात्रका यत्न है। इन दोनोमे अन्तर देखो तो बरबादी दोना ने की।

बड़े बड़े महाराजा २४ घंटे क्लेश ही उठाया करते हैं पर एक संन्यासी मुश्किलसे मौन घंटामें ही अपना काम कर लेता है, उसे कोई क्लेश नहीं होते हैं। ऐसा काम तो वे ही कर सकते हैं जिनके पास हिम्मत है। आहार न मिले तो ठीक है और मिले तो ठीक है। दोनोंमें राजी होवे तो काम चलेगा, नहीं तो नहीं चलेगा। भाई भिक्षावृत्तिसे तो क्लेश नहीं होंगे, पर बड़े बड़े धन वैभवके होनेमें तो क्लेश ही रहेंगे। परन्तु परमार्थमें शांति न तो भिक्षावृत्तिमें है और न धन वैभवमें है वरन् अपने ज्ञानस्वरूपके दर्शनसे है। भाई जब ज्ञान का अनुभव हो सभी स्वाधीनता है। जब इच्छा हो तब ज्ञानका अनुभव कर लो—ये प्रत्यक्ष पदार्थ अगर तुम्हारे संयोगमें हैं तो यह पराधीनता है। मैं किसी भी धन-वैभव, परिग्रह इत्यादिके साथ न रहूंगा, क्योंकि ये सब मिट जावेंगे। आज न तो राम ही दिखते हैं न तीर्थङ्कर ही दिखते हैं और न कृष्ण दिखते हैं। ऐसी हो जगतकी स्थिति है। जो हम समागम में रहते हैं, समागममें ही मस्त हैं, उन्हें यह खबर नहीं रहती कि इससे क्लेश होंगे। इन समागमोंमें अचानक वियोग होता है। इन समागमोंमें ही बड़े-बड़े क्लेश उत्पन्न कर लेते हैं। अगर हमें यह सोचना है कि सब पदार्थ जुदा जुदा हैं उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। कुछ भी तो गुंजाइश नहीं कि कोई परपदार्थ मेरा हो जाय। मैं तो ज्ञानस्वरूप हूं। जितनी भी चीजें हैं ये सब अपने आपमें हैं। मेरा किसी भी परपदार्थमें सम्बन्ध नहीं है। यदि मेरा उपयोग बाह्यमें होगा तो मुझे सुख नहीं होगा। देखो भैया! यदि इन समागमोंके बारेमें यह विश्वास हो जाय कि इनका वियोग होगा ही तो उनके वियोगसे दुःख न होगा। जैसे कोई मित्र ऐसा हो कि जिसके प्रति यह ख्याल आ जाय कि यह तो धोखा देने वाला है ऐसा ख्याल उसका पहले से ही बन गया है। यदि वह मित्र उसे धोखा दे देवे तो उसके प्रति ज्यादा दुःख नहीं होंगे क्योंकि पहले ही मालूम था कि इससे हमें धोखा मिलेगा और अगर जिसके प्रति कोई शंका न हो और वह अचानक ही धोखा देवे तो उससे बहुत क्लेश होगा। बाहरी पदार्थोंका जो समागम है वह भिन्न है, अहित है विनाशीक है, ऐसा जानूं तो क्लेश न होगा। वस्तुतः मैं तो केवल अपने आत्माके अन्दर रहित तत्वको जानता हूं। सो मैं ज्ञानमात्र आत्माका अनुभव करके स्वयं सुखी होऊं। देखो यह आत्मा स्वरूप बड़ा महान् है ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानमें ही इसकी रक्षा होती है, सहजस्वरूप आनन्द ही इसमें भरा हुआ है। इसमें कोई अधूरापन नहीं है। ज्ञानका नाम ही आत्मा है, आनन्दमय ही यह आत्मा है, परमात्मा है। कोई पिंड रूप चीज तो मैं नहीं हूं। जो पकड़कर दिखाया जा सके। भैया! जो मेरा ज्ञानस्वरूप है वह जानता है, इसीलिए माने आत्मा है। ज्ञानमात्र भावको छोड़कर अगर हम बाह्यमें झुके तो दुःख ही मिलेंगे। हम तो बिल्कुल ठीक हैं, हमारेमें कोई कमी नहीं है। मामला बिल्कुल तैयार है। खाना बिल्कुल तैयार है, खाओ चाहे न खाओ यह तुम्हारे विवेककी बात है।

सारा मामला तैयार है, मगर तुम इस अपने आत्मस्वरूपको नहीं देखते हो। अरे ये बाह्य पदार्थ जो मेरे कुछ नहीं है, जिनसे मेरा कोई ताल्लुक नहीं है। अरे अपने स्वरूपको न देखकर जिन बाह्यमें ही दृष्टि लगानेसे बरबादी ही बरबादी है उन्हींकी ओर झुकना यह अपने प्रभुपर अन्याय है। अगर अपने स्वरूपको देखना चाहो तो देखो और अगर न देखना चाहो तो देखो, यह तुम्हारे विवेककी बात है। अधूरापन तो कुछ है नहीं। मामला तो पूर्ण अनादिसे ही है। जिस पदार्थमें यह जीव अपना उपयोग देता है वही पदार्थ इसको मिल जाता है। कभी बैठे बैठे अनुभव किया होगा कि कोई नीबू बड़ा हो, मानो आनेका एक वाला। उसकी छोटी-छोटी फाके करो, ऐसा उपयोगमें सोचो और उसके स्वादकी कल्पना करो तो नीबूका खटास गलेमें उतरता है। जिसे यहाँ कहते है कि मुँहमें पानी आ जाता है। तो क्या आपने नीबूका रस का स्वाद लिया इसलिए गलेमें खटास आई? नहीं, नीबूके प्रति ज्ञान किया गया, ध्यान किया गया तो उससे गलेमें खटास आयी।

बाहरमें से इस आत्माको कुछ नहीं मिलता स्वयमें ही कुछ मिलेगा। क्या मिलेगा जो सोचेंगे वह मिलेगा। वह अपने ज्ञानकी चीज है, पदार्थोंमें लोग मान लेते हैं। परपदार्थोंके उपयोगसे कुछ नहीं मिलता है, केवल अपना ज्ञान परपदार्थोंके जाननेमें लगता है सो उसके लगानेसे स्वयमें ही कुछ मिलता है। मेरी आत्मामें किसी चीजका प्रवेश नहीं है। परपदार्थोंके उपयोगमें तो पर स्थान ही प्राप्त होता है और निजके उपयोगसे परका अभाव होता है। इसने तो बाहरी पदार्थोंको सोच लिया कि मेरा है। अरे अगर बाह्यको सोच लिया तो खुदका उपयोग नहीं रहेगा। अपने आपको यदि सोचो तो परिणाम अच्छा रहेगा। अब यह विवेक कर लो कि कहाँ उपयोग लगाना चाहिये? मुझे इज्जत नहीं चाहिए। अगर इज्जत चाहोगे तो मोहमें फसे रहोगे। मोहमें फसनेसे पराधीन रहना पड़ेगा। परमें लगनेसे दख लो लाभ है क्या? भैया! परपदार्थोंमें कोई लाभ नहीं है। अरे अगर उन समागमोंमें फसा रहा तो पराधीन होना पड़ेगा। सब अपनी अपनी भावनाओंसे परकी आधीनताका विकल्प करके रहनेसे अपने अपने आधीन हैं। ये मनुष्य एक ही जगहपर न जाने किस किस गतिसे आकर इकट्ठा हो गए है? किसी दिन ये सब यहाँसे चल जावेंगे। इस भवमें जिसने जन्म लिया है, क्या यहाँ कोई रह जावेगा? नहीं, इस जगतके प्राणी अपने अपने सतसे है, अपने आपमें ही परिणमते रहते है, उनमें किसीका रच भी सम्बन्ध नहीं है। ये सब इस जगतमें स्वयं ही आए है और स्वयं ही मिट जावेंगे। देखो यह पर्याय ही मिटेगी। सत् तो शाश्वत ही रहता, मगर उसे जानता बिरला ही कोई है। इस जगतमें कोई किस गतिसे आया है, कोई किस गतिसे आया है। कितना समय इन प्राणियोंका यहाँपर गुजर गया? इस ससारमें प्राणियोंने अपने विवेक को भुला दिया है, इस संसारके समागमोंको इसने अपना लिया है। अपने को

समागममे न जानेमे कोई विवेक नहीं है। इन सब समागमोसे हटकर मैं अपने उपयोगका अपने ज्ञानमात्र, ज्ञायकस्वरूपमे लाऊगा—यही विवेक है। मैं निज जाननमें ही रमू, यही प्रभुका दर्शन है। अपने सत्यका आग्रह हो तो सत्यका दर्शन होगा ही।

एक कथानक है कि एक पंडित जी थे। उनके पास कुछ गायें भसें भी थी। पंडित जी ने उन गाय भसोको चरानेके लिए एक ग्वाला रख लिया। ग्वाला भगवानका भक्त था। एक दिन उसने एकादशीका व्रत किया, भगवानका भोग लगानेके लिए अपने मालिकसे कुछ आटा मांगा। पंडित जी ने उसे आधा सेर आटा दे दिया। ग्वाला सोचता है कि इतनेमे हम खावेंगे और भगवान खावेगे तो दोनो ही भूखे रह जावेंगे। उसने सोचा कि क्या करें पंडित ने इतना ही दिया। अच्छा आधा मैं खा लूगा और आधा भगवानको खिला दूगा। अब उसने उस आधे आटेकी चार बाटियाँ बना ली। अब भगवानको वह देखता कि आते ही नही। देखो भाई उसने सोच लिया था कि जब तक भगवान नहीं खावेंगे तब तक मैं नहीं खाऊँगा। बोला कि भगवान जल्दी आवो हमे तो भूख लगी है। सो भैया! व्यन्तर देव कौतूहल करते फिरा ही करते है, सो कोई व्यन्तर पुरुषाकारकी चर्याके भेषमे आ गया। बोला, भगवान यह तो खाना इतना ही है आधा हो तुम्हे मैं दूगा। अपना आधा हिस्सा मैं ले लूगा मै भूखा कब रहूगा? खाकर जाते समय भगवानवेशी बोले कि अब हम दो जने आवेंगे। अब दूसरी एकादशीको भी पंडित जी ने वही आधा सेर आटा दिया। उसने तीन बाटियां बनाई। वे दोनो आ गये। ग्वालेने कहा कि आज तो इतना ही है, सो जो हिस्सा बैठे सो खा लो। मैं अपना तिहाई हिस्सा न लूगा और दो तिहाई तुम दोनोके लिए रहगा। खाया, जाते समय भगवान वेशी कह गये कि अबकी बार २० जने आवेंगे। ग्वाला बोला, कितने ही आवो जो हिस्सा बठे सो हो मिलेगा। तीसरी एकादशीको ग्वाला बोला कि अब २० जने आवेंगे सो काफी भोजन रख दो। पंडित जी ने कि हम तो रोज भोग लगाते कोई नहीं आता। देखें इसके पास कैसे आते? पंडित जी ने २५ सेर मिठाई ८ दी। ग्वाला जगलमे आग्रह करके बठ गया। लगभग २०—२५ सेर का सामान ग्वालेने तयार कराया था। सो बोला भगवान जल्दी आकर खाओ खूब चकाचक काम है। वहाँ तो २० आदमी आ गये। ग्वालेने कह दिया कि आज तो भरपेट खावो, हम भी सब खा लेंगे। पंडित जी छुपकर देखते रहे। सब लोगो ने खा लिया और अन्तर्ध्यान हो गए।

देखो भाई ग्वाला सत्यका आग्रह ले करके बठा था, इसीलिए भगवान ने न सही तो किसीने भी उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिए।

मैं अगर सत्यका आग्रह करके रहूं कि मैं ज्ञानस्वरूप एक सत् पदार्थ हूं मै ज्ञायक हूं, मेरा प्रभु मैं ही हूं, मेरा अन्यमे कोई वास्ता नहीं है, मै यथार्थरूप हू, नाना रूपोमे मै

नही हू, मेरा तो काम केवल जाननका है। म अपने जाननस्वमे रहता हू, ऐसा यदि सत्यका आग्रह होगा तो यही उठे ही अपने प्रभुका दर्शन होगा अन्यथा अपने प्रभुके दर्शन होना असम्भव है। म अपनेमे यह विश्वास न करू कि मै बाल-बच्चो वाला हू, परिवार वाला हू, नष्ट हो जाने वाला हू, पराधीन हू। ऐसे विचार यदि होग तो ये तो खोटे विचार हैं, खोटे परिणाम है, मोह है, मिथ्यात्व है। इस प्रकारका असत्यका आग्रह करनेसे अपने निज प्रभु का दर्शन नही हो पायगा। आजीवन क्लेश ही नजर आवेंगे। इस प्रकारके विचार यदि रह तो ससारमे रुलना ही बना रहेगा।

भाई! अपना शुद्ध आग्रह करो तो भला होगा, नही तो भला नही होगा। परपदार्थों का आग्रह करने पर अशांति प्राप्त होगी, अपने आत्मस्वरूपका अनुभव नही हो पायगा। अपने उपयोगमे लगने से ही भलाई है। मै अपने ही आपके स्वरूपमे ही अपना उपयोग ठहराने की कोशिश करू तो मेरा कल्याण होगा अन्यथा कल्याण नही होगा। जैसे कहते हैं ना कि वहाँ न जाओ, जहाँ पर क्लेश ही क्लेश है। ऐसे ही परपदार्थोंमे न जावो वहाँ विपदा ही विपदा है तो मै आत्मा अपने आपके सत्यके आग्रहका ठहराने की कोशिश करू और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

मै केवल सकल्प विकल्पोको दूर करू तो मेरा कल्याण होगा अन्यथा नही। जैसे कहते है ना कि कौवे के कोसने से ढोर नही मरते। जम कौवा मास खाना चाहता है तो कौवेके कोसनेसे क्या गाय मर जायगी? इसी प्रकार मेरे सोचनेसे क्या परका कमा परिणमन होगा? नही। सो मैं अपनेको अपने उपयोगमे लगानेकी कोशिश करू तो शांति प्राप्त हो सकती है। इस आत्मामे किसी बाह्य चीजका प्रवेश न हो, मेरा आत्मस्वरूप ही मेरी दृष्टिमे रहे और मैं अपनेमे अपने लिए अपने आपमे स्वय सुखी होऊ।

प० दौलतराम जी कहत है कि मैं "भ्रम्यो अपनको विसरि आप। अपनाये विधिफल पुण्य पाप॥" म अपने आपको भूलकर पुण्य और पापको अपनाता फिरा। मै क्या हू, इसका कुछ ज्ञान नही किया। किन्तु जो पुण्य और पापका उदय है उसको ही अपनाता फिरा। यह शरीर धन वैभव आदि पुण्य और पापका फल है। इसके कारण भी सुगमतासे पुण्य और पापका हुआ करते हैं। इस शरीरादिकके ही कारण सक्लेश हुआ करते ह और इसके ही द्वारा रूप हुआ करता है, ये धन वैभव पापके भी फल हो जाते हैं, इसीकी वजहसे जान चली जाती है और इसीकी वजहसे चैन आती है तो यही वैभव पुण्यके फल हो जाते है। इस अपनेको छोडकर बाकी जितने परपदार्थ हैं उनको मानो वह सब पुण्य और पापका फल है। जब केवल कल्पना से पुण्य पाप बनते ह तो पुण्य और पापके फलको बनाना अपने हाथ ही तो हुआ है। जो शुद्धस्वरूप है, ज्ञायकस्वरूप है, केवल ज्ञातादृष्टा है, ऐसा जो चैतन्यस्वरूप है उसको न

अपना पाता । फिर क्या अपनाया, कुछ नहीं । जग कहते हैं कि अपने बच्चेको अपनाओ तो कुछ मिलेगा और गैरको अपनाओगे तो कुछ नही मिलेगा । गैर तो गर ही है । ऐसा लोग मे कहते हैं । इसी तरह यह जो तेरा स्वरूप है उसको अपनाओ, इसीसे लाभ मिलेगा । पर जो गर है, पुण्य पापके उदयके फल हैं उनको अपनानेसे हे आत्मन् तू क्या लाभ पायगा ? इस आत्माका यथार्थ ज्ञान न होनेसे इस जगतका प्राणी यह जानता है कि पर ही सब कुछ हैं, शरीरादि ही सारी सारभूत चीज हैं । वह बढवाई अपने शरीरको चाहता है परको ही सर्वस्व समझना है जिसका फल बुरा होता है । देखो जीवका नाम ब्रह्म है । ब्रह्म उसे कहते है जो उत्कर्षसे रहे । अब जिसने शरीरको मान लिया कि यह मैं हू तो वह शरीरको बढायगा जिसने इज्जत को मान लिया कि यहा मैं वह इज्जतको बढाएगा जिसने आत्मतत्त्व को ज्ञान दर्शनको मान लिया कि मैं यह प्रभु हू तो वह अपना ज्ञानदर्शन बढाएगा । इस अज्ञानी जीव ने इस पुण्य पापके फलको अपना मान रक्खा है इसीलिए उनको ही अपनाता, इससे दुःखी ही होता । यह नही पता कि मैं तो केवल एक ज्ञानमात्र, जो पकडा नही जा सकता, छेदा नही जा सकता, घेरा नही जा सकता, आंखोंसे देखा नहीं जा सकता ऐसा ही मै एक चैतन्य वस्तु हू । मेरा किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं है । मैं पृथक हू, सबसे न्यारा हू । जिसकी इस प्रकारकी दृष्टि नही होगी उसको शांति नही प्राप्त हो सकती है, क्योंकि एकमात्र हितका मार्ग नही मिला । तू नाना प्रकारके अहितके मार्गोंमे अपने आपको रुलाता फिरता है । यहाँ शांति मिलेगी, वहाँ शांति मिलेगी । जगह जगह तू ढूढता फिरता है परन्तु फल कुछ नही मिलता है । फलकी जगहमे ठोकर खाना है । अपने आपमे जान, अपने आपको जान । दुनियामे कुछ भी हो उससे मेरा क्या बनता बिगडता है ? बिगडता तो केवल अपनेमे कल्पनाए बनाने से है । कल्पनाओं पर ही तो यह सारा खेल जमा है । इसका फल क्या मिला ? क्लेश ही क्लेश । भावात्मक यत्न किए तो भावात्मक ही फल पाया । और हुआ क्या कल्पनाओंके द्वारा ही क्लेश उठाया । देखो कल्पनायें भी भावात्मक हैं और क्लेश भी भावात्मक है ? इनमे अन्तर देखो क्या है कुछ नही । क्या पाया, कुछ नही । कल्पनायें की यानी भाव बनाया । भाव किया फल भी भाव हो गया । बात कुछ नही मिली । और यदि शुद्ध भाव कर लिए जायें अर्थात् ज्ञानमात्र अपने अनुभवको अनुभवा जाय तो कोई विकल्प न आए । केवलज्ञानका अनुभव हो । कहीं बाहर ख्याल न जाए । ज्ञानमे एक रस हो ऐसे भाव भर जाए तब शुद्ध आनन्दका भाव प्राप्त कर जावोगे । मैं भाव ही करता हू और भाव ही भोगता हू । जैसा भाव करोगे वैसा भाव होगा और कुछ करतूत नही । बाकी और करतूत माना तो वहा सब अंधेरा है, माया है । ऐसी इस आत्माका जिसे पता नही, जो स्थूल है उन्हे वे सम झते हैं कि यह मैं हू । जरा और बुद्धि चली, कुछ गहराई तक पहुच गयी तो मैं रागद्वेष,

मोह, माया हू और अन्तरमे कुछ पहिचानने चला तो जो रागद्वेषकी सतान है वह मैं हू। ये व्यक्तिगत रागद्वेष तो मिट जाते है उसे आपा नही कह रहा। इस रागद्वेषकी जो सतान है उसे मान गया कि यह मैं हू। इस तरह अनात्मस्वरूपको तो यह पहिचान गया कि सबसे निराला, ज्ञानमात्र, सारभूत जो आत्मवस्तु है उसका स्पर्श नही होता, जिसमे सतोष प्राप्त होता। सतोष बाहर कही नही प्राप्त होता है, पर सतोष कही न कही तो लेगा ही। यदि यहा सतोष नहीं मिलता है तो बाहर सतोष लेगा। ऐसा अनुभव कर कि जगतमे मेरा कुछ नही है, मैं अकिंचन हू। तो तुझे शाति मिलेगी और जो माना कि मै कुछ हू वहाँ दु ख मिलेंगे।

देखो भगवान अकिंचन है। उसके पास न स्त्री है, न पुत्र है, केवल एक आत्मा स्वरूप ही सामने है। उसके साथ शरीर भी नही होता कर्म भी नही होते, क्लेश भी नही होते, बोलता भी नही, दृष्टि भी नही करता है। जानता तो है सब पर वह मेरी रक्षा नही करता है। वह केवल निराला अकिंचन है। ऐसे अकिंचन प्रभुकी उपासनासे तो बडी-बडी आशायें सिद्ध होती हैं परन्तु जो सकिंचन बन गया, जिसके बाग बगीचे, जमीदारी भी हुए, जिनमे भी वह आनन्दमग्न हुआ, परिवार, मित्रजन, इज्जतका बढावा इत्यादि भी उसके पास हुआ, ऐसा यह सकिंचन है। उनकी सिद्धिसे, उनकी भक्तिसे, उनके लगावमे कुछ कुछ नही मिलेगा। मैं अकिंचन हू प्रभु। फिर भी उन बाह्यपदार्थोंकी भक्तिसे हमे पाप और पुण्य प्राप्त हो गया।

देखो पहाड निर्जल है, उनपर पानीकी बूद नही दिखती है, पर बडी बडी नदिया पहाडोसे निकलती है पर देखनेमे एक बूद नहीं है। और जिनमे बूंद क्या, बहुत पानी भरा हुआ दीखता है, ऐसे जो समुद्र हैं उनसे कही भी एक नदी भी नही निकलती। हे प्रभो! तू गजबका अकिंचन है, ऐसा मेरा स्वरूप भी अकिंचन है। उस अकिंचन स्वरूपकी भावनासे ही राग, द्वेष, लगाव, मोह इत्यादि मिटते है, क्योकि ऐसी आकिंचन्य भावनासे भाव निर्मल होते हैं। ऐसी निर्मलताके होते हुए कर्म बधता है तो पुण्यकर्म बधता है। जो सकिंचन है जिसका परिवार विशाल है उसकी उपासनासे पापकर्म बनता है। क्योकि जो सकिंचन भाव लिए है, जिसने राज्य, धन वैभवसे लाभ समझ लिया है उसकी दृष्टि मलीन हो जाती है और दृष्टि मलीन होनेसे परिणाम भी मलीन हो जाते हैं। ऐसी यह जो जगतकी दृष्टि हो गई उससे ही कर्म बनते है। जब भावसे ही पाप और पुण्य कर्म बनते हैं तब निर्णय कर लो कि ऐसा क्यो है? अरे अपना स्वरूप तो अकिंचन है। मैं अकिंचन स्वरूपकी भावना करू तो शुद्ध दृष्टि है और यदि सकिंचन स्वरूपकी भावना करू अर्थात् जगतके बाह्य पदार्थोंको मानता फिरू तो अशुद्ध दृष्टि है। जिन सारी बातोमे हम गरवाये होते है अर्थात् घमड करते है वे मेरी कुछ नही हैं। वे सब मुझे भ्रममे डालने वाली बातें हैं। जिनमे हम इतराते हैं वे ही हमे धोखा

दती है।

एक नगरमें एक सेठ जी थे। उन्होंने ७ मंजिल की सुंदर नई डिजाइनकी एक हवेली बनवाई। उद्घाटन करानेके लिए उन्होंने बहुतसे निमंत्रण भेजे। लोग आए। उद्घाटन हुआ। सेठ जी के यहाँ पर बहुत बड़ा जल्सा था। यह जलसा सेठ जी के ही निमित्तसे हुआ था। सेठ जी खड़े हो गए, बोले कि भाई यह हवेली जो हमने बनवायी है, जो आप लोगोंके सामने है उसमें जो गल्ती हुई हो बताओ, गल्ती सुधरवाऊँगा। चाहे आधी हवेली गिरवानी पड़े तो भी कौनसी बात है, उसे बनवाऊँगा अवश्य। एक व्यक्ति खड़ा होकर बोला, मानो कोई जैनी हो। कहा कि सेठजी इसमें दो गल्तियाँ हैं। यह सुनकर सेठ जी चौकन्ना हो गए। अपने इंजीनियरों को बुलाया। इंजीनियरोंसे कहा कि देखो यह जो गल्तियाँ बतावें उनको अवश्य सुधारना। रुपयोंकी परवाह नहीं। इंजीनियर लोग बोले कि क्या गल्ती है यह तो बताओ। वह ज्ञानी बोला कि एक गल्ती तो यह दीखती है कि यह हवेली सदा बनी नहीं रहेगी। सेठ जी सुनकर दंग हो गए। इस गल्तीको कैसे सुधारा जाय। और बोला कि दूसरी गल्ती यह है कि इसके बनवाने वाला भी सदा नहीं रहेगा। सेठजी फिर सुनकर दंग हो गए। बोले कि यह दो गल्तियाँ कैसे सुधारी जावें कि न तो यह हवेली ही सदा रहेगी और इसके बनवाने वाला भी सदा रहेगा। सच है, अरे कुछ नहीं रहेगा। जिनसे तुम इतराते हो वे तुम्हें धोखा देंगे। हजार वर्ष पहले की बनवाई हुई हवेलियां तुम्हें क्या दिखाई पड़ती हैं? क्या वे उस समय मजबूत नहीं बनवाई गई होंगी? उनमें खूब मसाले भर भरकर बनवाया गया होगा तब भी वे हवेलियाँ नहीं रहीं। सो ये भी हवेलियाँ अवश्य बरबाद हो जायेंगी मिट जायेंगी। इन हवेलियोंके बनवाने वाले लोग भी मिट गए होंगे। तब फिर इन हवेलियोंमें क्यों इतराए? मेरा कोई शरण नहीं है। कोई कुछ नहीं है। केवल मोहके कारण जो कुछ मान रक्खा है वह सब सही दीखता है कि ये मेरे रक्षक हैं, वह मेरा रक्षक है। जिस प्रकारसे स्वप्नमें देखी जाने वाली बातें सही लगती हैं उसी प्रकारसे ये मायावी बातें भी सही मालूम होती हैं। यदि हम स्वप्न देखते हैं तो सब सच लगता है उसी प्रकार मोहका देखा आनन्द सच लगता है। अरे मेरा यहाँ कुछ नहीं है। सब मिट जावेंगे। अरे जो सत्य दीखता है उसका नामो निशान भी नहीं है। उनमें विकल्पोंको छोड़कर यहाँ कुछ नहीं है। राग, द्वेष मोह इत्यादिमें तो विश्राम न करो। ये सब मिट जावेंगे। ये बाह्य पदार्थ मेरे कैसे हो सकते हैं? आगे का वियोग किया जाने पर बीते हुए समयको देखा जाय तो क्या इच्छाओं की पूर्ति दिखाई पड़ती है? नहीं। जो काम हमने कल, परसों आजके लिए सोचा था क्या उसकी पूर्ति हुई है? नहीं। जो इच्छाएँ होती हैं क्या उनकी पूर्ति होती है? नहीं।

जैसा संयोग होगा वैसा ही होगा। जो कुछ हम विचार करते हैं वह नहीं हो पाता

है। बाह्य पदार्थों की रखना यह सब भ्रमके उदयका काम है। फिर क्या चाहिए कि आनन्द हो जाय ? अरे आनन्द नहीं होगा यदि तू बाह्यमें दृष्टि लगाए रहा। हे जगतके प्राणी ! यदि तुझे आनन्द प्राप्त करना है तो तू अपनी जिदको छोड़ दे। जिद करना तो अच्छा नहीं होता है।

एक बड़ी जिद करने वाली स्त्री थी और अपनी जिदके कारण अपने पतिको वशमें किए हुए थी। जो चाहती थी सो करवाती थी। एक दिन उस स्त्री का मन ऐसा आया कि पतिकी मूंछ मुंडवाऊंगी। पति साहब तो मूंछ मुंडवाना नहीं चाहते थे। इसलिए वह पेट दर्द का बहाना करके बीमार बन गई। बहुतसे डाक्टर पतिने बुलाये, डाक्टरने दवा की, फिर भी दर्द नहीं मिटा। तब पति बोला कि कैसे मिटेगा दर्द ? स्त्री बोली कि एक देवता आया है वह कहता है कि कल सुबह तक मृत्यु हो जायगी। मृत्युसे बचनेका सिर्फ एक उपाय है। जो तुम्हें प्यार करे वह यदि मूंछ मुंडाकर रखने आए तो ठीक हो जायगी। पतिने मूंछ मुंड-वाली। अब वह स्त्री रोज चक्की पीसते समय गावे कि अपनी टेक रखाइ, पतिकी मूंछ मुंडाई। पति बड़ा दुखी हुआ कि इसने मेरी मूंछ मुंडवाई और अब ताना मारती है। उसने अपने ससुरालको जल्दी ही पत्र भेज दिया कि तुम्हारी लड़की सख्त बीमार है देखना हो तो देख जावो, वह बच नहीं सकती। एक देवताने बचनेका उपाय बताया है कि इसको जो प्यार करते हो यदि वे मूंछ मुंडवा करके आवेंगे तो ठीक होगी वरना ठीक नहीं होगी। अब क्या था ? पत्र पाते ही उस स्त्रीका पिता, भाई, चाचा, बाबा सभी अपने अपने बाल तथा मूंछ जिसके पास जो था मुंडवा करके रातको ही वहांसे चल दिए। लगभग ४ बजे के करीब जब कि वह स्त्री पीस रही थी, अपना नित्यका गीत गा रही थी कि अपनी टेक रखाई पतिकी मूंछ मुंडाई तभी वह सब लोग वहां पहुंच गए। वह स्त्री बार बार वही गीत गा रही थी—अपनी टेक रखाइ, पतिकी मूंछ मुंडाई। अब उस पतिने पीछे से आकर कहा कि पीछे देख लुगाई, मुण्डाकी पल्टन आई। अरे जिद करना क्या है ? जिद किया तो क्या, न किया तो क्या ? उससे तुझे लाभ नहीं प्राप्त होनेका है। बताओ जिद करने से क्या मिलता है ?

भाई अपने परिणामोंको शुद्ध रखना चाहिए। शुद्ध परिणामोंके रखनेका उपाय यह है कि अपनेको आकिंचन मानो। यह समझना कि मेरा जगतमें कुछ नहीं है। जो कुछ भी जगतमें दीखता है सब जंजाल है। अरे तू अपने विषयकषायोंको भूल जा तो तुझे आनन्द प्राप्त होगा। नहीं तो आजीवन क्लेश हो रहेंगे। यदि तू इन मायामयी मूर्तियोंमें ही फसा रहा, इन बाह्य पदार्थोंको ही अपनाता रहा तो तेरे परिणाम बुरे हो जावेंगे और जीवनमें कभी सुख नहीं प्राप्त होगा और यदि तू इन बाह्य पदार्थोंमें न फसकर अपने आत्मचिंतनमें समय व्यतीत किया तो तुझे सुख सदाको प्राप्त होगा।

आप कहोगे कि क्या करें जब भूख लगती है तब भोजनका ख्याल तो आता ही है। अरे भाई जब भूख है तब भोजनका ख्याल कर लो, किन्तु जब भरपेट है तब तो कुछ अपनी भी सोचो। बाह्यमें दृष्टि करनेसे बाह्यकी ही ख्याल हो जाती है और जहाँ उन बाह्य वस्तुओंमें फसा नहीं कि क्षण उत्पन्न हो जाते हैं। अरे उन बाह्य पदार्थोंका ख्याल करनेसे आत्माका हित नहीं होगा। कभी कभी तो तू अपने निजस्वरूपका चिंतन कर। ५ मिनटका समय तो कमसे कम आत्मचिंतनमें दो। तू बाह्य पदार्थोंको अपना सर्वस्व न मान क्योंकि इनसे तेरा हित नहीं होगा। तू अपने आत्मस्वरूपका ख्याल कर, सारे विकल्प जो बने हुए हैं उनको भुला तो तेरा हित होगा। तू उन विकल्पोंका स्मरण कर जिनको पहिले किया उनके फलमें क्या कुछ अब रहा है? नहीं तो विकल्प कहाँ है? विकल्प कहीं दिखते नहीं हैं और यदि दिखते हों तो दिखा दो। इनका रंग कैसा होता है, किस रूपके होते हैं? अरे विकल्पोंकी शक्ल सूरत नहीं होती। केवल कल्पनाएँ बना लेनेसे विकल्प हो जाते हैं। एक समय जब कि बूँदें पड़ रही थी, झोपड़ीमें पानी चू रहा था, झोपड़ीके पास शेर खड़ा था। झोपड़ीमें एक व्यक्ति बोला कि इतना तो शेरका भी डर नहीं जितना टपकेका डर है। जितना टपका परेशान करता है उतना तो यह शेर नहीं परेशान करता है। पासके शेरने समझा कि टपका कोई मुझसे भी बहादुर है। उसी समय एक कुम्हारका गधा खो गया था। वह रास्तेमें ढूँढ रहा था। जाते-जाते जहाँपर शेर खड़ा था वहाँपर पहुँचा। वह शेरको गधा समझ गया था। झट उसे गधा समझकर उसका कान पकड़ लिया। अब शेर यह समझता है कि टपका आ गया। उसने उस शेरके ऊपर डंडे भी चलाए। शेरने सब सह लिया। उसने शेरको बाड़ीमें बाँध दिया था। जब सवेरा हुआ तो देखा कि यहाँ तो टपका वपका कुछ नहीं है। तब शेरने छलांग मारी और चल दिया। उस शेरने विकल्प बनाकर ऐसा भाव बनाया कि अरे यह तो टपका आ गया, डर गया। इसी तरह यह विकल्प कुछ नहीं है। ये विकल्प पकड़में नहीं आते। कुछ क्लेश नहीं करते, फिर भी विकल्पोंके आधीन होकर यह विकल्पोंका दास हो गया और वैसे ही परिणाम हो गए। और जब विकल्पोंके द्वारा इस प्रकारके परिणाम हो जाते है तो शांति नहीं रहती है, चैन नहीं आती है। इस प्रकार यह जीव अपने आपमें विकल्प बनाकर, कर्मोंके फलोंको अपनाकर व्यर्थ ही दुःखी होता है। तो अच्छा यह है कि जितना अधिक ज्ञानका उपयोग मिले, आत्मचरित्रका शिक्षण मिले उतना ही अच्छा फल है। हे आत्मन्! तू अपनी वर्तमान अवस्थाको मायारूप मानकर, अपनी आत्माको पहिचानकर सदा स्वाधीन हो और सत्य सुखी हो।

एक राजा और रानी थे। राजाका मन धर्म करनेमें कम था। रानी बहुत सम-

भाया करती थी कि राजा धर्म करो, ससारके वैभवमे गर्व न करो। तब राजा कहते कि हम क्या करें ? धर्मका फल हमको मिल चुका, हमे अब धर्मकी क्या जरूरत ? रानीने एक दिन कह दिया कि तुमने राजाजी सकल सुख किए पर धर्म नही किया, इसलिए जब मरोगे तब ऊट बनोगे। कुछ दिन बाद राजा मरे और ऊट बन गए। वह एक बादशाहके घरमे ऊट पैदा हुए। थोडे दिन बादमे रानी भी गुजर गई और वह उसी बादशाहकी लडकी हुई। अब जब लडकी विवाह योग्य हुई। थोडे दिन बादमे विवाह भी हुआ। अब उस लडकीकी मा ने यह सोचा कि इसके दहेजमे कोई अच्छी चीज दू ऊट बडा सुन्दर है उसे मै दहेजमें दे दू। बादशाहका भी विचार ऊट दहेजमे देनेका हो गया। दहेजमें ऊट दे दिया। अब ऊट भी बारातके साथ जा रहा था। बारात वालोने सोचा कि ऊटमे कुछ सामान लाद ले जावें। लडकीका लहगा, साडी तथा अन्य कपडे इत्यादि मूल्यवान चीज समझकर लाद दिये, जो कुछ थे वे सब ऊटपर लाद लिये। अब रास्तेमे ऊटको अपने पिछले जन्मका स्मरण होता है और दुखी होता है। हाय ! अपनी स्त्रीका लहगा, साडी इत्यादि अपने ऊपर लादा है। इस प्रकारसे वह मनमे विचारकर दुखी होता है उससे चला नही जा रहा है। नौकर डडे भी लगाता है पर दुखी होनेके कारण उससे चला नही जाता है। अब लडकीको भी स्मरण हो गया कि यह ऊट तो मेरा पूर्व जन्ममे पति था, परन्तु अब धर्म न करनेके कारण ऊट बन गया है। यही कारण है कि दुखके कारण इनसे चला नही जा रहा है। लडकीने नौकरसे कहा कि भाई मारो मत। हम इसे समझा देंगी तब चलेगा। ऊट भी पहचान गया। लडकी भी पहचान गई। स्त्री कहती है ऊटसे कि देखो पूर्व जन्मोमे तुम हमारे पति थे और धर्म न करनेके कारण तुम ऊट बन गये हो। परन्तु यह मेरे पति है ऐसा कहनेमे तो मुझे शर्म लगती है सो मैं तो कहूगी नहीं। अब तो चलनेमे ही कुशल है। चलना तो पडेगा ही अन्यथा डडे लगेंगे। यही हाल यहाँके समस्त प्राणियोका है कि वे धर्म नही करने ससारमे कही ऊट कही कीड मकौडे, कही कुछ कहीं कुछ नाना प्रकार जीव हो जाते हैं। देखो ना, राजाने धर्म नही किया था इसलिए ऊट बन गया था। तो ऊटकी ही बात नहीं, कुछ भी अटसट बन जावें।

हे आत्मन्, जो धर्म नही करता वह मरकर दुर्गतिका पात्र होगा। इस जीवमे दुनियाका बाह्य कुछ नही है। सब भिन्न भिन्न पदार्थ है। वे एक दूसरेका कुछ नही कर सकते हैं। इस कारण यह मनुष्य भव पाया है। इस मनुष्य भवमे सब तरफके रास्ते खुले हैं। यदि ये मनुष्य चाहे तो कीडे मकाडे बन सकते है, पशु पक्षी बन सकते हैं, देव बन सकते है, मनुष्य बन सकते हैं। सारे रास्ते इस मनुष्यभवमे खुले हैं। नारकी मरकर नारकी व देव नही हो सकता, देव मरकर देव व नारकी नही हो सकता। पर इस मनुष्यभवमे जो चाहे

वसा ही बन सकता है। तो धर्मके लिए करना क्या है ? धर्मके लिए दान करना है क्या श्रम करना है क्या ? अरे भीतरमें यह ज्ञान बनाना है कि यह तन धन मेरा नहीं है। मैं तो सबसे निराला हू, ज्ञानमात्र हू, ज्ञायकस्वरूप हू। अन्य मैं कुछ नहीं हू। मेरा किसी अन्य से सम्बन्ध नहीं है। मैं अपने आपको सबसे निराला ज्ञानमात्र लखू। यही धर्म है और धर्म यह नहीं है कि मेरे मित्र भी मिल जावें, मेरे कुटुम्बके लोग भी मिल जावें मेरा धन भी मिल जावे। इसी उद्देश्यसे व धर्म करते हैं तो धर्म नहीं कहा जाता है। देखो अपने आपमें यही धर्मका पालन है, यही तप और सयम है। धर्म पालनके लिए बाह्य तप और सयम दोनो करने पड़ते है जिससे कि हमारा उपयोग स्वच्छन्द न हो जाय, हमारा उपयोग विषय कषायोंमें न हो जाय।

आज देखो बहुतसे लोग उपवास किए हैं। शरीरको कष्ट दे रहे हैं। बडी तकलीफ सह रहे है किसलिए कि धर्म हो। धर्म है विषय कषायसे छूटना। सो यह उपवासादिक उसमे सहायक हैं। अरे धर्म करलो। धर्म केवल धर्ममे है, निज स्वभावमे है शुद्ध ज्ञानमे है। बाह्य की केवल जानकारी कर लो। परपदार्थ पूरे है। वे अपनी सत्तामें हैं। मेरा गुण पर्याय मेरेमें है, उनका गुणपर्याय उनमें है। एक का दूसरेसे रच भी सबध नहीं है। एक दूसरेका कुछ नहीं करेगा। हाँ दूसरेका निमित्त पाकर अपना विभाव कर लेव। मगर किसी को कुछ नहीं करता है। ऐसा स्वय आजादस्वरूप मैं इन पदार्थोंको देखू। ऐसा अपने आप को देखो तो वहाँ क्या घट जाता है। ऐसा मनमे भाव न रहना चाहिए कि यह मेरा है, यह उसका है। यथार्थ स्वतन्त्र वस्तु स्वरूपका ज्ञान कर लेना ही परमार्थसे त्याग है।

जैसे दो आदमी है। अपनी-अपनी चादर धोबीको धोनेके लिए देते है। दो तीन दिन बाद एक आदमी धोबीके घर चादर लेने चला गया तो धोबी ने दूसरे व्यक्तिकी भूलसे बदल करके चादर दे दी। उस व्यक्तिने तो सोचा कि हाँ यह मेरी चादर है। वह अपने घर गया और चादर तान कर सो गया। अब वह दूसरा व्यक्ति जो अपनी चादर लेने गया तो वह जब धोबीके पास आया तो धोबी ने जो चादर निकाल कर दी उसे उसने कहा कि यह मेरी नहीं है। यह तो किसी दूसरेकी है। धोबी ने कहा कि अरे वह तो बदल गई है। तुम तो उस व्यक्तिको जानते हो जो साथ आया था उसीके पास वह चादर चली गयी है। सो वह व्यक्ति उसीके घर जाता है जिससे चादर बदल गयी थी। जब वह वहाँ गया तो देखा कि चादर ताने वह सो रहा था। बोला कि आपसे मेरी चादर बदल गयी है सो अब मेरी चादरको दे दीजिए। वह जाग जाता है और देखता है कि मेरी चादरमे कोई निशान है कि नहीं। कोई दाग हो या फटा हो। चादरमे देखा तो कोई निशान नहीं। यह चादर मेरी नहीं है, ऐसा सोचते ही उसका चादरका त्याग हो गया। भीतरमे ज्ञान हो गया कि यह मेरी

चादर नहो है। देखो भोतरसे ज्ञान उसका सही बन गया। सही ज्ञान बन जानेसे यह ज्ञान हो गया कि य मेरी नही है उपयोगमे चादरका त्याग कर दिया। इसी तरह गैर पदार्थ जिन पदार्थोंमे मोही रत हो रहे है। कुटुम्ब, परिवार इत्यादि जो सामने हैं, उनको भिन्न समझ कर निश्चय कर लो कि तेरा कोई नही है। तेरा मित्र तू ही है।

तू अपने आपको देख, अपने आपको पहिचान, तब तो तेरा गुजारा चलेगा, नहीं तो तेरा गुजारा नही हो सकता है। तू ऐसा समझ कि यह मेरा नही है। जब तू ऐसा समझेगा कि ये मेरे नही हैं तो तेरा मोह और झझट खत्म हो जायगा। और यदि तू भूल करके अपने कुटुम्ब परिवार इत्यादिमे ही पडा रहता है तो तेरेमे विपदाएँ समाप्त नही होगी। तू अपने आपमे सच्चा ज्ञान जगा कि ये सब कुछ मेरा नही है तो वही त्याग होगा। अपना घर परिवार बच्चे इत्यादिमे ऐसा भाव बनाओ कि ये मेरे नहीं हैं मैं तो सबसे निराला हू, ज्ञानमात्र हू। इतने भाव यदि अपने मनमे बना लिया तो सही मार्ग पर अपने को समझो। अन्यथा कितने ही धर्मके नाम पर काम करने पड़ें तो भी कुछ नहीं होगा। अपना ज्ञान सही बनाओ। सही ज्ञान स्वय स्वरूप ही है। निजको निज परको पर जान।' अरे तू अपने आपको देख। वही तेरा सब कुछ है। तेरी रक्षा वही करेगा। और जो पर है उन्हे तू पर ही जान। उनसे तेरा कुछ हित नही होनेका है। धर्मके निय मन वचन काय कृत काम धर्म भावकी मददके लिये हैं। सो सामायिक करो या भक्ति करो या स्वाध्याय करो उन सब प्रसगोके बीच अपना ऐसा ध्यान हो कि अपने आपको निराला मान लो। यह विचार मत बनाओ कि दस लक्षणमे धर्मकार्य करनेमे ज्यादा धर्म होता है, अन्य दिनोमे धर्म करनेसे कम होता है। कर्मको यह पता नही है कि जनोके अब दस लक्षण चल रहे हैं। कर्म इस बात पर बैठे हैं कि परदृष्टिके भाव हो तो हमारा वश बढे। सो भैया धर्म तो बारहो महीना करने की चीज है। अभी पूजा करो, भक्ति करो, ठीक है क्योकि धर्मका कुछ लेश किये बिना कर्म भी नही छूटते। परन्तु दस लक्षणमे धर्म करोगे तो कर्म अधिक मेहरबानी करेंगे, ऐसा नही है। कर्मोंको पता नही है कि जनोके य दस लक्षण है। कर्मका तो विभावसे निमित्तनैमित्तिक सबध है। १२ महीने सदा इस तरहसे सही परिणाम बनानेसे आत्माका पूरा पड जायगा। इस आत्माके विभावके कारण कर्म बन जावेंगे। चाहे दस लक्षण हो, चाहे और दिन हो उसे कुछ पता नही चलता है। तो सतोष न करो कि हमने तो धर्म कर लिया। अरे ये बात तो १२ माहो चलनी चाहिए।

दस लक्षणके बाद क्षमावणी आती है। यह क्षमावणी भी मेरी दयाके लिये है। अपने आपमे दूसरेके बारेमे द्वेषका भाव आता है तो भाई उस द्वेषसे खुद की हिंसा होती है। भाई द्वेषको छोडकर आत्ममिलन सबमे होना चाहिए। खुदको कलकित जीवनमे रखनेसे

दुःख होता है, कषायरहित रहनेका जिसे ख्याल होता है उसे शांति प्राप्त हो जाती है। यदि अपने आपमें शांति प्राप्त हो जाती है तो समस्त पाप धुल जाते हैं। कोई किसी दूसरे पर दया नहीं करता है। यदि अपन आपमें अपनी दया हो तो ठीक रहता है। यदि अपने आपमें दया नहीं है तो धर्म याने संवर निर्जरा नहीं होती है, कर्मोंका संचय चलता रहता है। हे आत्मन्! तू अपने आपपर सच्चे दिलसे क्षमा कर दे। यही है सत्य जीवन, यही है संयम। जो जो ये जीव यहाँ पर आए हैं उन्हें तुम नहीं जानते हो कि किस गतिसे आए हैं? जो-जो ये जीव हैं उन्हें तुम बता नहीं सकते कि कितने दिनोंके लिए आए हैं? इसका कुछ भी पता नहीं है फिर मान चलो तो ये जगतके प्राणी सब कषाय भरे हुए हैं इनसे किसीसे वैर, ईर्ष्या रखनेका क्या प्रयोजन पड़ा है, इसलिए सबको क्षमा करो। ऐसा न करो कि जो दोस्त हैं उनसे कषाय मिटाते हुए चलो और जिनसे जरा सी खटपट है उनसे बात भी नहीं करो। इस तरहसे अपनेमें जो अहंकार भरा हुआ है उसीमें यदि बने रहते हैं तो हम दूसरों पर क्या खुद पर भी क्षमा नहीं करते हैं, क्योंकि स्वपर दया करके भी अपने आपको हम क्षमा करने वाले हैं। क्षमावली अपने आप पर दया करनेके लिए है। अपनेमें अगर दयाका भाव आता है तो अपने हृदयमें क्षमा कर लेना चाहिए। यही अपनेमें धुलना है। दूसरोंको क्षमा कर देनेमें क्या हरज है? अरे इसमें लेना देना कुछ नहीं है। क्षमें तो यहाँ भी कुछ नहीं लेने देने पड़ते हैं। केवल भाव बना लिए जाते हैं। अरे केवल इतना क्षमाका भाव बना लेनेसे ही निरंतर आनन्द प्राप्त होता है।

एक नगरमें दो सेठ थे। मान लो कि एकके पास दो लाखका धन था और दूसरेके पास २० लाखका धन था। दोनों ही एक दूसरेको ईर्ष्याकी दृष्टिसे रखते थे। दोनोंमें कषाय बन गई थी। दोनों ही एक दूसरेसे बोलते न थे। एक दिन ऐसा हुआ कि एक ही साथ दोनोंके मनमें आया कि हम कितना कषाय भरे हुए हैं, यह कषाय हमारे लिए बुरा है? कषाय नहीं करना चाहिए। इस प्रकारका अनुभव दोनोंमें एक ही साथ हुआ। अब दोनों ही एक दूसरेसे मिलनेके लिए और अपनी कषाय भावना से निवृत्ति प्राप्त करनेके लिए अपने अपने घरसे चल पड़े। एक सेठ अपनी कारसे चला और दूसरा तांगे से चला। दोनों ही रास्तेमें एक दूसरेको मिले। कुछ भी दोनोंसे बोला नहीं गया। वे तो दोनों ही एक दूसरेसे मिलकर गद्गद् हो विचारने लगे कि देखो हम लोग कितने कषायमें थे? हम दोनों एक दूसरेसे बात तक नहीं करते थे। अब हम परस्पर मिलकर रहना चाहिए और कषाय भावनाका तिरस्कार कर देना चाहिए। अब दोनों एक दूसरेसे बोलने लगे और दोनों ही मिलकर रहने लगे। हे जगतके प्राणी! तू अपनेमें दयाका भाव ला। यदि दयाका भाव नहीं लाता है, क्षमाका भाव नहीं लाता है तो तुझे जन्म मरणके चक्कर लगाने पड़ेंगे। अरे तू तो अपने

आपको भूल गया है, तेरे मे तो भूलने का कोई काम ही नहीं है। तब फिर तू अपने को क्यों भूल रहा है ? तू अपनेमे दया और क्षमाका भाव ला। देखो वे दोनो सेठ अपने आपमे दया और क्षमाका भाव लाए, इसलिए परस्पर बोलचाल हो गई। इतना ही नहीं दोनो ही शान्ति से जीवन बिताने लगे।

हे आत्मन् ! किसी दूसरेसे ईर्ष्या की भावना नहीं करनी चाहिए। अपने आपमे कषाय किंचित् मात्र भी नही लाना चाहिए। अपने को जान लो कि मैं सबसे निराला हू, ज्ञानस्वरूप हू। मुझे अपने आप पर तथा दूसरो पर क्षमा करनी चाहिए।

पदार्थोंके जाननेके प्रसगमे तीन बातें हुआ करती हैं। एक तो शब्दपदार्थ, दूसरे अर्थ पदार्थ और तीसरे ज्ञानपदार्थ। जैसे यह चौकी है तो यह तीन तरहकी होगी। शब्दचौकी, अर्थचौकी और ज्ञानचौकी। घरमे भी शब्दघर, अर्थघर और ज्ञानघर—ये तीन हुआ करते हैं। शब्दचौकीके माने चौकी ये दो अक्षर। मुखसे जो बोला जा रहा है कि यह तो चौकी है या किसी कागजपर लिख दिया जाय कि 'चौकी' और अगर आपसे पूछे कि यह क्या है तो क्या कहोगे ? यह चौकी है तो यह हुआ शब्दचौकी। यह काम करने वाली चौकी नही है। जैसे रोटी है, उसमे भी शब्दरोटी, अर्थरोटी और ज्ञानरोटी—ये तीन प्रकारसे समझना चाहिये। रोटी शब्द किसी कागजपर लिख दिया जाय और आपसे पूछें कि बतलाइए यह क्या है तो आप कहोगे रोटी है, यह रोटी किसी कामकी नहा है, इससे क्या आपका पेट भर जायगा, भूख मिट जायगी। वह अर्थरोटी नही है, वह तो शब्दरोटी है। अर्थरोटी तो वह है जो बनी हुई होती है, जिसको खाते है। और ज्ञानरोटीके माने यह है कि रोटीके बारेमे जो ज्ञान होता है। इसी तरह अर्थचौकी वह है जिसपर पुस्तक रखते हैं और ज्ञानचौकी यह है कि जो चौकीके बारेमे ज्ञान होता है, उस ज्ञानका नाम है ज्ञानचौकी। इस तरह पदार्थमे तीन चीजें हैं, शब्दपदार्थ, अर्थपदार्थ और ज्ञानपदार्थ। इसी तरह लोकमे भी तीन तरहसे देखो शब्दलोक, अर्थलोक व ज्ञानलोक। यह जितना भी लोक है, यह दुनिया जितनी है यह है अर्थलोक। क्या अर्थलोक मेरा है ? नही मेरा नही है। वह तो मुझसे भिन्न है, वह मेरा नही है। जो 'लोक' शब्द लिखा है या लोक शब्द बोले तो क्या वह लोक मेरा है, नही। यह तो केवल शब्द लिखा है। यह तो शब्दलोक है। यह शब्दलोक मेरा है क्या ? नही यह मेरा नही है। शब्द भी मुझसे भिन्न है।

दुनियाके बारेमे जो ज्ञान होता है वह ज्ञानलोक है। वह मेरा पर्याय है फिर भी मेरा नही है, क्योंकि वह विकल्प है। यह विकल्प नष्ट तो हो जाता है, पर इस विकल्पके नष्ट हो जानेसे क्या यह लोक भी खतम हो जाता है ? और भी समझ लीजिए। एक चौकीको समझ लीजिए। शब्दचौकी, अर्थचौकी और ज्ञानचौकी होती है, पर आपको दिखती केवल

एक यह अर्थचौकी है। शब्द एक बोला गया। वह क्या है शब्दचौकी। जिसपर यह किताब रखते है यह क्या है ? यह है अर्थचौकी और चौकीके सम्बंधमे जो ज्ञान बन रहा वह है ज्ञानचौकी। उस शब्दचौकीमे क्या हमारा कुछ लगता है ? नही। वह तो शब्द है, अक्षर है, वह तो हमसे भिन्न है। क्या अर्थचौकी हमारी है, नही वह हमारी नहीं है, वह हमसे भिन्न है। ज्ञानचौकीको अपनी कह सकते हो। वह विकल्प मात्र हो तो है। उस कल्पनाके नष्ट हो जानेपर क्या यह चौकी भी नष्ट हो जाती है ? नही। चौकी नष्ट होती है उसकी ही परिणतिमे। इसी तरह यह लोक मेरा नहीं है। लोक अज्ञात है ऐसा भी नहीं है। जाननमे यह लोक आ रहा है, मगर वह जानना क्या है ? विकल्प है। ज्ञानका एक पर्याय है। उसके नष्ट हो जानेपर यह लोक नष्ट हो जाता है। क्या यह सब कुछ लोक नही है, ये मेरा नही है, अब मैं क्या रहा ? केवल एक ज्ञानमात्र ही रहा है। देखो भगवान को तो। उस भगवान की भी तीन किस्म हैं—शब्दभगवान अर्थभगवान और ज्ञानभगवान। मैं मुखसे भगवान शब्द बोल दू या किसी कागजपर भगवान शब्द लिख दू तो वह क्या है ? वह क्या भगवान है, कौनसा भगवान है ? अरे वह ज्ञानी भगवान नही है, वह तो शब्दभगवान है। अर्थभगवान कौन है ? सयोगकेवली, अयोगकेवली व गुणस्थानातीत—ये है अर्थभगवान। जैसा भगवान है उस भगवानके बारेमे जितना ज्ञान होता है वह ज्ञानभगवान कहा जाता है। भगवानके बारेमे जो विकल्प होते है, ज्ञान होता है वह कैसा भगवान है ? ज्ञानभगवान है। तो आपकी भेंट क्या उस शब्दभगवानसे हो सकती है, अर्थभगवानसे हो सकती है ? नही। उस ज्ञानभगवानसे ही हमारी भेंट हो सकती है। भगवानके बारेमे हम जान जाते और उसी जाननमे हम तन्मय हो जाते तो उस भगवानमे भेंट हो सकती है। शब्दभगवान तो अन्य पदार्थ है उसे मैं नही जान सकता। मैं तो केवल ज्ञानभगवानको ही जान सकता हू, उस ज्ञानभगवानको ही पूज सकता हू। मैं ज्ञानभगवानकी ही भक्ति किया करता हू। मैं शब्द-भगवान तथा अर्थभगवानकी भक्ति नही करता हू, कर नही सकता हू। कुटुम्बको बात देखो। पुत्रमे भी शब्दपुत्र, अर्थपुत्र और ज्ञानपुत्र होते हैं। जरा शब्दपुत्रसे कहो कि एक गिलास पानी ला दो तो क्या वह ला देगा ? अरे वह तो किसी कागजपर पुत्र शब्द लिखा है या बोला हुआ शब्द पुद्गल है वह कैसे पानी ला देगा ? शब्दपुत्रको यदि मुखसे बोल दो कि पुत्र पानी ला दो तो क्या वह पानी ला देगा, नही। अब अर्थपुत्रको देखो जो कि घरमें बैठा है, दो हाथ, दो पैर वाला है, जो पुत्र आपके घरमे जन्मा होवे वह है अर्थपुत्र। ज्ञानपुत्र वह है जो पुत्रके बारेमे ज्ञान बनाव, समझ बनाव। आप यह बतलाइए कि शब्दपुत्रमे आप मोह करते हैं। अरे शब्दपुत्रमे तो तू मोह करेगा नही, क्योंकि वह तो भाषावर्गणारूप पुद्गलकी पर्याय है, भिन्न चीज है, उससे तू तन्मय नही हो सकता है। आप तो अपने ज्ञानपर्यायमे तन्मय

हैं। शब्दपुत्रसे तो तू मोह करेगा नही। तो क्या तू अर्थपुत्रसे मोह करता है जो घरमे बैठा हुआ है? वह भी अन्यपदार्थ है उसमे भी तेरी पर्याय नही पहुचती, उससे भी तू मोह नही करता। क्या उस शब्दपुत्रसे आप मोह कर सकते है? अरे तू शब्दपुत्रसे मोह नहीं करता है और न कर सकता है। क्योकि वह तो भिन्न पदार्थ है। अर्थपुत्रसे भी तू मोह नही कर सकता। पुत्रके बारेमे जो विकल्प बनाया, जो ज्ञानकी परिणति बनाया उस ज्ञानपुत्रमे ही तू मोह करता है। इस तरहसे आप ज्ञानपुत्रसे मोह करते है अर्थात् पुत्रके बारेमे जो आपको विकल्प होते है ये विकल्प आप मोहसे करते हैं, उन विकल्पोमे आप मोह करते हैं, पुत्रमे आप मोह नही करते हैं। यह यथार्थ बात कही जा रही है। यह भी समझनेकी चीज है जिससे कि मोह घटता है। अरे मोह करते ही आकुलताए है। बाह्य तो बाह्य ही हैं। मैं तो अपने ही विकल्पमे तन्मय हू। मैं अपने ही विकल्पसे मोह करता हू और अपने ही विकल्पसे जला भुना करता हू। दूसरोमे मै न राग कर पाता न द्वेष कर पाता। मैं तो अपने आपमे ही राग और द्वेष किया करता हू। और इसी कारण मेरे विकल्प नष्ट होते रहते है और बनते रहते है। इसी तरह मेरे विकल्पोके नष्ट होनेसे क्या वे बाह्य पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं या वे बन जाते है। नही वे अपने स्वरूप चतुष्टयसे ही आविर्भूत होते है। वे वे ही है और हम हम ही हैं। ये सारी बाह्य चीजें कुछ भी मेरी नही है। ये धन, पुत्र, मित्र, परिवार यह सब ठाठ बाट मेरा कुछ नही है। मेरा तो मात्र मै ही हू। यह लोक मेरा नही है। मैं तो ज्ञानस्वरूप हू इसमे लोक अज्ञात भी नही है और यह मुझसे ज्ञान छिपा हुआ नही है। यह जाननेमे जाननेमे सब कुछ आयगा। जाननेमे आ गया और जानना अगर मिट गया तो चीज नही मिट जाती है।

जितने भी शास्त्र ज्ञान देते है उनका तत्त्व यह है कि भाई ऐसी अन्य चीज अन्य ही है और मुझमे मैं ही हू, परमे पर हैं। वे सब अपनेसे भिन्न हैं। फिर खोटी कल्पनाएँ करना कि यह मेरी है, यह उसकी है, यह सब क्या है? जिस बाह्य वस्तुको सुखकारी मानते हो, कल्याणकारी मानते हो, असलमे देखो तो वही निमित्तरूपसे दुःखका कारण बन रहा है। कौन से ऐसे पदार्थ हैं जो मेरी शांतिके कारण है।

एक गुरु शिष्य थे। शिष्य गुरुके पास पढने आता था। एक दिन वह देरसे आया। गुरु जी ने पूछा कि क्यो देरसे आए? शर्मीले शब्दोमे कहने लगा कि सगाई हो रही थी। गुरु जी कहने लगे कि अब तुम गावसे गए अर्थात् अब गावसे मोह नही रहा। सगाई हुई कि गाव से गए। जहाँ सगाई की वही दृष्टि गई। अब तो तुम्हारा घरसे भी मोह नही रहेगा। कई दिन बाद फिर वह देरसे पहुचा। गुरु जी ने पूछा कि क्यो देर हो गई? शिष्यने कहा कि शादी हो गई। गुरुने कहा कि अब तो तू अपने माँ बापसे गया। उनको तू नही पूछेगा। इस

तरहसे गुरुने कहा कि कुछ दिन बादमे बच्चे होंगे तो तब तो तू अपनेमे भी जायगा। तू उन बच्चोंमे ही लगा रहेगा। कमायेगा, खिलायेगा, उनका पालन पोषण करेगा। इस तरह तू बाहर बाहर ही रहेगा और अपने आपको भूल जायगा। अरे ये तो बाहरी पदार्थ हैं। इनमे तू क्यो पडता है, इनसे ही तेरेमे आकुलताएँ आवेंगी और तुझे शांति नही प्राप्त होगी। अरे यह ज्ञानमे ज्ञान है। मुझमे मैं हू और बाह्यमे बाह्य हैं। ये सब स्पष्ट भिन्न भिन्न रूपोमे नजर आते है। सब अपना भिन्न भिन्न अस्तित्व रखते हैं। यदि ऐसी दृष्टि आवे तो उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञान हो और मोह दूर न हो—यह नही हो सकता है। ज्ञानका स्वभाव ही मोहके आवरणको हटाना है। सूयका जब उदय होता है तो अधकार मिट जाता है। इसी प्रकार भीतर मे जब ज्ञान उगे तो मोहका अधकार मिट जाता है। और मोहका अधकार ज्ञानके उदयपर मिट नही, यह नही हो सकता है। यदि मोह अभी मिटा नहीं है तो समझो कि अभी ज्ञानका उदय नही हुआ है। ज्ञानके होनेपर राग तो कदाचित् हो सकता है पर मोह नही हो सकता है। राग और मोहमे अन्तर है। राग कहते हैं उसे जो बाह्य वस्तुयें सुहा जावें और मोह कहते हैं उसे जो बाह्यको यह समझे कि मेरा है। बाह्य वस्तुमे ममत्वको मान लेना ही मोह है और बाह्य वस्तुवें सुहा जानेका नाम ही राग है।

मोहमे है अज्ञानताका अधेरा और रागमे है परमे लगाव। ज्ञान होनेपर परमे लगाव तो हो सकता है पर अज्ञानताका अधेरा नही रह सकता है। यह मोह तो उत्पन्न होता है लगावमे, लगाव रखनेसे। लगाव परवस्तुवोंमे हो जाता है और उन परवस्तुवोमे लगाव हो जानेसे विकल्प हो जाता है और उस विकल्पके रहनेसे मोह उत्पन्न हो जाता है। जिसे कहते हैं रागमें राग, परवस्तुवोंमे राग हो गया। अब यह राग मैं हू। रागसे ही मेरा कल्याण है, मेरी भलाई है, यह हुआ रागका राग। रागमें राग हो जानेका नाम ही मिथ्यात्व है यह महान् अधकार है। सो मैं परपदार्थरूप नहीं हू। परपदार्थके विषयमे होने वाला जो सकल्प विकल्प का जाल है उसरूप मैं नही हू। मैं तो अनत ज्ञानदरूप, त्रैकालिक ज्ञानस्वरूप हू। सो मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ। अब मैं कैसा हू? इस विषयमे सोचिये—

मैं देहमे ठहरा हुआ हू फिर भी मैं देहसे नही छुवा हू, मैं उस देहसे मिला भी नही हू। देह तो जड है, मैं चेतन हू, मैं अमूर्त पदार्थ हू। यह देह तो मूर्त है। तो इस मूर्त पदार्थमे एक अमूर्त पदार्थ मिल जाय यह कैसे हो सकता है? अतः "यह आत्मा इस शरीरमे रहते हुए भी शरीरसे जुदा है। अरे तूने परिवारको अपना माना है, पुत्रोको अपना माना है, यह बत लावो कि क्या वे तेरे हैं? नही, वे तेरे नही हैं। अरे उनमे तुम किसलिए फसे हो? ये बच्चे जो है उनमे तू फसा है। अच्छा कैसे फसा है? वे तेरे नही हैं और न कभी तेरे हो सकेंगे। भाई आप तो यहाँ मौजूद हैं। कुटुम्ब परिवार इत्यादि कहीं का कहीं बैठे हैं। आप उनसे

किस तरहसे बंधे हुए हैं, किस तरहसे फसे हुए हैं ? आप उनमें बंधे हुए नहीं हैं, अपने कुटुम्ब परिवार इत्यादिमें आप फंसे हुए नहीं हैं। केवल आपने कल्पनाएँ बना ली हैं और उन कल्पनाओंमें ही मोह बना लिया है, यही कारण है कि तू अपनेको यह समझता है कि मैं परिवारमें फसा हूँ। अरे तू यह ख्याल न कर कि मैं फसा हुआ हूँ। किसमें फसे हो ? जरा बताओ तो। अपनी कल्पनाओंको छोड दो। तू किसी बंधनमें नहीं है।

ऐसा नहीं है कि तू कहीं जा न पाता हो, अपने को बंधनमें डाल न पाता हो। अरे मैं तो अमूर्त हूँ चैतन्यस्वरूप हूँ तो फिर मैं कैसे बंध गया ? मैंने केवल अपने आप ही विकल्प बनाकर अपने आप ही मान सोचकर देहमें स्वयं अपनेको फसा लिया है और जैसे कभी ज्ञान भी हो जाय तो भी कुछ दिन और फसे रहते हैं पूर्व वासनाके कारण, पूर्वपरिचयके कारण, निराकुल नहीं हो पाते हैं। इसी तरह देह और आत्मामें भेद भी हो जाय, फिर भी यह आत्मा देहमें बंधी रहती है पूर्व वासनाके कारण पूर्व संस्कारके कारण। पर इससे छूटने का उपाय भेदज्ञान ही है। किसी कुमित्रसे मित्रता हो जाय तो उस कुमित्रसे छूटनेका उपाय भिन्न भिन्न प्रवृत्ति, भिन्न भिन्न वस्तु और परस्पर विरुद्ध ज्ञान कर लेना ही उस मित्रसे छूटनेका उपाय है। यह हमारे साथ कपट करता है यह हमसे झूठ बोलता है, यदि इतना भी जान लेनेका ज्ञान नहीं है तो फिर इसके आगे और क्या हो सकता है ? मैं देहमें ठहरा हूँ तो भी देहमें छुवा हुआ मैं नहीं हूँ। देखो इस देहके कारण, इस कर्म उपाधिके कारण मेरे नाना रूप बन रहे हैं, नाना शरीर बन रहे हैं। कहीं कीड़े मकोड़े बन गए, कहीं पक्षी बन गए, कहीं और किन्हीं रूपोंमें बन गए। इस प्रकारसे नाना रूप विस्तार अपने आत्मप्रदेश में भी हो जाते हैं, किन्तु जो आकारोंपर दृष्टि रखते हैं वे अपनको भूल गए हैं। तो मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। हे भाई ! अपने स्वरूपकी दृष्टि दो कि मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। यह मैं ज्ञानमय आत्मा द्रव्य हूँ। इसका आकार है इसका क्षेत्र है। परन्तु इस क्षेत्रकी दृष्टिसे आत्माका परिचय नहीं हो सकता है। आत्माका परिचय तो आत्माके अंतरङ्ग लक्षणकी दृष्टिसे हो सकता है। आत्मा कहते हैं किसे ? जो जाननहार है उसे आत्मा कहते हैं। मैं सबको जान रहा हूँ मगर मैं सब रूपोंमें नहीं हूँ। अभी मैं इतनी चीजें जान रहा हूँ तो क्या इतना जाननेसे मैं इन रूप हो गया हूँ ? सिनेमाके पर्देपर कितने ही चित्र उठ जाते हैं तो क्या पर्दा उतने चित्रों रूप है ? नहीं। वह पर्दा तो स्वच्छ है। इसी तरहसे इस आत्मामें सब रूपोंकी झलक आ जाने से यह आत्मा सब रूप हो गया है क्या ? नहीं। मैं तो मैं ही हूँ, ये सब ये ही हैं। अन्य रूप मैं नहीं हूँ।

मैं सबको जानता हूँ, फिर भी मैं इन रूप नहीं हूँ। मैं तो सबसे निराला, ज्ञानमात्र अपनेको निरखता हूँ। यही ज्ञान है। इतने केवलके ज्ञानके बिना बुद्धि बाहर बाहर घूमती है,

बाहरमें ही बुद्धि फस जाती है और बाहरमें बुद्धि फस जानेसे आकुलताएँ हो जाती हैं। मैं सबसे निवृत्त होकर केवल अपने आपके स्वरूपको देखूँ तो वहाँ कोई क्लेश नहीं हैं। सब हैं तो सब रहें। मैं तो मुझमें ही हूँ। यह दुनिया तो मोहका स्वप्न है। स्वप्नमें देखी हुई चीजें जैसे झूठ नहीं मालूम होती हैं उसी प्रकार मोहमें प्रतीत हुई चीजें झूठ नहीं मालूम होती है। पर जैसे स्वप्नके बाद जग जाता है तो सब चीजें झूठ मालूम होती हैं उसी प्रकार मोहके दूर होकर सम्यक्त्व हो जाता है और उस सम्यक्त्वके हो जानेसे पदपदार्थोंके प्रति ठीक ठीक ज्ञान हो जाता है। सत्य और असत्यका निर्णय हो जाता है तब ये परपदार्थ झूठ मालूम होते हैं। देखो विचित्रताकी बात कि यह सबको तो जानता है पर इसे अपनी जानकारी नहीं है। यह जो जानने वाला पदार्थ है यह स्वयं क्या है? इसको यह नहीं जान रहा है। यदि वह अपने आपको जान जाय कि मैं क्या हूँ, अपनेको यथार्थ रूपमें पहिचान जाय तो मोक्षका मार्ग मिल जायगा। इसी तरह सब ग्रन्थोंमें आत्माके ज्ञानकी महिमा गायी गई है। मैं अगर अपनी आत्माको ही सर्वस्व जानकर उसमें ही रम जाऊँ तो पूर्णतया ज्ञान व आनन्द होगा। जैसे लोग कहते हैं कि हे भगवान्! हे अल्ला! हे खुदा! तो यहाँपर 'अल्ल' संस्कृतका शब्द है। अह पूजायां धातुसे अर्हन् और अल पूजायां धातुसे अल्ला बना है। अल्लाके मायने भगवानसे हैं। अरहंतका अर्थ पूज्य है और अल्लाका अर्थ भी पूज्य है। खुदाके मायने खुद अपने आपमें बसा हुआ। खुद तो यह है ही। खुद मायने स्वयं। (सभामें किसीने पूछा कि बिसमिल्ला क्या है? तो महाराजजी ने जवाब दिया कि मैं बिसमिल्लाके मायने तो नहीं जानता) आप बतावें बिसमिल्लाका क्या अर्थ है? क्या मैं ही सब बताऊँ। देखो भाई! एक सेठानी बुढ़िया थी। उसका पति गुजर गया। लोगोंने पूछा कि क्यों रोती हो? उसने कहा कि 10-20 दूकानें हैं उनका हिसाब कौन लेगा? पंचायतके सरदारने कहा—गम न करो। रोती क्यों हो, हम सब सम्हाल लेंगे। बुढ़ियाने कहा कि अभी 400-500 भैंस है उनका प्रबंध कौन करेगा? सरदारने सब कुछ सम्हाल लेनेका वादा किया। सेठानीने फिर कहा कि अभी 5 लाखका कर्जा भी लगा है तो पंचायतके सरदारने कहा कि अब क्या हमीं सबकी हाँ करें और लोग भी बोलें। तो भाई ऐसा है। क्या हमी सब बतावें आप लोग भी बतावें। मैं तो बिसमिल्लाका मतलब नहीं जानता हूँ। परन्तु जहाँ तक बिसमिल्लाका अर्थ लिया जाता होगा तो वह गुरुसे मतलब निकलेगा। तो भाई यह आत्मा सबको जानता तो है, मगर उन सब रूपोंमें नहीं है। ऐसा मैं शुद्ध चैतन्यमात्र अपने आपको निरखूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

यह आत्मा देहमें रहता हुआ भी देहसे छुवा नहीं है। रहना बात और है और छुवा होना बात और है। एक ही स्थानपर पदार्थ रहे, इस कारण छुवा हो जाय, ऐसी बात नहीं

है। छुवा होना तो प्रथम मूर्तिमे मूर्तिसे हुआ करता है। सो पुद्गल पुद्गलमे छूनेकी बात वह लो फिर भी पुद्गलमे पुद्गल पदार्थ भी परमार्थसे अन्य किसीसे छुवे नही, क्योकि सभी परद्रव्य अपना अपना जुदा अस्तित्व रखते है। जब किसी चीजमे किसी चीजका प्रवेश नही है तो छुवे हुए कैसे हैं ? परमार्थसे तो पुद्गलमे पुद्गल भी छुवे हुए नही है। फिर मूर्त से मूर्त कैसे छुवे हुए है ? यह आत्मा शरीरमे है अवश्य, पर शरीरसे अछूता है। जैसे किसी को टाइम दे रक्खें कि ८ बजे इस हॉलमे आप मिलिएगा। आप आ गए, और प्रवचन सुनते हुए आप उस व्यक्तिकी बाट जोह रहे हैं तो आप उस पुरुषसे बंध गए शरीरमे नही बंध गए क्योकि अपने आप भाव करके पराधीन बन गए। घर वैभवसे कोई बंधा नही होता। घर वैभवमे जहाँ अपने भावोको लगाया तो अपने आप ही बंध गए। जब वह स्वयं नही हो सकता तो समझो कि बंध गया। दूसरोंमे वह नही बंधा है। वह अपने आप ही बंधा है। देहमे रहते हुए भी यह आत्मा छुवा हुआ नही है। नाना आकारोमे यह आत्मा चलती है, फिर भी यह आकाररहित है, निराकार है। क्योकि आत्माकी पहिचान ज्ञानलक्षणसे होती है। और ज्ञानलक्षणका कोई आकार नही है। ज्ञानका क्या आकार ? जैसे अग्निका लक्षण गर्मी है उसका कोई आकार नही, केवल गर्मी ही उसका आकार है। इसी तरह आत्माका लक्षण है ज्ञान। ज्ञानका क्या आकार ? जाननका क्या आकार ? आप पर्वतको जानें तो जानन बड़ा नही और आप सरसोंको जानें तो जानन छोटा नही। जानन चाहे जैसा हो, छोटा बड़ा नही होता। तिखूटी, चौखूटी चीज जाननेमे ज्ञान तिखूटा, चौखूटा नही बन गया। ज्ञान ही ज्ञानका आकार है और ज्ञान ही आत्माका लक्षण है। इसलिए आत्मा निराकार है। जो लोग इस ब्रह्मको ज्ञानस्वरूप सर्वव्यापक एक मानते हैं और उस ब्रह्मकी ये समस्त पर्यायें है, ऐसी मान्यता जिनकी है उनका काम क्या है कि भाव पकड़ा, द्रव्य, क्षेत्र, कालको भावमे जकड़ा। जीवका भाव है ज्ञान और ज्ञानका लक्षण द्रव्य, काल, क्षेत्र नही है। ज्ञानभावमे वह एक स्वरूप है और वह क्रमा है, सर्वव्यापक। वह ज्ञानभाव एक है, सर्व व्यापक है। वह कहा है ? ऐसा स्थान देखनेमे नही आता है। वह ज्ञान तो सर्वव्यापक है, मगर उस भावमे क्षेत्र और काल जोड़ दो तो ब्रह्माकार बन गया। द्रव्य, क्षेत्र और काल है व्यवहार तथा भाव है निश्चय। ये चारोंके चारो व्यवहार होते हैं और निश्चयसे होते हैं। फिर भी ऐसे अंतरंगमे छूने वाला कौन तत्त्व है ? ऐसा सोचनेपर प्रतीत होता है कि द्रव्यके लक्षणको बताने वाला भाव तत्त्व है।

द्रव्य, क्षेत्र काल है व्यवहारकी चीज। कोई व्यवहारको छोड़कर, व्यवहारकी चीजको छोड़कर भावको ले और उसमे व्यवहारकी चीज लगा ले तो मान्यता यह बन जाती है। मात्र भावदृष्टिमे देखो तो केवल ज्ञानज्योति है वही ब्रह्म है। आत्माकी पहिचान ज्ञानभावसे

है। एक यह भाव बैठ जाय कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं, जाननस्वरूप हूं। जाननस्वरूप क्या है? शुद्ध जानन ही जाननस्वरूप है। इसका क्या स्वरूप है? इस ही लक्ष्यमे लग जाएँ और जानकर केवल अपनी आत्माम जिसे कहते हैं ज्ञानज्योति, उसमे ही लग जाएँ तो ज्ञानानुभव हो जाता है। जब अपनेको ज्ञानरूप न मानकर अन्य अन्य रूपोंमे माने और अपना ख्याल परम लगावें तो वहांपर आकुलताएँ, व्याकुलताए आ जाती हैं। वैसे तो देखो सब बाह्य चीजें ठीक है, पर उनमे इसका कोई सम्बन्ध नही है। यह आत्मतत्त्व अर्थात् ब्रह्म चैतन्य-मात्र है, अमूर्त है। इस जीवके पास कोई आपत्तियाँ नही, कोई आकुलताए व्याकुलताए नही, पर यदि यह अपने आपमे सोच लें, सकल्प बना लें, विकल्प बना लें तो आकुलताएँ व्याकुलताएँ आ जाती है, दुःख आ जाते हैं। इस जीवमे तो ज्ञानमयताकी कोई कमी नही है। यह तो चैतन्यस्वरूप है। शुद्ध हो गया, शात हो गया अपनेमे अपनेका समा लिया। लो यह अनुभूत आत्मतत्त्व हो गया। तो हम और आप तो परिपूर्ण हैं स्वत सिद्ध है, आनन्दघन हैं, सवस्व है, कोई कमी नही है कोई विभाव नही, कोई सकट नही, कोई अशाति नही। पर यदि अपने आपमे सकल्प विकल्प बना लें, बाहरमे दृष्टि हो जाय तो अशाति हो जायगी और अशाति हो जानेमे दुःख प्राप्त होगे। ऐसा दुखी बनने का कारण क्या है? कारण यह है कि परको अपना मान लिया है, परको ही निमित्त मान उपयोगमे सवस्व कारण बना लिया है। यही कारण है कि उसे दुखी होना पडता है। यदि वह परको ही कर्ता बनाएगा, परमे ही अपनी दृष्टि लगाएगा तो उसके दुःख मिट नही सकते हैं। और उसके दुःखोंको मिटानेका सरल उपाय यह है कि वह परमे दृष्टि न लगाये। जब यह जीव परको ही निमित्त बनाकर अपना मान लेता है तो वह उनमे फस जाता है। देखो उसने ऐसी वासना बनाई है, ऐसे सस्कार बनाए हैं कि उसे परमे फसना पडता है और दुःखी होना पडता है। यदि वह इस अज्ञानताकी रस्सी को काट दे तो वह किसी भी बधनमे बध नही बध सकता है। किसी भी परपदार्थमे वह फस नही सकता है। यदि वह अपनी इस अज्ञानता को दूर नही करता है तो उसे ही पुरुषार्थहीनता कहते हैं। जो जैसा है उसको वैसा मानना ही पुरुषार्थ होता है। जो जैसा है उसे वैसा न मानें तो वह ससारी है। ऐसा पुरुषार्थ करने मे लेना-देना कुछ नही है, नुकसान कुछ करना नही है। केवल जो जैसा है उसे वैसा ही सोच लें। पोजीशन वाले लोग क्या कहेंगे, जल्से वाले लोग क्या कहेंगे, जनता क्या कहेगी इन सब बातोंमे आ करके वह परमार्थसे विचलित हो जाता है। और जो जैसा है उसे वैसा ही मानने वाला जो पुरुष है वह अपने आपको ही मुख्य देखता है। वह इज्जत पोजीशन आदि की कुछ परवाह न करके आत्मकल्याणकी धुनमे रहता है। एक वेदातके कथानकका सग्रह है। उसमे लिखा है कि एक गुरु शिष्य थे। वे एक पहाडीपर रहते थे। एक दिन उन्होंने

देखा कि एक नगरका राजा कुछ समूहके साथ दर्शनके लिए आ रहा है। गुरु जी ने सोचा कि अगर उसका मन मेरी ओर आ गया तो बहुतसे लोग यहाँ दर्शन हेतु आवेंगे। बहुतसे लोगोंके आनेके कारण हम ध्यानसे विचलित हो जावेंगे। गुरु जी ने जब देखा तो अपने शिष्य से कहा कि देखो बेटा राजा आ रहा है। अब हम तुमसे रोटियां खानेके विषयमें लड़ेंगे। और जब हम दोनोंको रोटियोंके विषयमें लड़ता हुआ वह देखेगा तो वह हमें तुच्छ समझेगा। फिर यहां न आवेगा और इसके न आनेसे यहां कोई न आवेगा। फिर हम अपने ध्यानमें लगे रहेंगे। अब राजा आ गया। गुरुने कहा अपने शिष्यसे कि हमने तो दो ही रोटियां खाई हैं, आपने कैसे ज्यादा खा लिया? शिष्य बोला कि महाराज कल आपने १०-१२ रोटियाँ खा डाली थी, हमने तो केवल दो ही खायी थी। इसलिए आज मैं ज्यादा खा गया। राजा सोचने लगा कि अरे ये तो महातुच्छ हैं, रोटियोंके विषयमें झगड़ते हैं। राजा चला गया। शिष्यने तीन चार दिन बादमें गुरुसे पूछा कि क्यों आपने उस दिन रोटियोंके विषयमें झगड़ा था। गुरुने कहा कि देखो झगड़ासे राजाका दिमाग बदल गया है वह हमें तुच्छ समझकर नहीं आता और उसीके न आनेसे भीड़ भी नहीं लगती। जिसको अपने कल्याणकी बात मनमें है वह अपनी बात करता है। वह अपनी इज्जत धूलमें मिला करके यदि अपनी रक्षा करना है तो कर ले। खैर जैनसिद्धान्तमें इतनी बात तो नहीं कही गई है कि अपनी बात बिगाड़ करके अपनी रक्षा कर। पर उपेक्षा करके अपनी आत्मभावनाको शुद्ध अवश्य करो। एक कविने एक कवितामें बताया है कि अगर तुम कम बोलते हो तो तुम घमंडी हो, अगर ज्यादा बोलते हो तो तुम वाचाल पाखंडी हो। अगर विनय करते हो तो तुम खुशामदी हो, अगर विनय नहीं करते हो तो तुम जिद्दी हो, अगर खर्च ज्यादा करते हो तो तुम धन खूब उड़ा रहे हो। यदि मितव्ययी हो तो कंजूस हो ऐसा लोग कहेंगे। सो किस किसको प्रसन्न कर सकते हो बताओ। कुछ भी करनेकी कल्पना क्यों करें? कुछ भी करें, सब मिट जायगा। और यदि भगवानका केवल ज्ञानस्वरूप उपयोगमें हो तो भगवान मिल जायगा। यदि परमें दृष्टि होगी, परमें लगाव होगा तो लोग ज्यादासे ज्यादा यह ही तो कहेंगे कि इनका बड़ा वैभव है। कह लिया, पर यह तो बतावो फंसेगा कौन? मरेगा कौन? अविवेकका फल भय का है। तू स्वतंत्र होकर भी परतंत्र मानता है। इसलिए हे भाई ऐसा विचार तो कर लो कि तू अपने आपमें ही दृष्टि करके ऐसा निर्णय कर मैं किसीसे बंधा हुआ नहीं हूं। ये जगतके जितने भी पदार्थ हैं मेरे नहीं हैं—यदि ऐसा निर्णय तू कर ले तो तू प्रसन्नचित्त रहेगा। तेरे घर वाले लोग, दर्शक लोग तुमसे प्रसन्न क्या होंगे? चिंता न कर, आत्मधर्ममें चल। जैसे कहते हैं—कुवा मत छानो, अपना लोटा छानो। हम बाहरके पदार्थोंको छानते है, पर अपने आपको नहीं छानते। अपनेको देखो कि मैं ज्ञानमात्र हूं, चैतन्यमात्र एक वस्तु हूं, इसके

आगे मेरा कुछ भी सम्बध नही है । एक दूसरेको मान लें कि यह मेरा है, यह उसका है, यह गैर है इत्यादि तो यह मोह है । मैं तो सबसे निराला हू, फिर भी यह छटनी करना कि यह मेरे लिए, यह परिवारके लिए है—ऐसी छटनी करना मोह कहलाता है । एसी छटनी करना बहिर्मुखता हुई, बाह्यदृष्टि हुई, मिथ्यात्वदृष्टि हुई । मिथ्यात्वमे मिथ् धातु आती है, मिथका अर्थ सम्बध करना है । मिथ्यात्व उसे कहते हैं जिसमे कि ही बाह्य चीजोसे सम्बध हो, परसे सम्बध दीख रहा हो, इसीका नाम मिथ्यात्व है । जैसे पदार्थ हो वसी ही दृष्टि बने तो सम्यक्त्व है । अपने आप स्वय मैं हू, एसी दृष्टि परपदार्थोंम आ जाय तो यह सम्यक्त्व हुआ । जो बाह्य पदार्थ हैं उनको उनके अपने स्वरूपमे देखना सम्यग्दर्शन है । अभी यह काम करनेको पडा हुआ है । यह पहला काम है जो कि आपको करनेके लिए पडा हुआ है । वह क्या कि जो जसा है (स्वतन्त्र है) उसे वैसा ही भिन्न-भिन्न परिपूर्ण स्वतन्त्र निरखो । मैं भी अपने स्वरूपम स्वय कसा हू ? यह देखना । वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्र है यह देखना अभी पडा हुआ है । फिर उस दृष्टिको देखकर केवल अपने आपको ही निरखना, यह मेरा दूसरा काम पडा हुआ है । बस इस स्वलक्षण दृष्टिसे ही हमारा पूरा पडेगा । जन्ममरणके चक्रमे पडनेक जो ये काम ह उनसे छुटकारा पाने का यही उपाय है । स्वलक्षण दृष्टि बन जानेस जन्ममरणका चक्र बन्द हो जायगा । ह आत्मन् ! परमे दृष्टि न रक्खो । परमे दृष्टि रखनेसे तुझे दुःख होगे ।

तू अपने उपादानमें एसे कषायें भर हुए है, ऐसा उपादान है, ऐसी विषयवासना बनाए हुए है तो तू चाहे जहा रह, चाहे घरम रह, चाहे जगलमे रहे, चाहे मदिरम रहे, तुझे दुःख होग । जब तू कषायोंको पकडे हुए है तो एसी अवस्थामे तुझे प्रत्येक जगह दुःख ही दुःख नजर आवेंगे । जसे जिस पुरुषमे क्रोधकी वासना है और जरा जरासी बातोम क्रोध आता है, चिडचिडा जाता है तो वह सदा दुःखी होता रहता है । जसे कोई नौकर रखता है वह नौकर यदि ठीक काम नहीं करता है तो गुस्सा आ जाता है । यह सोचकर कि दूसरा रखेंगे, उसको यह निकाल देता है । इसी तरहसे और और भी नौकर रखता है तो काम ठीक न करनेकी वजहसे उनपर भी गुस्सा आता है और उनको भी निकाल देता है । नौकर न रखनेसे ठीक रहेगा, यह सोचकर सारे नौकरोंको निकाल देता है अकेला रह जाता है । केवल अकेला वह व्यक्ति रह जाता है तो उसे बहुतसी अडचनें पडती हैं, व्याधिया पडती हैं और उसे दुःख होते है, क्लेश होते हैं । देखो क्रोधके उपादानमे हर स्थितिमे क्रोधी बन रहा है । जिनको कषाय करनेके योग्य क्रोध होनेकी प्रकृति बनी हुई है वे किसी भी परिस्थितिमे हो, परको निमित्त बना करके अपनेमे क्रोध बना लेते हैं और क्रोधस उत्पन्न कषाय के द्वारा उसे दुःख होते रहते है । जिनको मात्र कषाय भरा हुआ है वे अपना मान चाहते हैं तो हर जगह अपना अपमान महसूस करते हैं । अपमान महसूस होनेस कष्ट महसूस होता है ।

जैसे कोई दस आदमी रास्तेमें चले जा रहे हैं, अपनी धुनमें चले जा रहे हैं। मनमें रहने वाले किसीने मनमें यह विचार बना लिया कि अरे देखो इन लोगोंने हमसे राम-राम नहीं किया। ऐसा विचार करनेसे मनमें कषाय आ जायगी और दुःख होंगे। अरे वे तो स्वतंत्र हैं। उन पर बिगड़नेमें उनपर क्रोध करनेमें तुम्हारा क्या बन जायगा और उनपर बिगड़ने का अधिकार क्या? वे तो मस्त थे। अपने आप झूमते हुए चले गए।

कल्पनाएं ऐसी भरी हुई हैं कि मैं सबसे बड़ा हूं, ये मुझसे छोटे हैं। ऐसा होनेके कारण उनकी वासना ऐसी बन गयी है कि उन्हें क्लेश महसूस होता है। अरे २-४ लोग तेरी प्रशंसा ही कर देंगे तो उससे क्या हो जायगा? तू अपनेमें यह सोच लेगा कि लोग मेरी इज्जत करते हैं। अरे जो तेरी प्रशंसा करते हैं वे अपने कषायसे, अपने स्वार्थके लिए, अपनी शान्तिके लिये अपनी चेष्टा करते हैं। जिसकी मायाचारकी प्रकृति है वह जहाँ आवश्यकता है वहाँ भी मायाका काम करता है और जहाँ आवश्यकता नहीं है वहाँ भी मायाका काम करता है। जहाँ जरूरत नहीं वहाँ भी मायाकी प्रकृति पड़ गई ना। इसलिए चलनेमें, बैठनेमें, उठनेमें, बोलनेमें सर्वत्र मायाकी बात किसी न किसी रूपमें आती रहती है। इस तरह तो है लोकप्रवृत्तिकी बात। जिस कषायकी प्रकृति पड़ गई है वहाँ कषाय उठती है और उठते ही समय वह अपना कुछ न कुछ आश्रय बना लेता है। अब देखो तीन चीजें हैं—निमित्त, आश्रय और उपादान। कर्मके उदय तो निमित्त होते हैं व उन निमित्तोंको पाकर विभावमें जब फँसते हैं तब जिन बाह्य वस्तुओंका आश्रय बना लेते हैं वे आश्रय हैं। जो ज्ञानमें आए अथवा जो गुजरे हो उसका आश्रय करके यह जीव उपादान अपने विभावमें पुष्टि करता है। जैसे लोग कहते हैं कि एक गुहेरा होता है जो छिपकलीसे बड़ा होता है। लोग यह कहते हैं कि उसकी आदत होती है कि मनुष्योंको काटता है और काटकर खुद मूत कर उसमें लोट जाता है। ऐसा लोग कहते हैं। पर है क्या वहाँ? बात यह है कि गुहेरेको जब मूत्र करना होता है तो उसका मूल इस ढंगसे होता है कि वह किसी चीजको काटकर, दाँतोंसे चबाकर मूत्र करता है। ऐसा करनेसे ही वह मूत्र कर पाता है। उसका ढाँचा ही ऐसा होता है, उसकी प्रकृति ही ऐसी होती है कि उसको ऐसा करना पड़ता है। वह मनुष्यका ही केवल काटना हो, ऐसी बात नहीं है। उसके आदतकी यह अन्य ही बात है। उसका मूत्र उतरता है जब किसी चीजको काटता है, चाहे मनुष्य हो, चाहे लकड़ी हो, चाहे पत्थर हो वह उसे काट लेगा, उसे चबा लेगा तभी वह मूत्र करता है। उसका ऐसा प्रकृति व्यवहार होता है। इसी तरह जिस जीवके विभाव उत्पन्न होना है उसकी यह पद्धति बनी होती है कि परपदार्थोंको निमित्त पाकर वह अपने विभाव करता है। विभाव करनेका ढंग ही अन्य है। परपदार्थोंके सम्बन्धने विभाव कर दिया हो, ऐसा नहीं है। यह जीव जब विभाव उत्पन्न करता है तो ऐसे ढंगसे

ही कर पाता है। उपयोगसे सम्बंध कर लेता है और वह विभाव कर लेता है, तब अशांतिका कारण हमारी भूल है, अशांतिका कारण हमारी गल्ती है।

अपने आपकी दृष्टि मिटाकर बाह्यमें दृष्टि करके खुद हम उलझाते हैं। हम गल्ती करते हैं उसका फल दुःख होता है, अशांति होती है। मुझको अशांति करने वाला दूसरा पदार्थ नहीं है। मेरी अशांतिका कारण मैं ही हूं। मैंने ही बाह्य वस्तुवोंको संकल्प करके अपना मान लिया है। बाह्य वस्तुवोंको ही मैंने निमित्त बना लिया है और परपदार्थका बहाना करते हैं, मोह करते है। मोह बनाकर ही मैं दुखी होता हूं।

कभी घरमें मां को गुस्सा आ रहा हो तो यदि वह कुछ कहेगी या उगलेगी तो गुस्सा ही उगलेगी और जो कुछ कहना होगा गुस्सेमें ही कहेगी।

बच्चा मिल गया, बच्ची मिल गई कोई भी बहाना करके वह मां उस बच्चेपर गुस्सा करेगी। वह उस बच्चा अथवा बच्चीको पीटेगी भी। यद्यपि वहां पर बच्चे अथवा बच्चीका कसूर कुछ नहीं है फिर भी मां उनको पीटती है।

अरे बड़े घरानेमें नौकर चाकर चतुर होते हैं। एक बाबूजी थे। वे गुस्सा बहुत हो जाते थे। वह नौकर जब कभी देखता था कि बाबूजी गुस्सामें है तो वह उनके सामने नहीं जाता था। वह जानता था कि यदि हम उनके सामने जावेंगे तो सारा गुस्सा हमारे ऊपर ही उतार देंगे। चाहे बाबू जी किसी दूसरे पर ही गुस्सा हों, पर वह नौकर उनके सामने नहीं पड़ता। वह समझता है कि गुस्सेका उबाल आ रहा है। यदि कहीं मैं उनके सामने पहुंच गया तो सारा गुस्सा हमारे ऊपर ही उतार देंगे। पुण्योदयमें कुछ सामर्थ्य पाया तो जिस चाहे पर जो चाहे करनेका प्रयत्न कर देता है मोही।

एक नदीमें एक बकरी पानी पी रही थी। ऊपर भेड़ पानी पी रहा था। भेड़ होता है बकरीका दुश्मन। भेड़ बकरीके बच्चेसे कहता है कि अरे मैं तो पानी पी रहा हू और तू पानी पी कर गंदा पानी कर रहा है। बकरीके बच्चेने कहा कि महाराज आप तो ऊपर का स्वच्छ पानी पी रहे हैं, मैं तो नीचेके ढलावका पानी पी रही हू। भेड़ गुस्सेमें आ गया और बोला कि अरे तू नहीं पी रहा है तो तेरा बाप पी रहा है। होगा। ऐसा कहकर बच्चे पर धावा बोल दिया व मार डाला। ऐसे ही जब कषाय बढ़ती है, होती है तब किसी भी प्रसक्त परपदार्थको आश्रय करके कषाय बन जाती है। तब पदार्थ कैसे हैं? ये सब तू भूल जाता है। पदार्थ स्वतन्त्र है, अपने रूपमें हैं, कषाय रखने वाले व्यक्ति सब भूल जाते हैं, कषाय वालोंको ऐसा ही नजर आता है जिससे उनको वह नजर कषायमें ढल देती है। जैसा पात्र है उसका वैसा ही उबाल निकलेगा। कहते है कि उसको निमित्तने किया। अरे निमित्त ने नहीं किया उसे करने को था सो किया। यह तो बनना ही था। कर्मोंका उदय

में तो विकारोका स्पर्श भी नहीं है। यह परम शुद्ध, निश्चयकी बात चल रही है। इसकी ही बात मान लेवो कोई तो ब्रह्माद्वैत आदि सब अभिप्राय खड़े हो जाते हैं। मैं आत्मस्वरूप कैसा हू, यह स्वभावदृष्टिमें ही दिखता है। जिस माँ का लड़का बहुत अच्छा चल रहा है। साल ६ माह बादमें यदि वह जुवारी लड़केके सगमें आ उसके जुवारीका प्रसग लग गया, तब एक बुढ़िया स्त्री कहने लगी कि देखो तुम्हारा लड़का जुवा खेलता है। उस लड़केकी मा ने कहा कि नहीं, मेरा लड़का जुवा नहीं खेलता है। यह जुवा खेलनेका व्यसन तो उस दूसरे लड़केका है मेरेमें नहीं है। मतलब यह है कि वह अपने लड़केको वैसा ही सुशील समझती है जैसा कि प्रारम्भमें था। वह स्त्री अपने लड़केके प्रति कहती है कि मेरे लड़केको मोहल्ले में रहकर इस दूसरे लड़केने जुवा सिखला दिया है। यह जुवा खेलनेकी आदत उस दूसरे लड़केमें ही है, मेरे लड़केमें नहीं है। इसी तरहसे, विवेकी जीव इस चैतन्य आत्माको सहज स्वरूप, ज्ञानमय, ज्ञानस्वरूप मानता है इस आत्मामें कोई विकार नहीं है, इसमें पुण्यपाप नहीं, रागद्वेष नहीं। कोई कहे वाह वर्तमानमें तो ये सब हैं। अरे यह कर्मोंकी प्रकृति है, मेरी प्रकृति नहीं। रागकी आदत तो कर्मोंमें है। द्वेषकी प्रकृति कर्मोंमें है। ऐसे निमित्तपर आरोप किया गया है अपनी भलाईका। जो अपनेको शुद्ध, स्वच्छ देखता है उसमें कषायभाव और पुण्य, पापका स्पर्श नहीं है। सो ऐसी वस्तुस्थिति मेरी होवे अर्थात् अधिकार होवे। कहीं परपदार्थमें, कहीं नैमित्तिक भावमें, कहीं अपने प्रदेशोंमें—यह मैं हू, यह मेरा है, इससे ही मेरा भला है, इस ही में रमना चाहिए इस प्रकारके भाव उत्पन्न न हो। मैं ज्ञानमात्रका अनुभव करूँ, ज्ञातादृष्टिमें रहूँ, इस प्रकारके भाव उत्पन्न होना चाहिए। कहते हैं ना कि "जो बोले सो फंसे।" अरे समाजमें कोई काम करते हो तो यदि कोई पूछे कि अमुक काम करते हो जो बोले कि हाँ हाँ मैं करता हू सोई फसेगा। घरमें समाजमें, दशमें जो बोलेगा वही फसेगा। किसीसे पूछा—भैया! स्वरूपनगरका रास्ता कौनसा है? बताओ। वह बोलता कि इस रास्तेसे चले जाओ, स्वरूपनगर मिल जायगा। नहीं नहीं जरा साथ चलकर थोड़ासा बता दो। इस तरहसे वह फँस जायगा और यदि रास्ता बताता तो न फसता। ऐसे ही जो पर द्रव्योंमें राग करता है सोई फसता है।

सुना होगा कि एक साधु थे। राजा वदना करके उसके पास बैठ गया। साधुने पूछा कि बोलो क्या चाहते हो? राजा बोला, "महाराज मेरे कोई बच्चा नहीं है, एक बच्चा हो जाय यह मैं चाहता हू। साधुने कहा कि अच्छा जावो, एक बच्चा हो जायगा। इस प्रकारसे आशीर्वाद मिल गया। राजा घर आया, घरमें रहने लगा। साधुने १५-२० दिन बादमें देखा कि रानीके अभी गर्भ नहीं है, कोई मरता हो तो उसे गर्भमें भेज दें। उस समय कोई मर नहीं रहा था। फिर साधुने सोचा कि अच्छा चलो खुद ही मरकर रानीके पेटमें

पहुच । खुद साधु मर गया और रानीके पेटमे पहुच गया । अब साधु गर्भमे पडा हुआ सोचता है कि मैं गर्भसे कैसे निकलू ? साधु परेशान था । वह मनमे विचार करता है कि यदि मैं वचन न दे देता तो ठीक था । वह साधु बार बार विचार करता है कि मैं अब निकलू । साधु गर्भमे बच्चेके रूपमे पडा हुआ है । वह सोचता है कि यदि मैंने वचन न दे दिया होता तो आज यह परेशानी नही होती । अच्छा अब मैं जब बाहर निकलूगा तो बोलूगा नही । बच्चेके रूपमे साधु बाहर निकल आया । सात आठ वर्षका हो गया, बच्चा बोलता ही नही । राजा परेशान हो गया । सोचा कि लडका तो हुआ पर गूगा हुआ । इसे जो ठीक कर देगा उसे मैं बहुतसा धन दूगा । एक दिन बच्चा बगीचेमे घूमता हुआ पहुच गया । वहाँ पर देखा कि एक चिडीमार जाल बिछाए हुए बैठा था । और अब यहाँ चिडिया नही है ऐसा समझकर जालकी तह करके जानेकी तैयारी कर रहा था । इतनेमे ही एक चिडिया जो कि पेडके ऊपर बैठी हुई थी, बोल उठी । अब चिडिया पकडने वालेने जाल फैलाया और उस पक्षीको जालमे फाँस लिया । तब राजकुमार एकदमसे बोल उठा कि "जो बोले सो फसे ।" अब वहा था चिडीमारने समझ लिया कि राजकुमार बोलने लगा । वह राजाके पास गया । राजाको खबर दी कि राजकुमार बोलते है । इतना सुनकर राजाने १० गाँव इनाममे दे दिया । अब राजकुमार घर आया । राजाने देखा कि बच्चा तो बोलता ही नही है । राजा बोला—अरे पक्षी मारने वाले भी मुझसे दिल्लगी करते है । राजाने क्रोध करके चिडीमारको फाँसी की सजा सुना दी । अब चिडीमारसे राजाने पूछा कि तुझे जो चीज चाहिये सो बोल । चिडीमार बोला कि महाराज हमे कुछ नही चाहिए, केवल ५ मिनटके लिए आप अपने बच्चे से मिला दीजिए । राजाने बच्चेसे मिला दिया । चिडीमार बच्चेसे बोला कि हे राजकुमार ! मैंने कभी जिन्दगीमे झूठ नही बोला, पर आज मैं झूठा बन रहा हू । खैर, अब तो मेरा जीवन समाप्त ही हो रहा है परन्तु तुमसे विनय यह है कि जो शब्द बगीचेमें कहे थे वही कह दीजिए । बच्चेने वही शब्द बोल दिया । १० मिनट तक उस बच्चेने छोटासा भाषण भी दिया । बाद में बच्चेने बताया कि दसो पहले मैं साधु था । राजा दर्शन करने गए । हमने राजाको दर्शन दिया था । राजासे मैंने बोल दिया था इसलिए मैं फस गया । इसलिए मैंने बोलना बद कर दिया था । इस तरहसे सारा किस्सा बच्चेने सुना दिया ।

देखिए राजासे साधुने बोल दिया तो साधु फस गया, पक्षीने बगीचेमें बोल दिया तो पक्षी फस गया और चिडीमारने राजकुमारसे बोल दिया तो चिडीमार फस गया । इस लिए इस जगतमें जो बोलता है वही फसता है । यदि ज्यादा बोल-चाल जगतमें रखते हो तो राग बढेंगे, द्वेष बढेंगे । कितने ही लोग ऐसे होते हैं जो दसो दिन तक बच्चोसे नही बोलते हैं । बच्चे पढने लिखने, खेलने कूदने सभी जगह आते जाते हैं, पर उनसे सहज ही

बोलते हैं । उन सम्बन्धमें उनका स्पर्श भी है । उससे वह अनासक्ति करता है तो पराधीन नहीं होता है और यदि आसक्ति करता है तो पराधीन हो जाता है । अब बताओ कि परिवारमें जितने लोग हैं उनसे इस आत्माका क्या सम्बन्ध है ? यदि कोई सम्बन्ध हो तो बतलाओ । बापकी आत्माका पुत्रकी आत्मासे क्या सम्बन्ध है ? यदि कोई सम्बन्ध हो तो बतलाओ । अब देखो कोई सपूत है, पिताका आज्ञाकारी है तो पिताको दुःख है या सुख । दुःख ज्यादा है । पुत्र अगर कुपूत है, अन्यायी है तो पिताको दुःख है या नहीं । नहीं की बात विशेष है । कुपूतमें दुःख मिट जायगा । वह धन बरबाद करने वाला होता है तो अदालतमें लिख दें कि बच्चेका हमसे कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं इसका जिम्मेदार नहीं हूं । बस दुःख मिट गया । और यदि लड़का सपूत है, आज्ञाकारी है, बड़ा विनयशील है, तो उसके प्रति राग करके बाप श्रम ही श्रम तो उठायगा आराम कहाँ पायगा ?

अच्छा यह बताओ कि यदि पुत्र सपूत होगा, आज्ञाकारी होगा तो बाप दुखी होगा या नहीं ? दुखी होगा । कैसे ? अच्छा देखो यदि पुत्र सपूत होगा आज्ञाकारी व विनयशील होगा तो उसे सुखी करनेके लिये बाप अथक परिश्रम कर क्लेशमें पड़ा रहेगा और यदि पुत्र कुपूत है तो उसके बाबत यह प्रसिद्धि करके कि इससे मेरा सम्बन्ध नहीं, छुट्टी पा लेगा । देखो दुःख सपूतमें है कि कुपूतमें है ? यदि पुत्र सपूत होगा तो मोह होगा और मोहमें तो क्लेश अवश्य होंगे । और यदि पुत्र कुपूत है तो न तो मोह ही बढ़ेगा और न क्लेश ही होंगे । अरे देखो संगीत बजाने वाले चार जने है । कोई तबला, कोई सरंगी, कोई मंजीरा कोई हारमोनियम बजाता है । और सब अलग अलग गांवके हैं । परिचय भी नहीं है तो भी संगीत विषयके कारण एक दूसरेकी तारीफ करेंगे । इस तरहसे ४-५ मिनटमें ही उनमें परस्पर सम्बन्ध हो जायगा । उनमें परस्पर दोस्ती हो जावेगी । सबमें आपसमें बोल चाल हो जायगी । अब देखो संगीतके विषयमें ही उनमें बोलचाल हुई ना । अब देखो वे आपसमें फंस गए । व एक दूसरे को भोजनादिके लिए भी निमन्त्रित करेंगे । इस प्रकार उनके बीचमें घनिष्ठ सम्बन्ध हो जायगा ।

अरे यह सब सम्बन्ध क्या है, यह सब खाक है । ऐसा करनेसे तू मोहमें फंसा रहेगा, तुझे आजीवन क्लेश रहेगा । अरे तू तो परमार्थसे शुद्ध स्वच्छ, ज्ञानस्वरूप है, तेरेमें तो क्लेशों का नाम नहीं, फिर क्यों जगजालमें फंसकर क्लेश प्राप्त कर रहा है । करने योग्य काम तो तत्त्वदृष्टि है । सो उसकी ही रुचि कर अपनेमें सुखी होओ । तत्त्वोंमें अन्य अन्य नाना मत हैं । कहते हैं कि मुस्लिम तत्त्व यह है, जैन तत्त्व यह है, बौद्ध तत्त्व यह है । अरे यह क्या है ? व्यर्थमें नाना प्रकारके विवाद बढ़ाते हैं । कोई किसी प्रकारके विचार मानता है, कोई किसी प्रकारके । कोई कोई हनुमानजी को बंदरके मुख वाला व पूंछ वाला कहते हैं । जैन लोग कहते है कि हनुमान इतने सुन्दर थे कि उनके समान सुन्दर उस समय कोई नहीं था ।

जैनसिद्धान्तमे तो बताया गया है कि वह एक कामदेव पदधारी अति सुन्दर राजा थे। और विचारोंसे क्या मतलब ? आप अपनेको तो देखें कि अपना स्वरूप कैसा है ? अर्थात् मैं अपने आपको देखूं कि मैं कैसा हू ? जो मैं हू वही समझू, बस इस ही मे कल्याण है।

अरे अन्यको देखनेका कोई मेरा प्रयोजन नही है। मेरा प्रयोजन तो अपने आपको देखनेका है। मैं अपने आपको देखू और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ। कही चले जाओ सुख कही नही मिलेगा। जैसे यहाँ आप रात दिन भटकते हैं, फिर रातको ९–१० बजेके लगभग आराम करने घर आते हैं, सोते है। इसी तरह बाह्यपदार्थोमे कितना ही भटक लें, फिर अतमे अपने घरमे, अपने आपके स्वरूपमे ही शाति मिलगी। बाह्य बाह्य की तो व्यवस्था करते है पर अपनी व्यवस्था नही कर पाते है।

देहातोमे तो भया हफ्तेमे एक दिन हाट लगती है। सो कही देहातमे कोई अधबूढा आदमी था। वह आदमी एक दिन हाटमे साग भाजी खरीदने लगा। पडौसकी बहुवोंने भी साग खरीदनेके लिए दो दो पैसे दे दिए। दो दो पसोरी सब्जी खरीदना जाता था। पहले पडौसकी बहुवोंके लिए खरीदता था। अतमे अपने लिए भी दो पसेकी सब्जी मोल ली। आखिरमे बची हुई सब्जी थी तो वह खराब थी, सडी थी। वह सब्जी लेकर झोलीमे डालकर घर गया। जब घरकी बहूने देखा तो कहा कि अरे यह खराब सब्जी क्यो लाए ? बोला— पडौसकी बहुवोके लिए पहले अच्छी अच्छी खरीद दिया फिर बादमे जो बची वह मैंने खरीद लिया। बहूसे कहा कि देखो मैं परोपकार करता हू। बहूने कहा कि अरे पहले अपने लिए अच्छी अच्छी खरीद लेते, बादमे फिर दूसरोंके लिए लेते। पहले अपनी रक्षा करो बादमे दूसरेकी। अपनी रक्षा अपने आत्मस्वभावकी उपासना करना है, उसकी दृष्टि रहते हुए परोपकार किया जावे तो वह महत्त्वकी बात है।

भाई अपने स्वरूपकी तो खबर नही है और दूसरेकी ओर आसक्तिसे देख रहे हैं। हे आत्मन् ! पहले अपने स्वरूपको देखो, बादमे फिर अन्यको देखो। अपनेको भूलकर द्वन्द्वको देखा इसे आचार्योंने विवेक नही बतलाया है। बाहरमे क्रिया कलापमे भी रहो, पर उनमे कोई अपना स्वरूप मत समझो। यदि कोई समस्त मतोके विकल्पको छोडकर अपने सत्यका आग्रह कर ले कि मुझे जो अपने आप बिना किसी अन्य जल्पके आश्रयके अनुभूत होगा सो होओ, मैं स्वय ज्ञानमय पदार्थ हू। अत ज्ञानकी बात स्वय ही प्रकट हो जावगी ऐसे सत्यका आग्रह कर ले निराग्रह होकर तो उसे स्वय सत्यका दर्शन होगा। जो सत्यका दर्शन हो फिर उसीका लक्ष्य रखना सो ही शान्ति सुखका मार्ग है।

मूल तत्त्व तो आत्मा है। इस आत्माके बारेमे ठीक ठाक निर्णय जब नही हो पाता तब उस आत्माके बाबत व अन्य बातोमे नाना मत बन गए। तत्त्वोमे जो मत मजहब बन

गए। उसका मूल कारण यह है कि यह जिज्ञासु अपने आपकी आत्माका यथार्थज्ञान नहीं कर पाया। आत्माका यथार्थज्ञान न हो पानेसे ही अनेक मत बन जाते हैं। यह दर्शनका एक गहरा विषय है। वस्तुको जाननेका उपाय स्याद्वाद है। किसी वस्तुका सर्वांग निर्णय करो तो स्याद्वादसे ही कर सकते हो।

जैसे किसी मनुष्यके सम्बन्धमें जानकारी करते हो तो कितना कितना जानते हो? यह पिता है, यह पुत्र है, यह भाजा है यह धनी है, यह पंडित है अनेक प्रकारकी बातोंकी जानकारी करते हो। जानते हो अपेक्षा लगाकर कि यह अमुकका पिता है, यह अमुकका लड़का है, यह अमुकका भाजा है, यह अमुकका मामा है— ये सारी बातें तो अपेक्षा लगाकर जानते हो। इस प्रकारसे यदि अनेक बातें जानते हो तब उनकी सारी बातोंकी जानकारी होती है। इसी तरह आत्माके विषयमें जब सवप्रकारसे दृष्टि दोगे तभी आत्माका पूरा रहस्य समझमें आयगा। जब जीवके पर्यायमें तथा आत्मस्वभावमें दृष्टि दोगे तभी दोनोंमें अन्तर समझमें आयगा। जब जीवके मात्र लक्षणमें दृष्टि दोगे तो तुम्हें पता चलेगा कि जीवका लक्षण है चैतन्य और यदि इस चैतन्यस्वभावमें दृष्टि दो तो नानारूप इसमें नहीं नजर आते हैं। यदि अपने इस चैतन्यस्वभावमें दृष्टि दो तो अद्वैत समझमें आवेगा, व्यक्तित्व नजर नहीं आयगा। अरे यह चैतन्यस्वभाव तो अद्वैत है। इसमें किसी दूसरेका प्रवेश नहीं है तब फिर इसका नाना रूपोंमें अनुभव क्यों है? प्रत्येक जीवका अपना स्वरूप न्यारा न्यारा है। यह बात तो तुम्हें तब समझमें आवेगी जब कि अपने अन्तःस्वरूपमें दृष्टि दो। इस तरहसे जीवके बारेमें नाना बातें स्याद्वादसे विदित होती हैं। पर उनमेंसे किसी एकको पकड़ लो या किसी अपेक्षा किसी अन्य अपेक्षाका मिलान कर दो तो देखो कि नाना मत बन गए हैं। और उन नाना मतोंके विवादमें पड़नेसे केवल कलह ही मिलता। उनसे आत्माको शांति नहीं मिलेगी। आत्माकी शांति तो अपने आपके दर्शनमें होती है। और यदि शांति नहीं मिलती है तो समझो कि उसका निमित्त कोई अन्य है, क्योंकि आत्मा तो स्वयं स्वयंके लिये अनाकुल स्वरूप है।

यदि अपनेमें कल्याणकी भावना है तो अपने अंतरंगमें स्थित ज्ञानके द्वारा ज्ञान प्राप्त करके कल्याण प्राप्त कर सकते हो। एक बात प्रसिद्ध है कि शिवभूति नामके एक मुनि थे। उनको पढ़ाने गुरु महाराजने यह सिखाया कि "मा तुष मा रुष।' इसका अर्थ यह है कि राग द्वेष मत करो। कुछ समय तक शिवभूति मुनि मा तुष, मा रुष रटते रहे। वे और सब शब्द तो भूल गए पर तुष माष शब्द ही केवल याद रह गया। तुष माष कापमें मूषय प है। मा तुष, मा रुष, तुष माष रटते रहे, पर उन्हें ज्ञान नहीं हो पाया। एक दिन चले जा रहे थे। मार्गमें एक महिला मिली। वह महिला उरदकी दाल धो रही थी। तो उरद की दाल तो जानते होंगे जो महीन पीसी जाती है, उस दालमें मसाले डाले जाते हैं। उस दालको

पिट्ठी करते है। तो पिट्ठी बन नेके लिए जो वह उरद धो रही थी वह सफेद सफेद रह गए थे। जब शिवभूति महाराजने उस सफेद सफेद दालको अलग व उरदके छिलकोंको अलग देखा तो ज्ञान हो गया। उन्होंने देखा कि ये छिलके तो सब प्रकटमे अलग अलग हैं, पर जब दालमें भी लगे थे तब भी ये अलग ही थे। इसी तरह यह देह तो छिलकेके मानिन्द है और आत्मा दालके मानिन्द है। देहमे रहता हुआ भी यह आत्मा देहसे अलग है। शरीर व राग द्वेषोंके बीचमे फसा हुआ यह आत्मा है, फिर भी आत्मा तो दालके माफिक स्वच्छ है और यह सब उपाधि उरदका छिलका है। इन समस्त झझटोंके बीचमे यह आत्मा फसा होनेपर भी उन सबसे न्यारा है। ऐसा जिन्होंने न्यारा अपने आपको नही समझ पाया है उनकी बड़ी कुगति होती है। मैं आत्मा कैसा हू और क्या हू? इसका पता जिन्हें रहता है उन जीवोंके विषयकषाय समाप्त हो जाते है। इस जगतमें जो अपने आत्मतत्त्वको भूल गये हैं उनकी दु खकी यह कहानी है। सो यदि कोई ज्ञानके साहित्यिक मार्गमें नही पढा और यदि अपने आत्मतत्त्वको समझ गया है, अपने आपको समझ गया है, तो उसे जीवनमे क्लेश नही होंगे। उसकी जीवनमे दु खकी कहानी नही बनेगी, सदैव प्रसन्नता और आनद रहेंगे। किन्तु इसमे सत्यका पूर्ण आग्रह करना पडता है। हे भाई, ऐसा आग्रह करनेके लिए निष्पक्ष भावकी जरूरत है। अतरमे शुद्ध आत्मकल्याणकी भावना हो तो उस आत्माके दर्शन अपने आप हो जाते है। मुझे करना क्या है? मै स्वत सिद्ध परिपूर्ण पदार्थ हू, स्वरूपत कृतार्थ हू। अत अब यह मैं आत्मा अपने आपके आत्मस्वरूपकी दृष्टि करके अपने आपमें रमू और सत्यस्वरूप बन जाऊ।

यह अन्तजगत, इस जगतकी बात नही कह रहे है जो मुझसे न्यारा अपनी सत्ता लिए हुए है, किन्तु अपने आपमें उठने वाले जो कल्लोल है, रागद्वेष आदि जो परिणाम हैं उनको कह रहे है कि यह जो जगत है, यह जो मेरी दुनिया है यह हर्षादिक वासनासे उत्पन्न होता है, यह अन्तजगत राग है, यह विषयकषाय स्वरूप है। मोही लोग कहते हैं ना किसीका इष्ट गुजर जाय तो कि मेरी दुनिया मिट गयी। देखो केवल पुरुषके बारमे, व्यक्तिके बारमे कल्पनाएँ बनाकर दु खी होते है। और कहते कि मेरी दुनिया मिट गई। बाहरमे इसका कुछ है ही नही, मिटेगा क्या? हा जैसी कल्पनायें करता था पहिले, अब वे नही हो पाती, यही उसकी दुनियाका मिटना कहलाता है। जो पहले कल्पनायें थी वह तो अब नही रही। अब तो केवल उस इष्टको ही अपना सर्वस्व मानकर दु खी हो रहा है। इससे वह अपने इष्टके मिट जानेसे ही यह समझता है कि दुनिया मिट गयी। क्या मिट गया? कोई किसीके शरीरसे प्रेम करता है क्या? अरे उस मर जाने वालेका घरमे कुछ रक्खा रहेगा क्या? चाहे वह खूब कमाता था, अच्छी तरहसे परिवारका पालन करता था। खूब धन दौलत एकत्रित कर ली

थी, पर हे भाई वह इष्ट यदि मर गया है तो उसके शरीरमे भी कोई प्रेम नही करता। अरे देखा यदि कोई मर जाता है तो मुर्दाको उठानेके लिए कभी कोई पच लाग जाते हैं तो घरके बच्चे स्त्री इत्यादि सब रोते है। रोते हुए कहते हैं कि अरे इस मरको कहा लिये जा रहे हो ? यदि वे लोग कह दें कि अच्छा नहीं लिये जाते तो फिर वे घरके ही सब हाथ जोड कहेंगे कि कृपा कर अब ले जाइयेगा। देखो, न तो किसीका देहमे प्रेम है और न आत्मासे प्रेम है। और फिर ये रोना धोना क्या है ? इससे क्या लाभ ? इस मिट जाने वाले शरीरमे कौन प्रेम करता है ? तुझे इस शरीरसे प्रेम करनेसे कोई लाभ नहीं। तुझे तो आत्मासे प्रेम करना चाहिए। सो आत्मासे भी प्रेम कौन करता है ? यह आत्मा तो चैतन्यस्वरूप पदार्थ है सबसे निराला है। जैसा यह है तैसा ही जगतके अन्य चेतन पदार्थ हैं। उस चेतनसे भी कौन प्रेम करता है ? इस जीवकी दुनिया तो अपना अपना अन्तर्विकल्प है। हे आत्मन्! यह दुनिया कहीं बाहर नहीं है, अपनी कल्पनाओंसे ही यह बात उठती है कि दुनिया यही अन्य है। कल्पनाओंके उठनेसे ही पहिले उठने वाली कल्पनाओंके न होनेपर कहते है कि हाय दुनिया लुट गई।

एक मनुष्य लखपति है, उसको यदि एक हजारका नुकसान उठाना पड गया तो उसकी शक्ल सूरत देखो तो वह उदास, दुखी, लुटा हुआ नजर आयगा। और जिस मनुष्यकी गाठमे केवल एक हजार ही रुपये हैं, अधिक नही है और अगर एक हजारका लाभ हो जावे तो वह प्रसन्न होता है। वह तो प्रसन्न चित्त रहता है खुशियां मनाता हुआ रहता है। देखो उससे लगभग ४६ गुना अधिक धन है फिर भी वह अधिक दुखी, व्याकुल परेशान हो जाता है और जिसके पास बिल्कुल थोडा साधन है वह हसता हुआ, खुशियाँ मनाता हुआ रहता है। तो भाई कल्पनाए जहाँ जैसी जगी वहा उसकी वही दुनिया है। अरे भाई व्यर्थकी कल्पनाए न करो। देखो २४ घंटे व्यर्थकी कल्पनाओंमे ही पडे रहते हो और दुखी हुआ करते हो ? भाई इन २४ घंटोंमे २ मिनटका समय तो परमार्थमे दो। यदि २ मिनटका ही समय परमार्थमे दे दो तो जीवन सफल हो जायगा। २४ घंटे आर्तध्यानमे ही लगा रहे तो उसका क्या जीवन है ? इस स्थितिमे रहो कि २४ घंटेमे कुछ मिनट तो अपने आत्मचिंतनमे लगा सको। सत्य और असत्यका निर्णय करलो और अपनेको सत्यमे सुरक्षित कर लो। वह सत्य है। शुद्ध चैतन्यमात्र एक वस्तु अपनेको सबसे निराला समझो और यह समझो कि मेरा किसीसे कोई भी सम्बध नहीं है। सचमुच मैं कुछ नही हू, केवल चैतन्यस्वरूप, ज्ञानमात्र, ज्ञानानदघन एक वस्तु हू, ऐसा अपने आपको निरखो तो जीवन सफल हो जायगा।

अरे भाई जिन पदार्थोंसे राग कर रहे हो, मोह बना रहे हो वे कुछ नही है। जैसे तुम स्वतन्त्र हो वैसे ही वे सब है। अपने आपमे २ मिनट तक ऐसा अपने आत्मस्वरूप

चिंतन करो कि बाह्य वस्तुओंका ध्यान न रक्खो। केवल अपने आत्मस्वरूपको ही अपने सामने रक्खो तो जितने भी विकल्प हैं, दुःख हैं समाप्त हो जावेंगे। जैसे पहले बताया था कि प्रत्येक चीजमें ३ बातें हुआ करती है—(१) शब्द, (२) अर्थ, (३) ज्ञान। इसी तरह पुत्र ३ होते है—शब्दपुत्र (२) अर्थपुत्र (३) ज्ञानपुत्र। बताओ कौनसा पुत्र अपना तुमने इन तीनोंमे माना है? तुम्हारा शब्दपुत्र है क्या, नही। अरे पुत्र केवल शब्दोंमे लिखा हुआ है वह पुत्र नही है। तो तुम्हारा अर्थपुत्र है क्या? जो दो हाथ और दो पैर वाला है। अरे यह पुत्र तो अपने खुदके कषायमे रहने वाला है, स्वार्थी है। इसलिए यह पुत्र भी तुम्हारा नही है, न हो सकता है तो उस पुत्रके बारेमे जो ज्ञान बनता है वह ज्ञानपुत्र ही तुम्हारा पुत्र है। यह ज्ञानपुत्र जिस वक्त है उस वक्त ही तुम्हारा है अन्यथा वह भी नही है, क्योंकि वह तो नश्वर है, मिट जाने वाला है। और परमार्थमे देखो तो जब ज्ञानपुत्र है तब भी वह तुम्हारा नही है। तुम तो ध्रुव हो, ज्ञानपुत्र अध्रुव है। आकुलताएँ क्यों उत्पन्न हो जाती हैं? ये राग द्वेष आदि भाव कैसे उत्पन्न हो जाते है? केवल कल्पनासे। उनके मिटनेका उपाय ज्ञानोपयोग है भैया! देखो जब मंदिरमे पूजनके लिए, स्वाध्यायके लिए, धर्मके लिए, सत्संगके लिए जाते है तो वहाँ पर इसीलिये तो जाते है कि रागद्वेषका उपयोग बदले, ज्ञानका उपयोग हो। यदि रागद्वेषादिकी बातें करते है वहाँ तो उन बातोंसे आकुलताएँ उत्पन्न ही होंगी और वह आगे किस जगह आकुलता दूर करनेका उपाय बनायगा? मंदिरमे पूजन करने जाते है तो सत्संगसे धर्मपालनसे, धर्मव्यवहारमें उनके रागद्वेषादिक विकारोंमे अंतर तो कुछ पड़ जाता है। इन रागद्वेषोंसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिए ही व्यवहारधर्मका पालन किया जाता है। मंदिरमे पूजन करने जाना है—इस भावनामे ही प्राय अहंकारकी भावना समाप्त हो जाती है। देखो जिसको जिस कामसे प्रेम है उसको उस कामसे मतलब है, कामके करने वालेसे मतलब नही है। व्यवहारधर्मकी परम्परा चलती है उससे ही विवेकीको समाजमे मतलब है व्यवहारको पक्षसे मतलब नहीं। देखो भगवानके दर्शन पूजन करनेके लिए मंदिर जानेके वास्ते स्नान करते हैं तभीसे धर्मपालन हो रहा है। मंदिरमें आनेके लिये भक्त नंगे पैर मार्गमें चलता है अपने निर्विकल्पत्व वर। प्रभुभक्ति करनेसे ईर्ष्या, द्वेष, मोह तथा अहंकार इत्यादिकी भावनाएं समाप्त होती हैं। लोग ऐसा समझते है कि धर्मका पालन करनेसे हम और हमारी समाज धर्ममे रहकर अपना कल्याण कर सकेंगे। यही सोचकर वे धर्मका पालन करते हैं, धर्ममें रहते हैं। यह तो व्यवहार परम्पराकी बात ठीक है, किन्तु उसमे भी परमार्थका लक्ष्य बने तो वह भी व्यवहार धर्म है।

वास्तवमें भक्तका यह प्रयोजन है कि वह रागद्वेषसे बच जावे और आत्माका अहित करने वाले जो विषयकषाय हैं उनको दूर कर देवे। बस पूजा आदिका यही प्रयोजन है।

भक्तिमे जो आनन्द समाया हुआ होता है, उसका अनर्थ करने वाले ये विषयकषाय ही होते है। उन विषयकषायोसे दूर होनेके लिए हमे धर्मव्यवहार करना है। देखो जो मनुष्य भगवानके दर्शन करनेके लिए मंदिर आते है वे मदिर आनेकी तैयारीमे घरपर ही धर्मका पालन करते हैं। क्योंकि स्नान करते है और स्नान करनेके बाद यह भावना बनती है कि हम भगवानके दर्शन करेंगे, धर्मका काम करेंगे। यह प्रयोजन जो मनमे बसा होता है तो यही धर्मका पालन यहाँ है।

मंदिरके अन्दर गए तो क्या बातें करते है कि आज तुम्हारे घरमे क्या खाना बना था, क्या आज हो रहा है, शामको क्या खाना बनेगा, मुकदमेका क्या हुआ इत्यादि अनेक प्रकारकी व्यर्थकी बातें एक दूसरेसे करते हैं। देखो भाई हम लोग कितने विरुद्ध बन गए? कहाँ तो हम वीतराग भगवानके दर्शन करने, अपने सकल्प विकल्प दूर करने और अपनेको स्वच्छन्द करनेके लिए मदिर गए थे और कहाँ रागद्वेषकी बातें करने लगे। अब प्रभुपर अगर न्यौछावर हो जाओगे तो दर्शन मिलेगा और यदि रागद्वेषोंपर हो पडे रहे तो प्रभुका दर्शन नही हो पायेगा। रागद्वेषोमे पडे रहना ही विकल्प है। यह स्थिति औपाधिक है, विनश्वर है। मेरी जो चीज है, मेरा जो परिणमन है वह मेरे स्वरूपके अनुकूल ही होता है।

मेरी चीज मुझे ही दुखित कर दे, यह तो बडे गजबकी बात है। फिर मेरी चीज कहाँ रहेगी? मेरी चीज मुझे ही दुखित कर दे तो मेरी कैसे? ये रागद्वेष, मान, माया, मोह, विषयकषाय ही मुझे दुखित करते हैं, तो ये सब मेरे नहीं हैं। मेरा तो केवल मैं हू। मेरा वह नही है जो मुझे दुखी करे तो मेरा वह क्या है? मेरा है वह मेरा स्वभाव। मैं तो केवल स्वभावरूप हू और बाकी सब मैं नहीं हू। जो मैं हू वह अनादि हू अनन्त हू, अचल हू, अपने आपके ही द्वारा अनुभवमे आने योग्य हू। ऐसा मैं तत्त्व स्वभावमात्र हू, मै यही स्वरूप सबका लिए रहता हू, इसके आगे मेरा कुछ नही है। इस आत्मस्वरूपके दर्शन करनेसे सब सकल्प विकल्प क्षीण हो जाते है, नष्ट हो जाते हैं। हम प्रभुके दर्शन करते है कि कहाँसे हमको दर्शनमात्रसे यह सदेश मिलता है कि हे प्रभो! आप चक्रवर्ती थे, आपके पास बहुत बडा साम्राज्य था। आपको ज्ञान हुआ, आपने वैभव विभूतिको नही चाहा। उसको आपने असार समझा। उस वैभव विभूतिमे आप नही फँसे, अलग ही रहे और अपने आपको ही अपने उपयोगमे लगाया। आज आप जगतमे पूज्य बन गए। हे प्रभो! मै आत्मा भी आपके ही सदृश हूँ। जैसे आप है वैसा ही मै हू। इस जगतके जीवका असली स्वरूप ही ऐसा है। हे आत्मन्! तू भगवान समान अपनेको निरख। तू अपनेको यह समझ कि मै भगवान सदृश हू। इस औपाधिक विनश्वर अन्तर जगतको त्याग करके अपने निर्वाणस्वरूप आत्मस्वभावको निरखू तो मेरा कल्याण है और बाह्य बातोमे फसनेसे मेरा कल्याण नही है।

आचार्योंका उपदेश है कि ससारका त्याग करो, ससारको छोड दो। ससारको छोडना कहलाता क्या है और ससार कहलाता क्या है? क्या ससार इस दुनियाकी जगहका नाम है? क्या इस लोकका नाम ससार है? अगर इस दुनियाकी जगहका नाम ससार है और इस लोकका नाम ससार है तो इसको छोडकर कहाँ जाओगे? क्या कोई अलोकमे पहुच जाओगे? जगतका नाम ससार नही है, किन्तु रागद्वेषकी जो वासना बने, बस उसीका नाम ससार है। ससारका त्याग कर दें, इसका अर्थ यह है कि रागद्वेषकी वासनाओका त्याग कर दो। प्रत्येक जीव भिन्न भिन्न है, अपने स्वरूपमे हैं, अपने आपमे परिणमते हैं। एकका दूसरेसे सम्बध कुछ है ही नहीं। फिर किसी भी परवस्तुमे राग, द्वेष, विकल्प करना क्या यह अज्ञानता नही है? ज्ञान और अज्ञानका तो यह प्रमाण है कि जहाँपर मूढता है वहापर ज्ञान अज्ञानता दीखती है और जहाँपर मूढता नही है वहाँपर प्रसन्न हुआ दीखता है। जहापर मूढता नही वहाँपर सम्यक्त्व हो जाता है और जहाँपर मूढता है वहापर मिथ्यात्व है। तो यह मिथ्यात्व ही ससार है। जब तक यह ससार है तब तक जीवको क्लेश हैं। यदि ससारका त्याग करो अर्थात् इन रागद्वेष विकारादि वासनाओका त्याग करो तो सारे क्लेश समाप्त हो सकते है। रागद्वेष की वासनाओका नाम ही ससार है। कोई यहां कहे कि रागद्वेषकी वासनाओको तो ससार कहा, रागद्वेषको ही ससार क्यो न कह दिया? उत्तर इसका यह है कि द्रव्यमे प्रति समय समय एक एक परिणमन पर्याय हो रहे है तो जीवमे भी प्रतिसमय एक एक पर्याय होते होते चले जाते है। एक समयमे दो समयके पर्याय नहीं होते। दो समयमे एक पर्याय नही। तब रागके पर्याय भी प्रतिसमय एक एक चलता जा रहा है। यह सूक्ष्मदृष्टिका जिक्र किया जा रहा है तो एक समयका राग, पर्याय अनुभवमे नही आता है और एक समयके राग पर्यायसे ही जीव क्या राग महसूस कर लेगा? अपने आप ऐसा नहीं होता है, किन्तु बहुत समयकी राग पर्यायोका उपयोग ग्रहण करता है। इस कारण सूक्ष्मदृष्टिसे रागके सतानका अनुभव होता है। और दूसरी बात यह है कि राग द्वेषमे जो आसक्ति हो जाती है उसको ससार कहा गया है। इसी कारण सम्यग्ज्ञान होनेपर कदाचित् रागद्वेष रहता भी है तो भी उनकी गिनती नही की गई। वे मिट जावेंगे। इसलिए वासनाको ससार कहते है। इस वासनाका विनाश होने पर ही ससारका त्याग कहते है। ससारके प्रत्येक जीव ज्ञायकस्वरूप है, परमात्मस्वरूप है। उनका कोई भी जीव न तो मित्र है और न शत्रु है। वह जीव है, ज्ञानस्वरूप है, अपने ज्ञानमे परिणमते रहते है। उपाधिकी विशेषताके अनुसार उनमे विकार भी होते रहते हैं। उनमे विकार उनकी ही परिणतिसे होते हैं, किसी अन्यकी परिणतिसे नही होते हैं। ऐसा स्वय विज्ञानघन जगतके सब जीव हैं। उनको कैसे माना जाय कि वे शत्रु हैं? कोई भी मेरा शत्रु नही है। कोई ज्यादा बिगडता है तो जो कुछ उसे विकार बनाना होगा वह बनावेगा, वह

अपने आपको ही बनावेगा, मेरा वह कुछ नही बनावेगा। तब फिर मेरा दुश्मन कौन ? ज्ञान दृष्टिसे देखो तो इस जगतमें मेरा शत्रु कोई नही है। जिस आत्माका मन ऐसा रहता है कि यह मेरा दुश्मन है तो वह विकल्प उसका दुश्मन बना रहता है, उसका शत्रु बना रहता है। पर परमार्थसे देखो तो इस जगतमें कोई किसीका शत्रु नही। जो दूसरोको शत्रु समझता है, वह विकार कर रहा है वह विकार अपनेमें करता है, अपने लिए करता है और अपने द्वारा करता है। मेरा प्रभु तो मैं हू, मेरेसे बाहर कुछ नही है तो फिर मेरा दुश्मन कोई कैसे है ? इसी प्रकार जिसको मित्र मान रहे हो, परिवारको इष्ट मान रहे हो वह भी तुम्हार नहीं हैं। तुम्हारा स्वरूप ही तुम्हारा सब कुछ हो सकता है। अपना स्वय मैं हू, अपने स्वरूपमें वर्तता हू। उपाधिकी विशेषताके अनुसार विकार भी करता हू, मोहभाव भी करता हू स्नेह राग भी करता हू। मै अपने आपमें करता हू अपने आपके लिए करता हू और अपने द्वारा करता हू।

एक गाँव खुरई सागरके पास है। श्रीमत सेठ वहाँपर एक बहुत बडे आदमी थे। उनके जो लडके हैं वे भी सेठ हैं। वह सेठ बड गर्म (तेज) दिमागके थे। उनकी स्त्री गुजर गयी थी। उनकी दूसरी शादी भी हो गयी थी। जब सेठानी शादीके बाद सेठके घर आयी तो सेठानीको सखियोंने, मित्राणियोने समझाया कि देखो सेठ बहुत गर्म दिमागके है, अगर कही सेठ जी बिगड जाते हैं तो मुश्किल पड जाती है। सेठानी भी चतुर थी। उसने सेठके बारेमें तो सुन ही लिया। एक दिन सेठके सिरमें दर्द था। स्त्रीको खबर भिजवाई कि तुरत दवा लावो। सेठानीके मनमें ऐसा विचार आया कि अगर कही मै अभीसे दब गयी तो जिन्दगी भर दबना पडेगा। इसलिए आज सेठको कोई कला दिखाऊ तब तो छूट पाऊगी। बस सेठानी ने सिरमें दर्द बना लिया। बोली अर मेरा सिर दर्द कर रहा है। मैं क्या करू ? सेठ जी की नई नई शादी हुई थी, उनको अपनी स्त्रीकी खातिर तो करनी ही थी। इसलिए वह अपने सिरकी दर्दको भूल गए और अत्यन्त विह्वल हो गए। अब सेठ जी अपनी बात तो भूल गये और मोहमें सेठानीकी सेवा करने लगे। मान लिया कि सेठानीके सिरमे दर्द भी हुआ तो क्या सेठकी वेदनाने उसकी वेदनाको बनाया ? नही। उसने तो केवल सेठके प्रति राग कर लिया था। उस रागने ही सेठानीकी वेदनाको बनाया।

कोई जीव कहते हैं कि हम तुमसे राग करते है, हमारा तुमसे बडा राग है। ऐसा कहनेसे वह राग कर तो क्या हमारे रागसे राग कर रहा है ? नही। वह स्वय ही कल्पनाएँ बनाकर एक नया राग और खडा कर देता है। किसी जीवकी परिणमतिसे किसी जीवको कुछ हो जाय तो नही हो सकता है। कितने ही आदमी ऐसे रागी होते हैं कि वे दूसरोंके प्रति रागी है। तो क्या एकका दूसरेमे राग पहुच गया ? नही। एकका दूसरेसे सम्बध ही क्या ? तो जब प्रत्येक जीव जुद-जुदे है, किसीसे किसीका सम्बध नही है तो ऐसे स्थितिमे अन्य पदार्थों

का, अन्य जीवोका उपयोग बनाकर तत्कार और राग बनाकर रहना, इसको तो मूढता ही कहेंगे। और मूढता कहा जाय या मोह कहा जाय—दोनोका शाब्दिक अर्थ एक है। अगर मूढ कहें तो ससारके लोग कुछ बुरा मान जावेंगे और यदि मोही कहें तो लोग शायद बुरा न मानें। बात तो एक ही है। और है भी क्या ? समझका फेर। तो बस इतना ही तो जाल है। यदि इससे जुदा हैं अर्थात् अन्य जीवोको अपना उपयोग न बनावें, बाह्य वस्तुओका ख्याल न करें, रागद्वेष न बनावें तो जाल नही है। वह मूढ और मोही नही कहा जावेगा।

अरे यह कितना जाल है ? बहुत छोटासा जाल है। केवल समझका भर है। मैं हूँ और अपने स्वरूपमे हू—ऐसा न देखकर यह इसका कुछ है, यह इसका कुछ कर देता है, इस प्रकारकी जो समझ बन गयी है, बस वह समझ ही जगजाल है। इससे बढकर और कुछ नही है। जब गृहस्थीका दद फद सिरपर आ जाता है, लडका बीमार है, अमुक बीमारी है, यह करना है, अभी दूकान जाना है। यो करना है मुकदमा कई है। इस प्रकारसे कहते हैं कि बडे जगजालमे फसे हुए है। अरे बाहर कोई जाल नही है। न जाल दूकानमे है, न लडको बच्चो वगैरहमे है, न आत्मतत्त्वमे है, न शरीरमे है, केवल अपने आपके आत्मस्वरूपको शुद्ध सबसे निराला उपयोगमे नही देखता है और बाहरमे ही सुख कर लिया है तो यही तेरा जग जाल बन गया है। अरे तू अपनी बाह्य दृष्टिको हटा दे, अपनी रागद्वेषकी भावनाको मिटा दे तो यह तेरा जगजाल मिट जायगा।

देखो कितने जगजाल हैं और कितने पौरुषसे ही वे मिट जाते है ? कितना कठिन लग रहा है ? उन सब कठिनाइयोका कारण रागद्वेषकी वासना है। यह वासना अगर मिट जाय तो क्लेश मिट जाएँ और अगर यह वासना नही मिटती है तो क्लेश नही मिटेंगे। यह कर्मबध वासनासे ही होता है। जिन कषायोका उदय है उन कषायोमे होने वाली कर्मप्रकृतियोमे ज्यादा अनुभाग पड जायगा, पर बध सबको पड जायगा। जिन जिन विकारोकी वासना है।

हे आत्मन्! क्रोध क्या कर रहे हो ? मान, माया, लोभ, क्रोध इत्यादि विकारोकी वासनाएँ क्यो बना रहे हो। यदि तू इन वासनाओसे दूर है तो क्लेश दूर है और यदि इन वासनाओको अपनेमे बनाए हुए है तो आजीवन क्लेश रहेंगे। इसलिए इन वासनाओको मिटाने का उपाय करना चाहिए। गृहस्थीके चरित्रको आचार्य गुणभद्र स्वामीने बताया है कि वह तो हाथीका स्नान है। हाथीने स्नान किया और बाहर गया कि धूलको सूडमे भरकर अपने ऊपर डाल ली। इस तरहसे वह फिर गदा हो गया। गृहस्थी भी सीमा बनाकर त्याग करते हैं। दस लक्षणके दिन आ गए तो कहते है कि अब हम काम नही करेंगे, दूकानमे नही बैठेंगे, धर्मके काम ज्यादा करेंगे, अब हम पाप न करेंगे, पर यह वासना बनी हुई है कि दस लक्षणके

दिन निकलने तो दो, फिर जल्दीसे जाकर दूकानमे बठेंगे, यह करेंगे, वह करेंगे। इस प्रकार की वासना मनमे भर लेते हैं।

अरे यह तो वास्तविक त्याग नही हुआ। सीमा बना करके त्याग करना ठीक नही होता है। सप्तमीको नियम कर लिया, नौमी तक उपवास रहेगा, पर यह वासना बनी हुई है कि नौमीके ८ बजने तो दो। जल्दीसे खाना बनावेंगे, खाना खा लेंगे। यह कर लेंगे वह कर लेंगे, ऐसी वासना बनी होती है। साधुवोके चरित्रमे देखो तो ऐसी वासना नही बनी होती है। उनको यह पता हो नही रहता है कि भोजन करने जायेंगे कि क्या करेंगे? उनको यदि तीव्र भूख लगेगी तो उठेंगे नही तो नही उठेंगे। इसी तरह अनतचौदसका व्रत है, वहाँ भी गृहस्थी लोग यह वासना बनाए रहते है कि अनन्त चौदसके बाद पूनमके ७ बजने तो दो। यह भोजन करेंगे, वह रसपान करेंगे। पर यह ख्याल साधुवोके नही होता है। वह साधु तो बच्चोकी तरह ही हैं। यदि तीव्र भूख लगी तो खडे हो जावेंगे, नही तो नही खडे होंगे पर उसकी वासना रच भी न रखेंगे। गृहस्थ ऐसा नही कर पाता है। यही तो गृहस्थ और साधुमे फर्क पड गया है। साधुके वासना नही होती है और गृहस्थ वासना बनाए रहता है। इसका क्या कारण है? गृहस्थके आरम्भ व परिग्रहका सम्बंध है। तो इस वासनाका विनाश कैसे होगा? अपने सहजस्वरूपकी दृष्टिसे कि यह मै आत्मा सहज ज्ञानस्वरूप हू, जाननहार हू, यह ही मेरा स्वरूप है, यह ही मेरा धर्म है, जानन यह अमूर्त है अनन्तानन्त भावको लिए हुए है ऐसे ज्ञानानदघन भावमय यह मैं आत्मा हू। इसमे किसी दूसरेसे सम्बंध नही है। इसके स्वभावमे विकार नही है। रागद्वेषकी वासनाएँ बनाना, इसका काम ही नही है। रागद्वेषकी तरग, यह गडबड बात उठ जाती है। कैसे उठ जाती है? उपाधियोका निमित्त पाकर हो जाती है।

सिनेमाका पर्दा स्वय चित्रित नही होता है। तो कैसे चित्रित हो जाता है? यह देखो सामने फिल्म आ गयी। फिल्म उपस्थित हुआ और फिर वह चला गया। तो पर्दा अपने आपमे उठकर चित्रित नही हो गया। पर्देका मात्र स्वत चित्रित हो जानेका काम ही नही है। चित्रित तो फिल्मके निमित्तसे हो गया है। इसी प्रकार यह आत्मा स्वय रागद्वेष नही बनाता। आत्माका स्वभाव ही रागद्वेष बनाना नही है। कर्मउपाधिका निमित्त पाकर यह चित्रण होता है। इन रागद्वेषोका जो सस्कार बनता है वह वासनाओके कारण हो बनता है और इन वासनाओके कारण ही क्लेश होते है। ये सब क्लेश इस आत्मदृष्टिके द्वारा ही नष्ट हो जाते हैं। मैं एक ज्ञानस्वभावमात्र हू, ऐसा एकरस हू, सबसे निराला हू, ज्ञानमय हू, शुद्ध हू, जुदा हू, दर्शन ज्ञान हू, सम्यक्त्व हू, मूर्त पिंडरूप नही हू। इसके अतिरिक्त और कुछ मैं नही हू। परमाणु मात्र भी मेरा कुछ नही है। ऐसा उपयोग बनानेसे ही इन रागादिक वासनाओका

विनाश होता है। और जब वासनाओंका विनाश होता है तो क्लेश मिट जाते है।

जब कोई राग होता है तो देखनेमे आता है कि जल्दी जल्दी प्रवृत्ति होती है और जब उसकी वासना होती है तो जल्दी भोगनेकी प्रवृत्ति होती है। जब वासना नहीं होती है तो बाह्यदृष्टि भी समाप्त हो जाती है। जिसके फोडा नही है वह मलहम पट्टी क्यो लगाये, जिसके बुखार नहीं है वह पसीना क्यो निकाले ? जिसके वासनाएँ नही है वह आकुलताएँ व्याकुलताएँ क्यो करेगा ? जब वासनाका रोग होता है तो इलाज करना पडता है। जिसकी वासनाएं समाप्त हो जाती है, फिर इलाज नही करना पडता है। तो इन वासनाओंका त्याग तो अपने आपकी दृष्टिसे ही होगा। मै हू, अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमे हू। परके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें मैं नही हू। मैं स्वरूपसे शुद्ध हू, स्वय परिणमनशील हू, इस कारण निरतर परिणमता रहता हू। मैं परिणमता ही चला जाता हू। इसका दूसरासे कुछ भी सम्बध नही है। यह ज्ञानकी परिणति है तो अपनी परिणति स्वभावके कारण अपने ज्ञानकी परिणति चलती जा रही है। इसका बाह्य पदार्थोंसे कोई सम्बध नही है। जैसे चौकी, कमण्डल आदि पदार्थोंका ज्ञान हुआ, तो इसका चौकी, कमडल किसी चीजसे सम्बध नहीं है। मेरेमे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसमे इस चौकी और कमडलने कोई मेरी मदद कर दी है क्या ? अरे यह कोई भी चीज मददगार नही है। खुद ज्ञानकी परिणति होती रहती है और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। हम लोग तो आवरण लिए है, इस कारण ज्ञानकी कुछ कमी है और यह आवरण मिट जाय तो ज्ञान सब विश्वका उत्पन्न हो जाय। फिर तो सारा विश्व अपने आप जाननेमे आयगा तो इस सारे विश्वकी मेरे जाननेमे कृपा है क्या ? प्रत्येक पदार्थ है, परिणमनशील है, परिणमते रहते है, ऐसा ही यहा ज्ञान हो रहा है। सभी द्रव्योंकी ऐसी निगाह रहे तो सम्यग्ज्ञान और शाति प्राप्त होनेका यह अच्छा उपाय बनता है और तब ससारके क्लेश दूर करनेके लिए हमे अपने आत्मस्वरूपकी आराधना करनी चाहिए और आत्मस्वरूपकी आराधना, देवकी आराधना, गुरुकी उपासना, स्वाध्याय, सयम, तप करना चाहिए। और देखिये मुफ्तका कूडा कचरा, करकट वैभव अपने घरमे आ गया है तो उसका दान किया जाय, त्याग किया जाय। ये ६ कर्तव्य गृहस्थके बताए गए है। देखो भाई कूडा कचरा क्या है ? धन वैभव ही कूडा कचरा है। उसके प्राप्त करनेमे आपकी कोई वर्तमान करतूत है क्या ? आपका स्पर्श है क्या ? अरे वे तो भिन्न-भिन्न सत्ता वाले हैं, अगर एक जगह आ गए तो मुफ्तमे ही तो है।

आत्माका तो आकार अपने ज्ञानपर्यायमे है। इस वैभवमे क्या तुम्हारा गया ? कुछ गया तो नहीं, इसलिए यह वैभव विभूति मुफ्त ही तो है। इसलिए वह कूडा कचडा कहलाया। धन जड है, जीव चैतन्यस्वरूप है, मेरा इसमे कुछ नही है। यदि यह कूडा कचरा

नहीं है तो तीर्थंकरोंने चक्रवर्तियोंने इसे कैसे त्याग दिया ? विभूतिका त्याग देना क्या उनकी बेवकूफी समझना चाहिए। इस आत्माके स्वरूपको देखनेमें और धर्मके करनेके प्रसङ्गमें शुद्ध नयकी ही बात सामने रखी जाती है और इसमें उलझनकी बात सामने नहीं रखी जाती है।

देखो भाई २४ घंटे हैं। २३ घंटका समय तो विकल्पोंमें लग गया, पर एक घंटका जो समय बचता है उसमेंसे २-४-१०-१५ मिनटका समय तो आत्मस्वरूपके चिंतन में लगाओ। अपनेको सबसे निराला, शुद्ध, ज्ञानमात्र, विकल्प भावोंसे पर अनुभव करो। यदि इस प्रकारका अपने आपको अनुभव करो तो जीवनमें शान्ति प्राप्त हो सकती है और यदि अपने को लुटेरों खचोरोंसे मिला हुआ अनुभव कराए तो शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती है। अपनेको ज्ञानस्वरूप, सबमें निराला एवं विलक्षण चैतन्यमय अपने आपको अनुभव करो और २४ घंटेमें २४ मिनट तो अपने आत्मस्वरूपमें दृष्टि दो तो आकुलताएं व्याकुलताएं नष्ट हो जावेंगी। हम मूर्तिकी मुद्राका दर्शन करते हैं तो हमें शिक्षा मिलती है कि मूर्तिकी तरह ही शांत अपने आपको निरखूं। अपने आपको उस मूर्तिकी तरह शांत निरखे बिना शांति नहीं मिलेगी। इस प्रकारसे मानो कि उनकी वीतरागमुद्रासे अपनेको शिक्षा मिली है।

जहाँ पर वासनाएं हैं वहाँ दुःख है वहाँ व्यसन है। तो भाई ये व्यसन तो ज्ञानके द्वारा ही नष्ट हो सकते हैं। मैं तो ज्ञानमात्र हूं, कृतकृत्य हूं, परिपूर्ण हूं ऐसा तुम्हें अपने आप को निरखना है। यही तो इस आत्माका काम है, इस आत्माका इसके आगे और कोई काम नहीं है। इसलिए अपने स्वभावमें दृष्टि हो तो वहाँ वासनाएं समाप्त हो जावेंगी और वासनाओंके समाप्त होनेसे सारे क्लेश समाप्त हो जावेंगे।

पुरुषार्थ चार होते हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्मके माने हैं, पुण्य करना, दान करना, परोपकार करना, दूसरोंका सेवा सत्कार करना। धर्म, अर्थ और कामके मार्ग ही अब तो मिलेंगे, मोक्षमार्ग तो बंद हो गया है। धर्मके मार्ग तो कितने ही हैं। दान करके, परोपकार करके, गरीबोंको खिला पिला करके इत्यादि अनेक प्रकारसे धर्म किया जा सकता है। और अर्थके माने है धन कमाना। धन कमानेका पुरुषार्थ करना, इसीको कहते हैं अर्थ पुरुषार्थ। काम पुरुषार्थके माने हैं घरवासियोंका पालन पोषण करना, समाज तथा देशके बारे में कुछ सेवाभाव उत्पन्न करना, विषयभोग सेवना इत्यादिके माने कामपुरुषार्थ है। और मोक्ष पुरुषार्थ तो मोक्ष है ही। यह मोक्ष पुरुषार्थ अन्य तीनों पुरुषार्थोंसे अच्छा है। धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ भी गृहस्थावस्थामें किसी अपेक्षा कुछ अच्छे हैं, मगर सर्वथा अच्छे नहीं कहोगे। क्यों अच्छे नहीं कहोगे ? एक एककी खबर लो। पहले कामको लो। काम निंदनीय होता है। कामके अर्थ पालन पोषण और कामवासना दोनों ही है। काम ज्ञानका बैरी

है। जसे विषयोमे आसक्ति है, प्रीति है तो वहाँ ज्ञानका काम तो नही चलता है। कामका पुरुषाथ है ज्ञानका दुश्मन। अब अथपुरुषाथको लो। धन तो अनथका मूल है। अर्थात् धन से अनथ होता है। इस धनका काम तो केवल आध है और कोई काम नही है। धनके होने पर यदि विवेक है तब तो काम बनेगा और यदि विवेक नही है, मोह है तो मोहके होनेमे स्वभाव ऐसा हो जाता है कि पाप करते हैं दूसरोको सताते है, क्रोध करते है, छल, दम्भ, धोखा इत्यादि करते है। धमपुरुषार्थ, कामपुरुषाथ व अथपुरुषाथका कारण है। पुण्यका और काम क्या है ? खूब कमाई आ रही है, खूब सपत्ति भोगकी सामग्री मिल रही है तो पुण्य परमाथमे यह प्रवृत्ति है कि कामपुरुषाथ और धमपुरुषाथम सहयोग द। पुण्यपुरुषाथ का और क्या काम है ? यहाँ आत्मधमकी बात नहीं कह रह। उसम यदि रम गए तो दूसरे अच्छा और क्या काम है ? तब तो फिर सारे काम बन गए। यहा तो पुण्यकी बात लेना। इस पुरुषाथसे क्या काम बना कि धन-सम्पत्ति मिल गई भोगसामग्री मिल गई यही हुई अथपुरुषाथकी बात। और दूसरे पुरुषार्थोकी पोलको तो सुन ही लिया। काम ज्ञानका दुश्मन है, अथ अनथका मूल है और दोनो ही दुश्मनका बढावा देने वाले है, यह धम (पुण्य) पुरुषार्थ इन तीनो पुरुषार्थोका सम्यग्ज्ञानी पुरुष आदर नही करते हैं। यदि पुरुषाथ करना ही है तो ज्ञानका पुरुषाथ करो। परमपुरुषाथका रास्ता ज्ञान है। यदि ज्ञान है तब तो परमपुरुषार्थ हो सकता है। नही तो मोक्षपुरुषाथ नही हो सकता है।

अभी देखो शाति, सतोष, सुख और आनन्द इत्यादि उसी अवस्थामे आते हैं जब कि अपने अत करणमे विषयकषायोका अनुभव न हो। यदि विषयोका लगाव है, कषायोका लगाव है, धन वैभवका लगाव है, कुटुम्ब परिवारका लगाव है तो शाति सतोष, सुख, आनन्द इत्यादि कैसे प्राप्त हो सकते है ? जिनका लगाव इन सबमे होगा उन्हे दुर्गतिका पात्र बनना पडेगा। मनुष्यको सकटोमे बचाने वाला केवल ज्ञान ही है। और इसका कोई शरण नही है। घरमे स्त्रीके, पुत्रके हजार गुण हो, पर समझो कि कोई देवता नही हमे मिल गया है। अपने मनमे ही केवल विचार बना लेते हैं कि मेरा अच्छा समागम हुआ, हम लोग सुखसे हैं। देखो भाई इस तरहसे परिवारको देखकर और अपने धनको देखकर सुखी हो रहे हैं। व अपने ज्ञानको इन बाह्य चीजोमे ही फसाए हुए है। बाह्यमे ज्ञानका फसाना ही आस्रवका कारण होता है। सो कहते है कि धम अथ, काम—ये तीनो पुरुषाथ वास्तविक पुरुषाथ नही है। मोक्षका पुरुषाथ ऐसा है कि जिससे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। और यदि अपना उपयोग मोक्ष की प्राप्तिका ही बने सो बात उत्तम है। अरे जो तुझे जो चार पाँच आदमी मिल गए है, जिनको तू अपना सवस्व समझता है उनसे ही क्या तेरी गुजर हो जायगी ? उस पारिवारिक बन्धनमे पडा हुआ यदि तू मौज करता रहा तो क्या तेरा पूरा पड जायगा ? बाहरी बातमे

तेरा पूरा नही पडेगा, शांति नही मिलेगी। बाह्य भोगसाधनमें तो यह जीव जहाँ जाता है अपने हितपथमें आगे नहीं पहुचता है।

एक कथानकम कहते है कि एक राजा थे। मुनिके दर्शन करनेके लिए गए। राजाने अपने बारेमे मुनिसे पूछा कि महाराज मेरा परभव क्या गुजरेगा अब मैं मरकर क्या बनूगा? मुनिने अवधिज्ञानसे सोचा और कहा कि तुम अमुक दिन, अमुक समयमे, अमुक स्थानपर तुम मरकर विष्टाके कीडा बनोगे। अब राजा अपने घर आया। बडा उदास था। अपने लडकेसे कह दिया कि बेटा मैं अमुक दिन अमुक टाइमपर, अमुक स्थानपर मरकर विष्टामे कीडा बनूगा, सो तुम हमे एक लकडीसे मार डालना। मै तो राजा हू और कीडा मकौडा बनूगा तो मैं कीडा मकोडा बनकर इस जगतमें नही रहूगा। राजा मर गया और कीडा बन गया। लडका एक लकडी लेकर पहुचा। जिस विष्टामे राजा कीडेके रूपमे बना हुआ था उसी जगह लकडीसे लडकेने मारना चाहा, पर वह विष्टामे घुस गया। देखो भाई वह कीडा मरना नही चाहता था। इस जगतमें यह जीव जिस गतिमे जन्म ले लेता है वह अन्य गतिमे नही जाना चाहता है। देखो नाम प्रकृतिमे गतिया चार मानी गयी हैं—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। इसमे दो गति, नरक व तिर्यञ्च पाप है और मनुष्य व देव ये दो गति पुण्य हैं तथा आयुकी चार प्रकृति हैं—नरकायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु व देवायु। जिसमे आयुकी तीन गतियाँ हैं—तिर्यञ्च, मनुष्य और देव ता पुण्य प्रकृतियां कही हैं केवल नरकायु पाप है। यह फर्क इनमे कैसे आया? कोई भी तिर्यञ्च या मनुष्य या देव जीव यह नही चाहता कि मैं मर जाऊ। केवल नारकी ही चाहते हैं कि मैं झट मर जाऊँ। तिर्यञ्च नही चाहता कि मैं मर जाऊँ। तिर्यञ्चकी तो आयु प्रिय हो गयी। तिर्यञ्चकी जो अवस्था गुजर रही है उसे वह नही चाहता और मरना भी नहीं चाहता। यह जहाँ जाता है वही मस्त हो जाता है। जिनसे ये मोह कर लेते उनसे पूरा पड जायगा, ऐसा तो है नही।

हे आत्मन्! विवेक ही पूजा है। जिनकी हम भगवान समझकर पूजा करते हैं सदा ध्यान लगाते है, भक्ति करते हैं उनके ज्ञानकी कुछ तरग ही नहीं उठती। कितना ही हम माथा रगडते है पर वह हमारी तरफ देखते भी नहीं। देखो भैया! बहुत दिन भक्ति करते हो गए, उनका ध्यान लगाते हो गए, उनकी आराधना करते हो गए फिर भी हमारी तरफ ताकते भी नहीं, देखते भी नहीं। और फिर भी हम पूजन भी करते पाठ भी करते चले जा रहे हैं, फिर भी वह हमें पूछते भी नही। देखो भाई कितने दिन भगवानका पूजन करते हो गया उन्होने कभी यह भी नही कहा कि चलो यह ले लो। कुछ नही मिला। वह हमसे बोलते भी नही, बहुत दिन बीत गए, १० वर्ष बीत गए, २० वर्ष बीत गए, युगो बीत गए, हमारे लिए प्रभुने कुछ नही किया। अरे थोडासा हमसे बोल दें तो हमारा दिल तो ठडा हो जाय।

मगर कुछ नही किया। फिर भी हम उनको पूजते जा रहे है, उनके लिए हम न्योछावर होते चले जा रहे हैं। कुछ तो बात है भगवानमे बडी तभी तो हम पूजते हैं। उन भगवानने जो कुछ किया है वह ठीक ही किया है। सबसे मोह छोडकर, ममत्व छोडकर अपने आपमे स्वय बस गए, अपने आपमे ही अपना ध्यान किया, वैभव विभूतिको कुछ नही समझा। तो प्रभु निष्कम्प सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनन्तानन्दमय है, सर्वोत्कृष्ट हैं।

हे आत्मन्! ये बाहरके पदार्थ भोगसाधन क्या है बतलाओ? एक तराजूमे सेरभर मेढक तोलो तो क्या तौल सकोगे? अरे वह उछल जावेगे। वहाँ इधरसे उछाल दो तो वहाँ उधरसे उछाल दी। इसी तरह बाहरी पदार्थोंकी व्यवस्था बनाकर कोई चाहे कि हम आराम कर लें तो नही कर सकते है। बाह्यपदार्थोंकी हालत भी ऐसी ही है कि यह आया वह गया, और वह आया, यह गया। इस तरह बाह्यपदार्थोंमे अपना उपयोग बनाकर हम आराममे नही रह सकते है और अपनी व्यवस्था बनाकर हम आराम कर लेंगे, यह सुगमतया हो जाता है। ज्ञानदृष्टि बना लें फिर सुखमे रह, आराममे रह। ये धर्म याने पुण्य अर्थ और काम पुरुषार्थ हमारी विपत्तिका कारण बनते हैं। हमारी अशान्तिका कारण बनते है। गृहस्थको यह बताया गया है कि धर्मपुरुषार्थ, अर्थपुरुषार्थ और कामपुरुषार्थ तीनोंके बिना नही चलता है अर्थात् बिना धर्म किए धन कमाये काम किए और मौज किए बिना काम नही चलती है, सो भाई ये तीनो पुरुषार्थ गृहस्थको करना पडेंगे। परन्तु उनको बताया है कि तीनोमे बराबर का यत्न करना चाहिए। धन कमाना, पुरुषार्थ करना, धर्म करना सबमे बराबर दृष्टि रखनी चाहिए। और अगर कोई बराबर नही रखता है, केवल धर्ममे ही लगा रहता है, केवल धन कमानेमे ही लगा रहता है या केवल काममे लगा रहता है तो उस गृहस्थका गुजारा नही चलनेका है। अगर केवल धर्म ही धर्म करते हो तो मुनि बन जाओगे तो गुजारा चल जायगा। पर एक गृहस्थका गुजारा नही चलेगा। उसकी गृहस्थीका काम ही नही चल सकता है। केवल धर्म को ही खींचकर रह जावें तो गुजारा नही चलेगा। साधुका तो केवल धर्मवृत्तिमे गुजारा चल जायगा, पर गृहस्थका गुजारा नही चलेगा।

जैसे साधुको खाना मिल गया तो खा लिया और यदि न मिला तो न खाया, इस तरहसे उनका गुजारा तो चल जायगा पर त्रिवर्ग बिना एक गृहस्थका गुजारा नही चल पायगा। और यदि कोई गृहस्थीमे ही फसा रहे, धन ही धन कमानेमे पडा रहे, अपने परिवार का पालन पोषण ही करनेमे पडा रहे तो क्या उसका गुजारा चल जायगा? नही। और कोई ऐसा हो कि काम ही काममे रहे, विषयोमे ही मस्त रहे, खाने पीनेमे ही आसक्त रहे जिनसे मोह है, उनकी सेवा खुशामद, पालनपोषणमे हो रहे और धर्म पुरुषार्थ न करे तो भी उसका काम नही चलेगा। इसलिए गृहस्थको धर्मपुरुषार्थ, अर्थपुरुषार्थ और कामपुरुषार्थ तीनोंमे

ही समान समय देना चाहिए। धर्मके समयमें धर्म करें, मौज उड़ानेके समयमें मौज उड़ावें और धन कमानेके समयमें धन कमावें।

देखो चार पुरुषार्थ बताए गए हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष पुरुषार्थ तो आजकल चलता ही नहीं। केवल तीन पुरुषार्थ रह गए हैं। और चौथा पुरुषार्थ जो अब चलता है वह आपको बतावें तो शायद मुहा जायेगा। वह पुरुषार्थ बढ़िया भी है। आजकल चौथा पुरुषार्थ चलता है सोना, नींद लेना, मोक्षकी एवजमें अब चलता है नींद लेना (हँसी)। देखो काम चार हैं— धर्म, अर्थ, काम और शयन। और घंटे हैं चौबीस। प्रत्येक कामसे २४ घंटेको भाग दे दिया तो ६ घंटे प्रत्येक कामका हुआ। ६ घंटेका काम है धर्म करना ६ घंटे धन कमाना, ६ घंटेका काम है पालन पोषण करना और मौज उठाना और ६ घंटेका काम है नींद लेना आराम करना। चाहे थोड़ासा अन्तर पड़ जाय पर इस तरह काम चलेगा और क्रम भी इस प्रकार चलेगा। धर्म सुबह करना, उसके बाद अर्थका काम, धन कमाने का काम, उसके बाद पालन पोषण करने और मौज उड़ानेका काम, उसके बाद नींद लेने और आराम करनेका काम। जैसे धर्म ४ बजे सुबहसे १० बजे तक याने ६ घंटे और अर्थ का काम अर्थात् धन कमानेका काम १० बजेसे शामके ४ बजे तक, और ४ बजेसे १० बजे रात तक पालन पोषण तथा मौज उड़ानेका काम और १० बजे रातसे सुबह ४ बजे तक नींद लेने और आराम करनेका काम। भले ही थोड़ा सा परिवर्तन कर लो मगर ये काम बराबर बराबर चलें। ४ बजेसे १० बजे तक नहीं तो एक घंटा कम ही सही। ९ बजे तक ही सही। इसी टाइममें थोड़ा धर्म पुरुषार्थ भी कर लो प्रातः उठते ही कायोत्सर्गरूपमें णमोकार मंत्रका जाप कर लो। उसके बाद हाथ पैर धोकर स्वाध्याय कर लो, फिर सामायिक कर लो, सामायिक करनेके बादमें नहा लो, धो लो। देखो नहाना धोना भी इसमें ही शामिल है जब कि यह भाव है कि जिनदर्शनादि करना है। फिर धर्म करो सत्संग करो इत्यादि।

अब भी देखो धर्म ही चल रहा है। घरमें जो रसोई तैयार करेगा उसमें भी धर्मका ही काम है क्योंकि वह शोध करके बचाकर खाना तयार करेगा और फिर वह किसी मुनि अतिथि व्रतीको खिलाएगा। ऐसी भावनाएँ होनेपर धर्म होता है। देखो रसोईका काम घंटे डेढ़ घण्टेमें हो जाता। यदि रसोईमें चटोरी चीज वगैरा बनाना है तो ज्यादा टाइम लगेगा। अब रसोई तयार करनेमें भी देखो धर्म हो चलता है। सोच लो मनन तो सदा धर्म ही धर्म चल सकता है। वैसा असलमें तो २४ घंटा ही टाइम है, किन्तु मुख्यताकी अपेक्षा बात चल रही है। अब देखो ४ बजे सुबहसे ९ या १० बजे दिन तक धर्म ही धर्म किया। अब १० बजे शाम तक धन कमानेका समय आ गया। धनको यदि ईमानदारीसे व धर्मके भावसे कमाओ तो वहाँ भी धर्म है, सम्यक्त्वमें तो २४ घंटा धर्म ही धर्म है।

मे ४ वजे तक धन कमाया जाय। फिर ४ बजेसे १० बजे रात तक लड़को, बच्चोका पालन पोषण करना, मिलना जुलना, सत्सग करना, सभा मीटिंगमे जाना, मौज उड़ाना इत्यादि। और फिर १० बजे रातसे सुबह ४ बजे तक नीद लेना, आराम करना। इस तरहसे बटवारा करना ठीक है। अब क्या बाकी रह गया? कुछ नही। ज्ञानी योगीके तो तीनो जो पुरुषार्थ है धम, अथ और काम ये आदरके योग्य नही होते है। धन कमाना और विषयके काम करना तो यह तो सीधे खराब हैं। अथपुरुषाथ करना भी अाथसे मिलता है। पुण्य ही यहाँ मदद देता है। पुण्यके कारण ही धन कमा लिया जाता है, भोगसेवन साधन होता है। ज्ञानसे ही तीनो पुरुषार्थोका उपयोग हो तो गृहस्थावस्थामे कुछ ठीक है। नही तो यह स्पष्ट बात तो है ही कि ये तीनो पुरुषाथ ससारकी बात हैं। आदरके योग्य तो केवल आत्मधम है। कषायकी मदताको धम कहते ह, किन्तु कदाचित् कषाय मद होन पर धम हो या न हो। किन्तु अपने सहजस्वरूपकी दृष्टिरूप धम द्वारा कषाय मद हो जायगी और मोक्षमाग भी चलेगा। उस धमसे सत्य आदर प्राप्त होगा। अरे अपने सहजस्वरूपकी दृष्टि ही धम है। अपने स्वरूपमे दृष्टि अधिकसे अधिक लगे तो वही धम है। धनकी चीज तो यो ही हो जायगी अथवा धन तो यो ही आता है। उसमे कुछ करना नही पडता है। अभी कोई समय ऐसा सुयोगका बन जावे तो यो ही कमाई हो जावे। अभी अभी २—४ मिनटमे ही बिना किए हुए ही कमाई हो जावेगी। पर हमे तो सोचना होगा, श्रद्धा करनी होगी, आचरण करना होगा, अपनेमे अपनेको लगाना होगा तभी अपना ठीक होगा। धम तो करनेसे ही होगा बाकी धन तो यो ही हो जायगा। यदि हम ऐसा ही करें तो यही धमका पालन होगा। सो अब हम अपने पर्यायके आदरको त्याग करके अपने सत्यस्वरूपपर दृष्टि दें और अपने आपको ही अवलोक कर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होवें।

जगतमे सभी जीव सुख चाहते ह और जितने भी य यत्न करत है सुख पानेके ही यत्न करते है। धन कमाना, देशसेवा करना, विषयसाधन बनाना, कषाय करना, भोग भोगना, आत्महत्या कर डालना इत्यादि सारके सार यत्न सुखके लिए ये जीव करते है। उन यत्नोसे सुख मिल ही जाय, ऐसा तो नही है। यदि वे योग्य काम ह तो सुख मिलेगा और यदि अयोग्य काम हैं तो सुख नही मिलेगा। परन्तु सभी प्रयत्न सुखके लिए ही होते हैं। सुख होता क्यो नही है? देखो जितने कारण जो कुछ ह उनमे विचार करो तो अतमे एक ही बात मिलेगी, सुखका दुश्मन है दीनताका भाव, दीन परिणाम। दीनता सुखका दुश्मन है। पचेन्द्रियके विषयमे जब इच्छा होती है तब दीनता आती ही रहती है। अपनेमे विषयोकी चाह है तो दीनता होगी। परका भाव आ गया स्त्रीके आधीन हो गए या नए नए जो साधन हैं उनके आधीन हो गये, ससुरालके आधीन हो गए, यही दीनता है। परिणाम

गरीब हो गए। अपने बलका कोई मूल्य वह नही करता है। यह दीनता ही तो सुखका दुश्मन है। दसो तरहके भोजन करनेके परिणाम हो गए। अब यह चीज चाहिए, अब वह चीज चाहिए इत्यादि इच्छासे वे पराधीन होते है। कोई मनावर भी दसो प्रकारके व्यञ्जन परोस रहे हैं। तो खाने वालेके मनमे आ जाय कि यह चीज अच्छी है। बस इतनेसे ही जीव मे दीनता आ गयी, उनका गौरव बुझ गया। चाहे ऊपरसे न मागे, मगर आशाके परिणाम आ गए तो दीनता है। और इस दीनताकी वृद्धिमे फिर वह मुखसे मांगने लगता है। यह दीनताका परिणाम ही मूलमे ऐसा है जो सुखका दुश्मन है। इसी तरह मन, चक्षु श्रोत्रके वशीभूत हुए तो दीनता छा जायगी और यदि किसी चीजके वशीभूत नही हुए तो दीनता नही आती है। जगतके किसी पदार्थकी चाह नहीं है तो दीनता कस आवेगी? एकको न देखो, कितनोके सामने ये जगतके जीव दीन बने रहते है। स्त्रीके दीन, कुटुम्बके दीन, धनके दीन इत्यादि जिन जिन बातोमे चाह है जिन-जिन वस्तुओमे प्रीति है उन सब पदार्थोके दीन बन रहे हैं। सुखका अभाव किसने किया? दीनताने। धनहीन होनेको दीन नही कहते, किन्तु परवस्तुओकी चाह करे, भीतरमे लच जाय उसे दीनता कहते हैं। यह दीनताका परिणाम ही सुखका दुश्मन है।

एक बार एक राजा जगलमे निकला तो वहाँ एक सन्यासी बैठा था। वह राजा सन्यासीके आगेसे निकल गया, पर नमस्कार भी नही किया, बोला भी नही और वहाँसे वापिस आया। कुछ थका मांदा था, सो वह साधुके पास आराम करनेके लिए बैठ गया। राजाने विनय भी नही की और न कोई शुश्रूषाकी बात की। राजा गर्वमे भरा हुआ बैठा था। साधु बोला एक श्लोकके द्वारा कि हे राजन्—"वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वदुकूलै, सम इवपरितोषो निर्विशेषो विशेष। स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला, मनसि च परितुष्टे कोऽथवान् को दरिद्र ॥

यदि तुम रेशमके वस्त्र पहिनकर खुश हो तो हम वृक्षकी छाल और बल्कल पहिनकर खुश है। तुम यदि अर्थसे अर्थात् धनसे खुश रहा करते हो तो हम आचार्योंके ऊँचे-ऊँचे श्लोको के अर्थ लगाकर खुश रहा करते हैं। तुम यदि बडे अच्छे अच्छे पलग, वाहन, आसनोमे खुश रहा करते हो तो मैं पारमार्थिक तत्त्वोंके विचारमे रहकर खुश रहा करता हूँ। हममे और तुममे अन्तर क्या है? कुछ नही। पर राजन् दरिद्र वह है जिसके हृदयमे तृष्णा लगी रहती है। उसका मतलब यह था कि मुझ सन्यासीको दरिद्र देखकर राजा गर्वमे आ गया है। तो उत्तर दिया कि दरिद्र वह है जिसके अन्दर तृष्णा लगी है। उसे ही दीनता कहते है। धनकी कमीसे दीन नहीं कहलाता। सुखका दुश्मन दीनता है। जब जीवको क्रोध आता है तब उसके मनमे दीनता आती है, घमड आता है, मोह करता है, मायाचार करता है, दूसरोंमे

सम्मान चाहता है और दीन होता है। सुखका दुश्मन दीनताका परिणाम है। सो दीनता आती जाती है और सुख चाहता जाता है। तो ये दोनो बातें तो नही होती है कि दीनता भी आवे और सुख भी मिले। ये दोनो बातें तो हो ही नहीं सकती है।

यह दीनता होती कैसे है ? मिथ्यात्वके पापसे भ्रमके पापसे। पाप ५ होते हैं। सुना होगा। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ—ये ५ ही पाप हैं। हिंसा, झूठ, चोरी ये तो लोकदृष्टिसे जो दूसरोंको समझमे आते और जो व्यवस्था बन रही है वह बिगडे ना। पर अंदरमे देखो तो ये ५ पाप हैं—मिथ्यात्व क्रोध, मान, माया और लोभ। इन पापोमे कौन-सा पाप छूट गया ? हिंसा, झूठ, चोरी वगैरा किए जाते है तो इन्ही पाँचोकी वजहसे किए जाते है। सो उनमे प्रबल है मोह। आप लाख दर्जे चाहते हैं मेरा हित चाहते हू और मुझे भ्रम हो जाय तो आपकी शकल देखकर पाप लग रह ह। मुझे भ्रम हो गया तो मैं मरा जाता हू, जला जाता हूँ। भ्रम तो पाप है। भ्रम कैसा, धोखा कैसा ? धोखा एक पापका बाप है। किसीने किसीको धोखा दिया तो धोखा देने वालेको टोटा है कि जिसे धोखा दिया उसे टोटा है। टोटा तो उसे है जिसने धोखा दिया। जिसको धोखा दिया गया है वह यदि ज्ञानमे है तो टोटा नही है और यदि ज्ञानमे नही है तो टोटा है। जिसने धोखा दिया उसका ऐसा रुद्र परिणाम है कि वह कठोर बन गया। उसको तो विशिष्ट पाप है, उसका कैसे छुटकारा होगा, वह कैसे पार होगा ? जिसने धोखा दिया उसे पाप है। जिसको धोखा दिया उसकी आत्माको कितने क्लेश होते हैं, इसका तो वही अनुभव कर सकता है जिसे क्लेश होते हैं। जिसको धोखा दिया है उसके मनमे ऐसा तक आता है कि अगर साधन हो तो धोखा देने वालेकी अभी जान ले लें। और यह मिथ्या मोह भी क्या है ? धोखा है। प्रश्न—जिसको धोखा दिया वह इतना सक्लेश करता और हिंसाका विचार करता है तो वह भी तो बड़ा पाप करता है। उत्तर—पाप तो वह भी करता है परन्तु अभी यहां उसकी बात नही कह रहे है। यहाँ तो उसके दुःखकी बात कह रहा हू। यह मोह भी क्या है ? यह विश्वासघात है, मोह है, मिथ्या है। जैसी बात है, जैसा पदार्थका स्वरूप है वैसा विश्वास नही बना और उसका उल्टा बना बैठा तो यह धोखा है और अपने आपको धोखा दे रहा तो यह कितना धोखा है ? धोखा अपनेको देने वाला मैं खुद हू, कोई दूसरा नही है। अपनी कल्पनाओमे ही मस्त रहे। यह सोचें कि हम काम ठीक कर रहे हैं, हमारा यो काम चल रहा है, हम मजेमे है इत्यादि, पर वृद्धावस्थामे कुछ खबर और ही होगी। ६०, ७०, ८० वर्ष धोखेमे ही चले गए, कुछ नही किया। जिसके जवानी है, बचपन है उसके ज्ञान विकसित नही हो रहा है, पर अंतमे उसको धोखा है। जब लोगोको कष्ट होने लगता, दुःख अधिक सह लिये जाते तभी ज्ञान होता है। किसी किसीके जवानी या बचपनमे ही विवेक हो जाता है। ये जगत्के प्राणी अपनेको

धोखा दते जा रहे हैं। अच्छा खाने पीनेका ही काम है, सतुष्ट होकर खाते हैं। अर इस सुख मे ही मस्त होकर अपने आपको धोखा देते हो। ये सब तो नष्ट होने वाले हैं, मेरी चीजें नही है। लोगोका सुखमे मस्त होना अपने आपको धोखा देना है। अर जो सुख प्राप्त हैं उनके भी तुम जाननहार रहो और जो दुःख होते हैं उनके भी तुम जाननहार रहो, फिर क्या सुखमे मस्त हुए जाते हो और दुःखमे घबडाए जाते हो ? यही तो इस ससारमे विकार है। अर परपदार्थोंमें, परजीवोंमें मस्त न हो। उनमे मस्त होनेमे सुख नही होता।

जिसके लालच है उसके ही दीनता है। और जहाँ पर दीनता है वहाँ पर क्लेश है। जैसे कोई किसी वस्तुमे लालच करे, परवस्तुवोमे दृष्टि दे तो वही दीनता है। तो सुखका दुश्मन दीनता है। दीनताका परिणाम है और वही एक बडी दुर्गति है। उसका कारण पाप है। पाप करें तो सारी बातें उत्पन्न होती हैं इसलिए पापसे दूर रहना, यही मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट विभूति है। जो पुराणमे लिखे गए महापुरुष हैं उनमे यह विशेषता थी कि वे पापसे दूर रहे, धर्ममे प्रीति रही। इसीसे उनके पुराण बन गए। भक्त लोग उनके चरित्रके पन्ना-पन्ना खोलते हैं और उनके चरित्र पढते है। उनमे यही विशेषता थी कि वे पापसे दूर रहे। तो यह पाप जो है वही सुखका दुश्मन है। तो चाहिए ता यह कि इस पापको छोड दें। एक जगह शास्त्रसभा हो रही थी। अनेक लोग शास्त्रमे बैठे हुए थे। एक लकडहारा भी उस दिन शास्त्रमे बैठा था। शास्त्रमे चर्चा चली कि ये ५ पाप ही दुःखके देने वाले हैं। उनको त्यागना चाहिए। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह। लकडहारेने सोचा कि कुछ और पाप तो मैं करता नही हू, केवल जगलमे हरी लकडी काटता हू। अच्छा उसे भी अब मै नही काटूगा। मैं केवल सूखी लकडिया बीन लाया करूंगा या किसी सूखे पडमे ही काट लाया करूंगा। मैं किसीसे झूठ भी नही बोलता। केवल ग्राहकसे लकडीके ठहरानेमे झूठ बोलता हू सो यह भी न बोलूगा। साढे आठ आनाकी लकडी लाऊँगा और आठ आना कहूगा। चोरी मैं सिर्फ यह करता हूँ कि दो पसेकी चुगी बचा लेता हू। मैं चोरी भी नही करूँगा। मैंने किसी दूसरेकी स्त्रीपर कुदृष्टि भी नही डाली। अच्छा अब मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य धर लू। स्वस्त्रीसे भी ब्रह्मचर्य रखूगा। परिग्रह भी क्या करना है ? ठीक है आठ आनेकी लकडी बचता हू। दो आने धर्ममे खर्च करू, चार आनेमे गुजर बसर करूँगा और दो आने जो बचते है उन्हे विपत्तियोंसे बचनेके लिए, सकटसे हटनेके लिए विवाह आदि कामोमे लगानेके लिए जोडता रहू। अपनी कमाईके चार भाग कर लिये। उसने परिग्रहका नाम ठीक हो गया। इस तरहसे वह अपनी गुजर करता गया। एक दिन लकडहारा जगलसे लकडी काटकर एक सेठकी हवेलीके नीचेसे निकला। सेठका नौकर रसोइया निकला बोला— 'लकडी बेचोगे ?' हाँ, हां बेचूगा। कितने मे बेचोगे ? ८ आनेमे। ४ आने लोगे ? नहीं। ६ आने लोगे ? 'नही। ७ आने लोगे ?

नहीं। लकड़हारा चल पड़ा। रसोइया थोडी देर बाद बोला—अच्छा, लौट आवो। लकड़हारा लौट आया। साढ़े सात आने देंगे। रसोइयाने फिर वही कहा। तब लकड़हारा बोला—तू किस बेईमानका नौकर है? ऊपरसे सेठ सुन रहा था। सेठने बुलाया, बैठाया और बोला कि हमें क्यों बेईमान बना रहे हो? कहा महाराज, नौकर भी जिस संगमें रहता है वैसा ही सीख लेता है। नौकर पहले तो बुलाकर कहता है कि मजूर है, फिर बादमें कहता है कि साढ़े सात आने लोगे। सेठजी तुम तो रोज शास्त्रमें बैठते हो, हम तुम्हें देखते हैं। हम तो केवल पहिले ही दिन शास्त्रमें बैठे तबसे ही मैंने पाँचों पापोंका त्याग कर लिया। अब मैं हरी लकड़ी नहीं काटता, चुंगी वालेसे पैसे नहीं चुराता, झूठ नहीं बोलता, हम ब्रह्मचर्यका पालन भी करते हैं। अपनी कमाईका एक चौथाई धर्मके कामोंमें, दो चौथाई गुजारेमें लगाता हूं और एक चौथाई विपत्तियोंके लिए, संकटोंके लिए और घरके काम काजोंके लिए बचाता हूं। सेठ बोला कि अरे लकड़हारे पुण्यवान तो तू ही है। सेठने उसका आदर सत्कार किया। प्रयोजन यह है कि दुर्गति तो पापोंको लिए जिंदा रहने वालेको है। जो पापोंको बनाता है, वह आदरणीय नहीं बन पाता है और जो पापोंसे दूर रहता है वह आदर सत्कार प्राप्त करता है, सुखी रहता है। सुखी होनेका उपाय है पापोंका दूर करना है।

पाप पाँच हैं—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ। इन पापोंके जो वशीभूत है वह शांति नहीं प्राप्त कर सकता है। तो यह दीनता कैसे नष्ट हो? जब अपना महत्त्व याद हो कि मैं तो ऐसा प्रभु हूं तो दीनता नष्ट है। दीनता तब आती है तो जब अपनेको तुच्छ समझता है। दूसरोंमें ही मेरी जिंदगी है, दूसरोंसे ही मुझे सुख है—इस तरहके मिथ्या परिणाम रहते हैं तभी दीनता रहती है और यदि ऐसे परिणाम हों कि मैं आत्मा शुद्ध, चैतन्य स्वरूप हूं ज्ञानानन्द भाव मात्र हूं, विलक्षण हूं, सर्वोत्कृष्ट हूं, मैं ऐसा अपनी आत्माको देखूं तो मैं सुखी हूं, परिपूर्ण हूं, मेरेमें हीनता नहीं है। हीनताका मेरेमें काम ही नहीं है, यह तो ज्ञानमात्र भाव है। इसमें तुच्छता कहाँ बसी है? इस प्रकारसे अपनेको नहीं देखता है और बाहरमें ही मोह लगाए रहता है तभी दीनता आ जाती है। इस दीनताके मिटानेका उपाय है अपने स्वरूपकी दृष्टि करना। जितना भी मुझे सुख मिलता है वह मेरे ज्ञानके विकाससे मिलता है।

एक मनुष्य भोजन करके अपने आपमें सुखका अनुभव करता है तो एक योगी उपवास करके, निराहार हो करके, अपने प्रभुके दर्शन करके सुख प्राप्त करता है। तब कैसे कहा जाय कि सुखका कारण भोजन ही है। जो भोजन करके सुखी होता है वह अपने ही ज्ञानसे सुखी होता है। यदि कोई बहुत बढ़िया बढ़िया भोजन भी कराते हैं और दो चार चोचले भी करते हैं याने बढ़िया भोजन प्रेमसे खूब कराते हैं और खुद भोजन करते जाते

हैं और कहते है कि खा लो ऐसा अच्छा भोजन तुमने कभी किया नहीं होगा । तुम्हारे बाप ने भी कभी ऐसा भोजन नही खाया होगा । इस प्रकारसे वह विषसा बोल उगलते हैं । तो खाने वाला कितना दुःख महसूस करेगा ? अरे बाह्य वस्तुमें तुमने सुख माना है तो सुख ही उसमें निकलना चाहिए । तो मतलब यह है कि जो भोजन किया जा रहा हो उस भोजनमें सुख नहीं मिलता है, केवल कल्पनाएँ बना लेनेमें ही सुख मिलता है । सबत्र ही जीवको ज्ञानसे सुख मिलता है, परवस्तुवोंसे सुख नही मिलता है । जो सुख महसूस करते है वह कल्पनाएँ करके ही महसूस करते हैं । जब भ्रम हो गया कि यह सुख इस वस्तुमें हमें मिल रहा है, वाह कितना बढिया है तो सुख हो गया । इसी प्रकारसे यदि भ्रम हो जाए तो परकी ओर झुकाव होगा ही और उससे क्लेश होगा । यह वस्तु तो कितनी अच्छी थी ? इस कल्पना के ही कारण उस इष्टके नष्ट होनेपर क्लेश होता है । सुख और दुःख ज्ञानके ऊपर ही निभर है । यदि अपनेमें ज्ञान है तो वहाँ दुःखोका नाम नही है और यदि ज्ञान नही है तो आजीवन क्लेश है । कल्पनाएँ बना लेनेमें दुःख सुख हो जाते हैं । अभी कोई क्लेश है तो अगर सही ज्ञान बना लें कि मैं तो ज्ञानानन्दघनमात्र हू, मै तो सुखी हूँ तो क्लेश दूर जावेंगे । एक मनुष्यको कोई अच्छा कांच मिल जाय, उसे यदि कल्पना हो जाय कि यह हीरा होगा । अरे यह तो २०–२५ हजारका कमसे कम होगा । बस समझो उसको ठसक आ जाती । अगूठीमे भीतरमे कोई कांच लगा है, उसमे चमक होनेसे यह भ्रम हो जाय कि यह हीरा है, कमसे कम १० हजारका होगा । इतनेसे ही वह प्रसन्न हो जायगा, सुखी हो जायगा । और यदि हीरा भी हो और जरा देरमे ही यह समझमे आ जावे कि अरे यह तो कांच है तो उसका चित्त बुझा रहता है । बाह्य पदार्थोंसे कोई सुख नही हैं, पर भ्रम ऐसा बन गया है कि बाह्य पदार्थों से ही सुख है—यही समझकर वह परिश्रम करता है और उनका सग्रह करता है । जैसे कुत्ते को सूखी हड्डी मिल जाय तो उसको मुहमे रखकर अकेलमे चलता है । उसके चबानेसे दांत मसूढे फट जाते हैं, खून भी आ जाता है । अपने खूनका आनन्द आता है, पर भ्रम हो गया -उसको कि हड्डी चबानेमे आनन्द आता, हड्डीसे स्वाद मिल रहा है । यदि कोई दूसरा कुत्ता उसको छिनानेके लिए दौड़ता है तो वह गुर्राता है । उसके मसूढे कटनेसे खून आ गया, उसे भ्रम हो गया कि यह हड्डीका खून है इसलिए उसे आनन्द मिला । यह दृष्टान्त है ।

इसी तरह जगतके जीव अपने स्वय ज्ञानसे, अपने ही आनन्दसे सुखी होते है । किन्तु उस समय जिन बाह्य पदार्थोंको उपयोगमे लिये हुए हैं उनसे सुखका भ्रम हो गया, सो कोई परवस्तुवोंको पकडता और सग्रह करता है और उनके ही पीछे झझट चलता है । सही पता हो जाय कि मैं स्वय ज्ञानानन्दपुञ्ज, अविनाशी तत्त्व हूं । यदि यह पता पडे तो इसके दीनता न रहे । यह दीन हो जाता है किसी भी वस्तुको देखकर । पचेन्द्रियके विषयोको देखकर-य०

दीन हो जाता है, ऐसा दीन हो जाना ही उसके दु खका कारण है ।

हे आत्मन् ! अपने आपको निरखो कि मै भगवान सदृश ज्ञानमात्र हू । इसमे दु खो का काम ही नही है । इसके मारे प्रदेशोमे लबालब सुख ही सुख भरा हुआ है, आनन्द ही आनन्द भरा हुआ है, आनन्दकी मेरेमे कमी नही है । मेरा ज्ञान मेरसे बाहर नही है और न आनन्द ही मेरसे बाहर है । मै स्वय ज्ञानानन्दघन हू, यह लक्ष्य हो जाय, ऐसा भीतरसे परिचय मिल जाय, दृढ प्रतीति हो जाय, ऐसी यह उपयोग बनानेके लिए तैयार हो जाय तो उसको क्लेश नही मिल सकते है भैया ! परसम्बधमे हानि ही हानि है । अकेला है तो बडा सुख है और यदि दुकेला हो गया, विवाह हो गया तो क्या मिला कि चौपाया हो गया । दो पैर खुद के, दो पैर स्त्रीके । चौपाया जानवर कहलाते है । दो हाथ पैर वाला मनुष्य था, चौपाया हो गया । बच्चा हो गया तो छैपाया हो गया । भवरा हो गया । बच्चेका विवाह भी हो गया तो अष्टपाया हो गया अर्थात् मकडी बन गया । मकडीका जाल होता है । उसने अपनेमे जाल बनाया और फस गयी । ५० ६० ७०-८० वर्ष तक उनकी ही धुनमे लगा रहा है, चाहे कितने ही सकट आवें ? घरमे बसने वाले लोगोको मान लिया कि ये मेर है । अरे ये दुनियाके लोग क्या हैं ? ये सब अपने लिए मोहमे विपदाएँ हैं । ऐसा भाव अपने मनमे बने कि मैं भगवान तुल्य, ज्ञानानन्दघन पवित्र आत्मा सबसे न्यारा हूँ । परन्तु ज्ञान तो यह आता है कि यह मेरा लडका है, यह मेरा घर है और बाकी तो सब गैर है । वे चाहे मर जावें, चाहे जो हो जावे, उनसे मेरा सम्बध नही । पर अपने घरके जो २-४ मनुष्य हैं उनको पकडे हुए है । अरे इन २-४ मनुष्योका मोह छोडो, य सब तेरे कुछ नही है । इनके मोहसे ही तुझे ससारमे रुलना पडेगा । मगर उन्हीके बारेमे भक्ति है, भावना है और ज्ञान है । दस लक्षणमे दान करें, व्रत करें, पर मोह न करें, ऐसी बातका उत्साह तक भी नही होता । भैया ! सब कुछ करो, पर मोह न करो । जगतके समस्त क्लेश पापोसे आते है । तो मैं इन पापोको अपनेसे दूर करके आपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ ।

यह आत्मा ज्ञानज्योतिस्वरूप है । उस स्वरूपको देखकर जगतके सभी पदार्थोंपर दृष्टि डालते हुए जब निणय करते हो तो विदित होगा कि यह आत्मा सबमे महान है, इसे समयसार कहा जाता है । समयका अथ है—"स एकत्वेन अयते स्वगुणपर्यायान् गच्छति इति समय" जो अपने गुणपर्यायमे तन्मयतासे हो, रहे उसे समय कहते है । सभी पदाथ समय है, वे अपने ही गुणपर्यायमे तन्मय है । तन्मय होना तो स्वभाव ही ह । इस कारण सब पदार्थ समय कहलाते है । उनमे सार क्या है, यह आत्मपदार्थ ऐसा अनुभव करना कि जगतमे सब कुछ होता है, धर्म है, अधम है, पुद्गल है, काल है, आकाश है, पर एक जीव नही है, एक चैतन्य पदाथ नही है तो क्या हो ? व्यवस्थाएँ कुछ भी न होगी, कुछ चहल पहल न हो

इन सबको जानने वाला यह जीव पदार्थ, जीव तत्त्व ही व्यवस्थापक है, सबको जानना देखने का ही इसका स्वभाव है। कितना भी दूर हो कुछ, सत् हो, इस आत्मामें यह शक्ति है कि उन सबको जान लेगा। सामने हो या पीठ पीछे हो। लेकिन ज्ञान सबका रहेगा। कोई पदार्थ कहीं भी रहो। आमना सामना तो क्या है? ज्ञान तो अमूर्त तत्त्व है। इसमें स्वभाव से ही ऐसी कला है कि जो कुछ भी हो इसके जाननेमें आ जाय। जाननेका जिसका स्वभाव है वह मैं आत्मा हूं। उस आत्माका महत्त्व क्या होता है? इस आत्माके महत्त्वको बतानेका कोई दावा करे तो वह विद्वानोंमें हँसीका पात्र है। जगतके जितने भी जीव हैं सब भगवान-स्वरूप है। राम, विष्णु ब्रह्मा, हरि और बड़े बड़े राजा महाराजा जो महापुरुष हुए हैं जितने भी हैं वे सब क्या है? वे आत्मज्योति ही तो है वह आत्मास्वरूप ही तो है। निगोदसे लेकर सिद्ध तक जो जितने विकास है वे सब एक इस आत्मामें ही तो है।

यह आत्मा वह है जिसमें अनन्त गुण हैं। या तो कहेंगे ४—६ आवेंगे, पर गुण अनन्त है—ज्ञान, दर्शन श्रद्धा चारित्र, आनन्द, शक्ति आदि अनेक गुण हैं। उन गुणोंमें से केवल एक गुणको लें तो इसमें अनन्त पर्याय हैं। उन पर्यायोंमें से एक पर्यायको लें तो एक पर्यायमें अनेक अविभागप्रतिच्छेद हैं। प्रत्येक अविभागप्रतिच्छेदमें अनन्त रस है। ऐसे अनन्त रस का पिंड यह मैं महान् आत्मा हूं। परन्तु जो अब इस आत्माकी दशा हो रही है वह इन्द्रिया के विषयोंके वशीभूत होकर हो रही है। इन्द्रियोंने इस आत्माका लेन देन कुछ नहीं है फिर भी इस जीवने स्वयं भ्रम करके, अज्ञान करके अपनेको ऐसा बना रक्खा है कि न इसकी इन्द्रियोंमें शांति है, न विषयोंमें शांति है। शांति तो परमात्मतत्त्वमें होती है। अगर हम मान लें कि हमें शांति नहीं है तो हम समझ जायगी कि इन्द्रियोंके विषयोंने ठग लिया है। देखो तिर्यंचोंमें हिरन है, हाथी है मछली है, भंवरा है, ये जीव एक एक विषयमें तन्मय होकर मरणको प्राप्त हो जाते हैं। पर इस मनुष्यकी दशा तो देखो—यह तो सबविषयोंके आधीन है। जो समागम पाया, उसका भी उपयोग विषयोंमें लिया किया। इस मोही प्राणीने कभी धर्मका सेवन भी किया तो भोगके निमित्तसे किया, परिवार सुखसे रहे, मुकदमोंमें विजय हो, पैसा मिलने इत्यादिकी भावनाएं धर्मसेवनमें हो जाती है। धर्मपालन किया तो भोगके खातिर किया। राग, अज्ञान, मोहमें आकर धर्मका पालन तो किया, मगर वह भोगका निमित्त ही रहा। आत्माके लिए धर्मका पालन नहीं किया। आत्मामें याने ज्ञायकस्वभावमें ज्ञानदृष्टि रहना ही इस आत्माका स्वभावका काम है। इसका नाम धर्म प्रतिभासमात्र है। जो सत् है, वह ज्ञानमें गया बस इतना आत्माका काम है। इसके आगे आत्माका काम नहीं है। आत्मामें देखो तो समस्त प्रदेशोंमें ज्ञान और आनन्दरस ही भरा है, पर उसमें रुचि नहीं है मोहीको। मोही जीवका उपयोग बाहरी ओर ... शांति न मिले।

सकी। अपने आपको देखो, सब पदार्थोंको त्यागकर ऐसी बुद्धि बन जाय कि यह तो मात्र मैं चैतन्यस्वरूप ही हू तो इस आत्माको शांति प्राप्त हो सकती है। यदि इस बुद्धिमे विलग हुए तो शातिका कुछ पता है क्या ? विषयोमे पडकर भोग लिया, मरणके समय क्लेश और विकल्प हुए। यो विषयभोगका ही मार्ग लिया, यह तो शातिका मार्ग नही। शातिका मार्ग तो गुप्त है। शांति अपने ही अदर अपने आप अपनेमे ही प्रकट होती है। ऐसा यह महान आत्मा इन्द्रियोंके विषयोके कारण ठगा गया, वंचित रहा। यह इन्द्रियाँ तो सुन्दर लगती हैं पर आनन्द की जगहपर क्लेश भोगना पडता है। और की बात छोडकर अपनेमे शीघ्र आवो। क्योकि बडी अवस्था हो जाने पर फिर पछतावा होता है।

अहो, अपना इतना समय बाद कर दिया। दुःखोमे, चिंताओमे समय गुजर गया। जो समय गुजरा वह समय वापस नही आता। उम्र १० वर्षकी हो गई लौकिक ज्ञानकी वृद्धि हुई, बाह्य सिलसिले चलने लगे। युवावस्था आ गई। युवावस्थामे भी ज्ञान नही किया वह भी दुःखोमे ही बीत गई। अब वृद्धावस्था आ गई तो पछतावा करते है। अरे अब तो सही परिणाम बनाओ, अभी काम बन जायगा। रागमे, मोहमे, विषयोमे आत्माको शांति नही प्राप्त हो सकती है। जगतके कौनसे जीव तुम्हारे है जो राग करते हो। केवल मायामय मूर्तिको ही तो देखते हो कि आत्माको भी देखते हो। अच्छा तुम राग किसमे करते हो ? क्या शरीरमे इस अशुचि पिण्डसे। इससे तो करते नही, तब क्या आत्मासे करते हो ? आत्मा तो अमूर्त चैतन्यमात्र है। जैसा एक चेतन है तसे सब चेतन है। अत आत्मस्वरूपके जाननेपर व्यक्तिभेद तक भी नही रहता, फिर राग ही क्या करोगे ? यहाँ तो मायामय मूर्ति ही तो देखते हो। वह कुछ प्रीतिकी चीज है क्या ? आत्मासे प्रीति करना है तो आत्माके स्वरूपको देख। यह आत्मा एक ज्ञान भावमात्र है। ज्ञानमात्र आकाशकी तरह अमूर्त, किन्तु एक ज्ञान गुणको लिए हुए है। एक विलक्षण पदार्थ है वह तो वह है और ऐसे ही सब हैं। स्वभाव और आत्मामे भेद ही नजर नही आता। मुझ ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको देखता ही कौन है ? और देखनेमे राग नही आ सकता है। वह ज्ञातादृष्टा ही रह सकता है। उस आत्मासे कौन प्रीति करता है ? ये जितने भी बाह्य पदार्थ है वे सब बिल्कुल असार है। इनमे हितका नाम ही नहीं है। यदि परपदार्थोंसे अपना हित मानते हैं तो समझो कि हम भ्रममे पडकर उल्टे उल्टे मार्गपर चल रहे, अरे इन विषयोंके मार्गको छोडो और अपने स्वरूपमार्गमे आवो। जिसमे उस सहजस्वरूप ज्ञानानन्दमय आत्मतत्त्वके दर्शन होंगे। वह तो प्रभुमा पवित्र है। जैसा प्रभुका आनन्द है वसा ही आनन्द उसका है। मैं अपने स्वरूपको देखू। बाकी सब व्यर्थ है। जगतका कौनसा ऐसा तत्त्व है जो हितकर हो, फिर कौनसी बातमे अहकार है ? आज दस लक्षणोंका दूसरा दिन है और मार्दव धर्म है, जिसका अर्थ हुआ कोमलता, नम्रता।

ऐसी विनम्रता हो जो शुद्ध शुद्धमें समा गई हो, शुद्ध शुद्धमें ही विलीन हो गई हो। ऐसे आत्मानुभवका रस पी लो। यही शुद्ध आत्महितका मार्ग है। जगतके अन्य पदार्थोंको तू न मान। कौनसे पदार्थ मेरे हैं ? कोई नही। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें ही सत् है और फिर विनाशीक है, नष्ट हो जाने वाला भी है। कौनसी ऐसी वस्तु है जो सदा रहती हो ?

भगवान स्वामी समन्तभद्रने कहा है—स्वास्थ्य यदात्यन्तिकमेष पुंसां स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा। तृषोनुषंगान्न च तापशान्तिरितीदमाख्यद्भगवान् सुपार्श्व ॥

कहते है कि जीवका आत्यन्तिक स्वास्थ्य क्या है अथवा उसका वास्तविक स्वार्थ क्या है, आत्मप्रयोजन क्या है ? सदाके लिए स्वस्थ हो जाना यही जीवका परम स्वार्थ है, परमहित है। स्वास्थ्य कहते किसे हैं ? स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थः, स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यम् अपने आपमें ठहर रहनेकी बातको कहते है स्वास्थ्य। सदाके लिए अपने आपमें रम जावो, ठहर जावो। ऐसा जो स्वास्थ्य है वह उत्कृष्ट स्वार्थ है। यह भोगविलास स्वहित नही, यह तो क्षणिक है। भोगकी प्रीतिमें चेतन मैं खोया हुआ हूं। देखो माही जन जो कर रहे हैं वह सब कल्पनाके समय सस्ते लगते हैं पर ये भोग विषय बडे महंगे पड़ेंगे। हाथ पैर मिलते है, मन मिलता है बहुतोंमें हुकूमत चलाई जा सकती है, बहुतोंसे बात बनाई जा सकती है। इस प्रकारके विचारों वाले प्राणीका स्वरूप या सर्वस्व खोया हुआ रहता है। वह नरक वाली योनियोंमें भ्रमण करता रहता है, जन्ममरणके चक्रमें पड़कर वह कीड़ा मकौड़ा हो जायगा। और उसे सदा दुःख ही दुःख होगा।

देखो तो गजबकी बात हमारी यह विविध सृष्टि इतने जीवोंके रूपमें कैसे बन गई ? यह सब प्रकृतिकी उपाधिमें चेतन प्रभुकी अवस्था है। परमार्थसे तो मैं एक शुद्ध आत्मतत्त्व हूं। यदि बाह्य पदार्थोंमें दृष्टि लगी है तो पतन है और यदि स्वमें दृष्टि लगी तो उत्थान है। जो शुद्ध आत्मतत्त्व है, वीतराग सर्वज्ञ निर्दोष भगवान आत्मा अरहन्त एवं सिद्ध है और ऐसे शुद्ध बननेके प्रयत्नमें जो लगा रहता है वह साधु है। ऐसा ज्ञानमय, चरित्रमात्र मैं सत् हूं। अपने आपमें तन्मय हुआ ज्ञान आनन्द आदि अनादि शक्तियाँ मात्र जो अनंत विलासको लिए रहता है, जो अनेक प्रकारके पर्यायोंको धारण करता है फिर भी वहीका वही है, वह चैतन्य प्रभु मैं हूं। इसका ही पूर्णविकास अरहंत व सिद्ध भगवान है। ऐसे शुद्ध भगवानकी उपासना करें तो यह हमारे उत्थानकी बात है। मैंने माना कि शुद्धके आश्रयसे शुद्ध होता हूं व अशुद्धके आश्रयसे अशुद्ध होता हूं। वर्तमानमें तो मैं शुद्ध नहीं, भगवान पर हैं तो किसके लक्ष्यसे मैं शुद्ध बनूं ? स्वरूपको लक्ष्यमें लूं तो मैं शुद्ध हो सकता हूं। मैं शुद्धका लक्ष्य कर से आत्मा शुद्ध हो गई और अशुद्धका लक्ष्य करनेसे आत्मा अशुद्ध हो गई। अब क्या पसंद न करोगे कि अशुद्ध आत्माने तो आत्मा अशुद्ध हो। अब देखो शुद्ध आत्मा क्या है ? रागी द्वेषी

है, जो विषयकषायोंमें भरा हुआ है, जो घूम रहा है ऐसी आत्माको अशुद्ध कहेंगे। उसके लक्ष्य मे शुद्ध नहीं होगा तथा भगवान पर आत्मा है परका लक्ष्य परमार्थसे होता नहीं। उनकी भक्तिसे उनके ध्यानसे उनके आश्रयमे आत्मा शुद्ध नहीं हो सकती है। परमार्थसे देखो तो इस आत्माके लिए यह आत्मा शुद्ध द्रव्य कहलाता है। कहते हैं कि मैं प्रत्यक्षसे यारा अपने आपमे तन्मय हू। आत्माके अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंपर मेरा अधिकार नहीं है। मैं ही वह हू, मैं ही उपास्य हू, मैं ही परमात्म तत्त्व हू, इस प्रकारका तू मनमे विचार कर। तू उन बाह्यपदार्थोंका ध्यान न कर। तू उनको ज्ञानका विषय न बनाकर अपने ही ज्ञानका परिणमन कर अर्थात् अपने ही भावोंका ध्यान बनाकर तू परमात्मोपयोगी बन। परद्रव्योंमे ध्यान देकर कोई परमात्मा नहीं बन सकता है सो एक तो यह बात, दूसरी बात यह है कि वह अपने शुद्ध परिणमनको छोड़कर लटोरे घसीटोको हाथ पकड मोक्षमे ले जाय ऐसा हो नहीं सकता। अपने आपको ही देखो कि मैं आत्मा शुद्ध हू, सबसे निराला हू। अपने शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टिमे तू पार होगा तो परमे दृष्टि लगाकर माया, मोह आदिसे पिसा जा रहा है तो ऐसा करनेसे क्या हम शुद्ध बन जाएँगे ? नहीं। हम आत्माकी श्रद्धा करके शुद्ध हो सकेंगे। और अगर इस आत्माकी श्रद्धा न कर सके तो शुद्ध न हो सकेंगे। तब फिर शुद्ध होनेका उपाय क्या है ? अरे इस आत्माका जो शुद्ध सहजस्वरूप है, शुद्धस्वभाव है, वह स्वत सिद्ध आत्मतत्त्व है। मै शुद्ध आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करनेसे शुद्ध हो सकता हू। हमारे इस कूडे कचडे शरीरके भीतर जो चैतन्यस्वरूप है, जो ज्ञानमे आ रहा है उस निज शुद्ध आमतत्त्वको लक्ष्यमें लें तो यह गदगी, कूडा करकट नष्ट हो जाता है।

हम अपनी आत्मा तथा ज्ञानदृष्टिके बहुत भीतर चलकर शुद्ध तत्त्वको जान सकते है। वह कोई एक पिण्ड जैसी चीज नहीं बल्कि ज्ञानको लिए हुए है। ऐसा यदि अपना ध्यान नहीं करेगा तो इस जगतमें तेरा कोई शरण नहीं है। बाहरमे जो शरण माना है वह तेरा कोई नहीं है। वे सब स्वार्थी हैं। वे सब अपने अपने विषयोमे लगे है। वे सब अपने ही प्रयोजनमें लगे है। वे मुझसे बात ही नहीं करते है, वे मेरा कुछ नहीं करते हैं तो हम किस की शरणमें जावें ? अरे वह तेरे लिए सकट है, उनसे तुझे शरण नहीं मिलेगी तेरी शरण तेरी प्रभु आत्मामे ही मिलेगी। मैं अन्तर्दृष्टि करके देखू तो वह ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानस्वभाव है, शरण तो सही मे वह हमारा प्रभु है, भगवान है, परमात्मा है। वही हमारा रक्षक है। तूने परको निज समझ लिया तो वे तेरे नहीं हो गए। वे तेरे हो ही नहीं सकते हैं। अन्य मे दृष्टि करने से हम बहुत गलत रास्तेमे बह चले जा रहे है। तो लौटना भी हमे उतना ही पडेगा। जैसे यदि हमे कलकत्ता जाना है और हम पश्चिममें चले जावें तो हमे वहांसे लौटना ही पडेगा। इसी प्रकार यदि हमारी दृष्टि अन्यमे बढती चली जाती है तो हमे उतना ही उन

सबसे निवृत्त होकर निजस्वरूप की ओर दृष्टिको लाना पडेगा। यदि हम बाहरी तत्त्वोंको उपयोगमे लाने लगे, अपने परिवार तथा मित्रजनोंको सवस्व मानें तो मुझे मेरा प्रभु नही मिल सकेगा। यदि हम विषयभोगमे आसक्ति न करें, अन्य तत्त्वोंको अपने उपयोगमे न लें, कुटुम्ब, परिवार तथा मित्रजनोंको अपना सवस्व न समझें तब तो हमारा प्रभु हमे मिलेगा। जसे कोई मुसाफिर भूलकर ५०० मील आगे चला गया हो तो उसे उतना ही तो लौटना पडेगा सही मार्गपर आनेके लिये, इसी प्रकार इस जीवको जो अपने आपको भूलकर परम दृष्टि लगाए हुए है उसे भी सब परसे निवृत्त होकर अपने निजस्वरूपको पहिचानना होगा।

देखो—अपने धन, वैभव, कुटुम्ब परिवारसे सबको प्रीति है पर अपने ज्ञानस्वरूपमे प्रीति नही है। ज्ञानस्वरूपमे प्रीति करलें तो कही रुकावट नही है। तू अपने ज्ञानस्वरूपसे प्रीति कर। एक दुकान मालिक यहाँ बैठा है। कल्पना कर लें कि मैं अपनी दुकानमे गया, दुकानकी तिजोरी खोली। तिजोरीमे सन्दूक है, सन्दूकमे डिब्बा है और उस डिब्बेमे कपडेमे बधा हुआ हीरा रक्खा है, उसमे अगूठी रक्खी है तो वहाँ तक ज्ञानके पहुचनेमे कमरा कोई बाधा नहीं डालता है, तिजोरी वगैरा कोई भी बाधा नही डालते। अरे तू अपने ज्ञानकी रुकावट न कर। ज्ञानकी रुकावट तो विषयकषायसे होती है, ज्ञानके आ जानेसे बाधाएँ नहीं पनपती हैं। भाई इन विषयोंमे पड करके ज्ञानको खोये हुए हो। इन विषयोमे पडनेमे तेरा कोई रक्षक नही। तेरी रक्षा करने वाला, रुकावट करने वाला तू ही है, तेरमे ज्ञान है। जरा अपने अन्तरमे दृष्टि तो दो। यथार्थ विकासके बिना तेरेको बडा कौन कर सकता है? इन विषयोमे यह दम नही कि तुझे बडा बना दें। हे आत्मन्! तेरी रुकावट करने वाला तू ही है तेरी ही सैन पाकर कम व विषय प्रबल होते हैं। जैसे मालिकके साथ कुत्ता हो। यद्यपि कुत्तेमें कुछ दम नही, परन्तु मालिकके छू छू करनेसे ही कुत्ता दूसरोंपर आक्रमण कर देता है, मालिकके उस छू छू से ही कुत्ता बलिष्ट बन जाता है। वह नही देखता है कि यह युवक पुरुष है, इससे न जीत सकूगा, पर वह आक्रमण कर देता है। इसी प्रकार आत्माके विषय कषायकी सैन पाकर ये इन्द्रियविषय दुखदाई हो जाते हैं। इस आत्माको जब निजकी पहिचान मिल जाती है तो यह बाहरकी इच्छा नही करता है और अपने निजस्वरूपकी उपासना करता है। इस निजस्वरूपके पहिचानमे ही आत्मा बलिष्ट हो जाता है। अत यदि हम निज स्वरूपमे दृष्टि दें तो सब सुखी हो सकते हैं। यदि मैं निजस्वरूपमें दृष्टि न दे सका, मेरा बाह्य पदार्थोंमे ही सयोग रहा तो जीवन भर ही दुखी रहना है, यही पहिलेसे सोच लो। अन्य किसीमे ऐसी सामर्थ्य नही जो हमें सुखी कर दे। परको जिसने अपना इष्ट माना है वे दुखी होते हैं। यदि वह विषयोमे आसक्त है तो उसे दुख होते हैं। यदि विषयोंमे आसक्त न रहे

तो विषयोमे कोई ताक्त नही जो उसे दुखी कर दें। सुखी होना तथा दुखी होना अपने ऊपर ही आधारित है। दूसरोंके सुखी करनेसे सुखी नही हो सकता और दूसरोके दुखी करनेसे दुखी नही हो सकता। मैं दूसरोके दुखी करनेसे दुखी होऊ तो इसका अर्थ है कि आत्मामे बल, बुद्धि नही है। ऐसी कल्पना करने वाली आत्माओको पराधीन आत्माए कहते हैं। हम बाह्यमे दृष्टि न करें तो हम पराधीन नही होंगे। मुझे पराधीन होनेसे ही दुख होता है अर्थात् अपनी दृष्टि बाह्यमे लगा दू तो मुझे दुख होता है। बाह्यमे मेरा कुछ नही है। मेरेको बाह्यसे कुछ मिलता भी नही है। पर मैंने मन बना लिया है कि पर मेरे सब कुछ हैं, उनसे हमे बहुत कुछ मिलता है। यही कारण है कि दुख होते हैं।

अरे बाह्य पदार्थोंमे तुझे गौरवके लायक कुछ मिलता है क्या? शरीर है तो वह भी असार, धन वैभव है वह भी असार है। वह किसीके लिए भी सार न हो सकेगा। तू तो अकेला है, ज्ञानानन्दमय है। ज्ञान और आनन्दके परिणमन कर रहा है, बाहर कुछ नही है। तू अपनेपर कृपादृष्टि रख तो तू आध्यात्मिक चक्रवर्ती बन जाय। तू बाह्यसे अपनी बुद्धि छोड दे। तू अपने बाह्य उपयोगो को छोड दे और अपने आन्तरिक उपयोगो मे आ। यदि तू अपने आन्तरिक उपयोगोमे आया तो सुख होंगे और यदि बाह्य मे तूने अपना उपयोग बनाया तो तुझे दुख होंगे और पागल बनना पडेगा। भाई देखो कितनी पवित्र यह आत्मा है? यह आत्मा निरतर विषयोंसे भी ठगाई गयी, फिर भी यह आत्मा अपने आपमे स्वभावमे ठगी नही गई। तू अपने शुद्ध आत्माका अनुभव तो कर तो तेरे समस्त क्लेश समाप्त हो जायेंगे। यदि तू अपने आत्माका अनुभव न कर सका तो तू ठगाया जायगा, तुझे क्लेश होंगे। तूने यह कल्पनाए बना रक्खी है कि विषयोंमे सुख है इस लिए तू उन विषयोमे ही अपना समय लगा रहा है। हाय विषयोमे तू पड रहा है। अरे विषय ही तेरे दुखोका कारण बना देते हैं। अगर मोह, राग माया करी तो यह भी एक विषय है इनसे भी तू पराधीन हो जायगा। तू पराधीन मत बन। दृष्टि ऐसी बन गई कि यह मेरा है, यह पराया है। इससे अहकार प्रतीत होता है। अरे मेरा कुछ नही है, मैं तो सबसे न्यारा हू। यदि यह उपयोग बन जाए कि मेरा प्रभु मैं ही हू, मैं जगतके सब पदार्थोंसे न्यारा हू। यदि ऐसा उपयोग बन जायगा तो तेरा उत्थान होगा और यदि ऐसा उपयोग न बन सका तो तेरा पतन होगा और ससारमे रुलना पडेगा। यथार्थ बात तो यह है कि सुख दुख अपनी समझपर ही निर्भर हैं। तू अपनी आत्मामे ही विश्राम कर। वही तुझे शरण मिलेगी। और यदि तूने अपनी आत्मामे विश्राम न किया तो ससारमे भटकना पडेगा, सहारा कोई नही देगा। यहाँ तक कि मरणके समय भी तुझे सहारा नही मिलेगा। तेरा शरीर भी तुझसे मिला नही रहेगा। परिवारके लोगोको खूब खिलाया पिलाया। अपने सब

सुख दुःख भूलकर परिवारके लोगोंकी सेवा भी करी, पर अंतमें कोई किसीका नहीं होता है। तेरा साथी तू ही है और कोई दूसरा नहीं। चक्रवर्तियोंके साथ भी कोई नहीं रहेगा। यह जो बाह्य पदार्थ हैं वे भी हमारे नहीं होंगे। यह जो संसारका नृत्य है वह आप निजके स्वरूपकी भूलसे ही होता है। अतः बाह्यदृष्टि छोड़कर अब अपने आत्मस्वरूपमें दृष्टि दू और अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

सिद्ध आत्मा, पूर्णदर्शन पूर्णज्ञान, पूर्ण सुख और पूर्ण शक्तियोंसे सम्पन्न है। यह मैं आत्मा एक देश, दर्शन, एकदेश ज्ञान, एकदेश सुख और एकदेश शक्तिसे युक्त हूं, किन्तु मैं वैसा ही पूर्ण वैसा ही सर्वज्ञ होने योग्य हूं। मेरी और प्रभुकी जाति एक है। हम और वे सिद्ध वस्तुमें एक हैं। मैं चैतन्यमात्र हूं। जैसा सर्वोत्कृष्ट ज्ञानानन्दघन प्रभु है वैसा मैं हूं। केवल जरासा आविर्भाव तिरोभावका अन्तर है। वह अन्तर कैसे किया? हमने अपने अपराधसे किया। निमित्त कुछ भी हो मगर अपराध हमी करते हैं और उसके ही करनेमें मुझमें हैरानी होती है। यह तो स्वभावसे ही असीम विकास वाला है। इसका अपराध मैं ही तो करता हूं, अन्य अपराधका कारण नहीं, किन्तु प्रभु पूर्ण है इसका कारण नहीं। जैसे कभी बच्चोंको मेढकका खिलौना दिया जाता है। मेढकका खिलौना टीनका बना हुआ है। उसमें पत्ती नीचे लगी रहती है और पासमें चिपड़ा लगा रहता है, जिससे वह चिपक जाता है। मेढकको पत्तीमें कभी चिपकाकर रख देते हैं तो वह छूटकर छिटक छिटककर उसी जगह पर उछलता है। उसके उछलनेके माने यह नहीं कि उसका कुछ यत्न किया जाता है, वह छूटना स्वभावसे ही उछलता है। उसमें कुछ करना नहीं पड़ता है। एक किवाड़ अपने आप लग जाते हैं। किवाड़ खोलनेमें तो यत्न करना पड़ता है, पर लगानेमें कुछ नहीं करना पड़ता है। छोड़ा और लग गए। जो जैसी स्थितिका स्वभावका है उसके लिए यत्न नहीं करना पड़ता है। उसके खिलाफ बात है तो यत्न करना पड़ता है, क्योंकि उसमें कारण है। हमारे ज्ञान कम है तो इसका कारण है और भगवानका ज्ञान सारे विश्वमें विकसित है उसका कोई कारण नहीं है। वह स्वभावसे ही विकसित है। वह बीचमें नहीं पैदा है। अभी अल्पसुख है, फिर दुःख होंगे, फिर सुख होंगे इसमें कारण चलता है, पर आत्मीय आनन्द है तो इसमें कोई कारण नहीं है। आत्माका स्वरूप ही है कि वह आनन्दमें रहा करे। भगवान पूर्ण ज्ञानमय हैं, पूर्ण दृष्टिमय हैं, पूर्ण आनन्दी हैं पूर्ण शक्तिमान् हैं। इस शुद्ध विकासके बने रहनेका कोई कारण नहीं है। क्यों कारण नहीं है? क्योंकि वह स्वभावतः ही अपने आप जैसा स्वरूप है वैसे वे हैं। सर्वत्र ही देख लो किसीका ज्ञान बड़ा है और किसी का छोटा है। इस ज्ञानकी हीनाधिकताके तो कारण है, पर किसीका ज्ञान पूर्णविकसित है तो उसमें कुछ बाह्य कारण नहीं है। जैसा स्वाभाविक ठंग है वह अपने आप है। उसमें कारण क्या है? यह मोटा दृष्टान्त दे रहा

हू। जलको अग्निपर या धूपमे रख दें तो उष्ण हो जायगा, उसका कुछ कारण है। आत्मा शात रहे इसका कोई बाह्य कारण नही है।

आत्मा सवज्ञ है, परमानन्दमय है तो इस आत्माकी क्या तारीफ है, क्या कमाल है? अरे उसका तो यह स्वभाव ही है। तारीफ तो उन ससारमे रहने वालोंकी है जो तिर्यंच बन जाते हैं, कीडे मकौडे बन जाते है। भगवान की हालतमे क्या कमाल है? वे तो स्वय ही शुद्ध हैं। कमाल तो इसमे है जो स्वभावत कैसे थे और पेड हो गए, पत्तियाँ लग गईं। वाह रे आत्मा कमाल तो तेरा है। भगवान तो एक पदाथ है शुद्ध है, अकेला रह रहा है। भगवानका जो अतिम शरीरके प्रमाणका आकार रहता है उसकी वजह यह है कि पहले जैसे शुरूमे थे, जब तक वह शरीरमे रह आए तब तक कर्मोंका उदय कारण था। जैसा कर्मोदय था तैसा उनको शरीर मिला, तैसा ही आत्माका प्रसार हुआ। अतिम समयमे जो मिला उस शरीरमे आत्मा थी। पहले तो यह हुआ था कि आत्मा फैलता है तो कमके कारणसे, आत्मा सिकुडता है तो कर्मके कारणसे। जैसे कर्मोंका उदय है उस ही प्रकारका आत्मामे सिकुडना और फैलना होता है। अब अतमे शरीर भी चला गया तो जब शरीर छूटा तो अब कोई प्रस्तावको रख देवे कि इस आत्मामे क्या होना चाहिए? जिस शरीरसे मोक्ष गए उस शरीरमे आत्माको फैलाकर बडा बनाना चाहिए या छोटा बनाना चाहिए? यदि बडा बनाना चाहते हो तो क्यो बडा बनाओगे और यदि छोटा बन जाय तो क्या बनाओगे? यह बडा और छोटा तो कर्मोदयके कारण हुआ करता है। जब नामकमसे मुक्त बन रह हैं तो न फलनेका कारण है और न छोटा बननेका कारण है। इसी तरह सिद्ध भगवान जिस शरीरको छोडकर मुक्त होते हैं वह जितने प्रमाणमे थे उतने प्रमाणमे उनके प्रदेश रह जाते है।

मैं एक शुद्ध निराला पदाथ हू। जसा स्वरूप भगवानका है तसा ही मेरा है। तो जैसा उनका स्वरूप है तसा ही मेरा है, अब वह रग नही बदलता है। देखो यह स्वरूपकी भक्ति है। यह प्रभुकी भक्तिमे ऐसा दीखता है कि यह प्रभु क्या है? हम जो हैं सोई रह रहे हैं। जैसा स्वरूप है तैसा सिद्धका विकास हो गया। अब प्रभुमे रगबाजी नही चल रही है। क्षणमे कुछ, क्षणमे कुछ, ये लीलाएँ ससारी प्राणी रचा करता है, पर मालूम पडता है कि ये प्रभु प्रभुताकी ऐसी विचित्र लीला करके थक गया है इसलिए प्रभुने लीलाएं बद कर दी हैं। यहाँ देखो वाहरे ससारी प्राणी! तेरा तो थकनेका काम ही नही है। तू तो अनेक कल्पनाएँ करना है समागम करता, सयोग वियोगके विकल्प तथा अनेक कमण्यतायें करता है। आजसे ५० वष बाद तू किस योनिमे रहा होगा? वहाँ क्या कोई कम कल्पनाए थी कि यह घर द्वार मेरा है, यह धन वैभव, कुटुम्ब परिवार मेरा है। और अब यहाँ क्या कल्पना करने लगा? जब मैं यहाँसे जाऊगा तो यह कल्पनाएँ रहेंगी क्या? कितना श्रम कर यह ससारी कार्य कर

रहा है। तू कितना कर्मठ बन रहा है—विकल्प निरंतर विकल्प, यह छोड़ा वह छोड़ा। अरे यह क्या है ? यह सब सांसारिक आपदाएं हैं। जैसे किसी बड़े संग्राममें बड़े सिपाही को चैन न हो, छिप छिपकर खेल खेलकर गोली चलाये, दौड़े भागे। इस प्रकारसे दुनियाके लोग श्रम कर रहे हैं। इसी तरहसे यह प्रभु इस संसारमें नाना खेल कर रहा है। आँख मिच गई कि आगे उसका कुछ पता नहीं। आगे गया और ढगका बन गया और आगे बढ़ा तो कल्प नाएं करके और ढगका हो गया। क्यों कल्पना करके दुःखी होना ? कोई भी इसका कुछ हो तो बतला दो। क्या है इसका ? मगर कल्पनाएं इतनी बड़ी बना लेता है। सो हे प्रभु ! आपने भी यह सब भारी काम किया। बड़ी कर्मठतासे ८४ लाख योनियोंमें चक्कर लगाए। अनेक लीलाएं खेली। अब मालूम होता है कि उन कलाओंसे तू थक गया है और थक करके ही अब तूने इन अपनी लीलाओंको छोड़ दिया है।

हे प्रभु तुम शुद्ध पदार्थ हो, शुद्ध आत्मा हो। अरे अशुद्धिको मेटा तो शुद्ध हो गये। अशुद्धि मेटा तो उसका परिणमन अच्छा हुआ है। क्या गजब हो गया, हां महान् जरूर हो, यहांपर क्या स्त्री, बाल बच्चे हो गए। अरे हो गए तो इनसे तुम्हें क्या मिला ? वे तो तुम्हारे हैं नहीं। उन्हें तो छोड़के ही जावोगे। उनके लिए ही सब कुछ किया, सारा परिश्रम उनके लिए ही किया। उनसे तुम्हें क्या मिला ? लाखों और करोड़ों रुपयोंका धन उनके लिए जोड़कर भर दिया। अरे वह कुछ साथमें तो जाता नहीं फिर क्यों इतना माया मोहके चक्रमें फंस रहे हो ? इस तरहसे यह प्राणी माया मोहमें रहकर ही थक जाता है, अपने आत्मस्वरूपको भूल जाता है और बरबाद हो जाता है। इन बाह्यपदार्थोंमें कहां सुख है ? सब बाह्यपदार्थोंको ही देख रहा है, परसे ही सुखकी बातें सोच रहा है। अरे यह बाह्य सब झंझट है। अपनी दृष्टिको ठीक ठीक अपने स्वरूपमें ही डालो तो झंझट तुम्हें नहीं मालूम पड़ेंगे। प्रभु पूज्य अवस्था तो यह तुम्हारी ही है। इस प्रभुने जैसा आनन्द किया है वैसा ही आनन्द इस मेरी प्रभु आत्मामें भरा है। बस अशुद्धि मेटने लगो, मिल जायगा। जैसे परके आगे पैर रखकर चलें तो हम मंजिलपर क्यों नहीं पहुचेंगे ? चलनेसे ही हम आगे पहुंचेंगे और बैठेसे हम बैठे ही रहेंगे। यदि तूने बैठनेका ख्याल किया तो बैठा ही रहेगा और यदि चलने का ख्याल किया तो आगे बढ़ जायगा। अपने भगवानके पास कैसे नहीं पहुचोगे ? अरे पर भी थक जावें तो सोचो कि अभी मेरे पास ही तो है। यदि थक भी जाओगे तो हिम्मत तो बनी रहेगी। इसी तरह अशुद्धको मिटा दो अभी यह काम बन जायगा। मोक्षमें पहुंचनेके लिए कोशिश करो, परमार्थ देखो, उसमें रुचि जायगी। जैसे कोई काम करता है हलुवा बनाना सीख रहा है तो उसमें उसकी रुचि होती है, उत्साह होता है। इसी तरह शुद्ध हो रहो, आनन्द हो रहा हो, दर्शन हो रहे हों, उस अपनेके निकट पहुंच रहा हो तो उसमें

उसकी रुचि बढेगी, उसका उत्साह बढेगा।

कोई घटना ऐसी आ जाय कि जिसमे हजार पाचसौ मिलत हो, मगर उसमे झूठ या अन्याय करनेकी नौबत हो। उस समय सच्चा निर्णय करनेके लिए दिल बना रहे। झूठ न बोले, सच्चाईमे उसका दिल बना रहे और यह देखो कि हजार पाच सौ जाते है तो जाने दो। उन हजार पाँच सौ जानेसे भी बडा आनन्द माना। और यह बात मानो कि मुझे बडी प्रसन्नता है। उसने अपनेसे अशुद्धिको मिटाया और जो शुद्ध है उससे ही प्रसन्न हुआ। तो भैया, सतोष की बात तो यही है। इसी प्रकारसे अशुद्धियाको बाहर करते करत वह मजिल निकट आ जायगी और ज्यो ज्यो अपनी मजिल निकट आती जायगी त्यो त्यो सतोष बढता जायगा तथा आनन्दका अनुभव होगा।

एक मुसाफिर था। वह पैदल यात्रा करते हुए जगलमे रास्ता भूल गया। शामका समय था, दो तीन मील जाकर भूल गया था और पगडडियोसे चल रहा था ? एक घटना हो जानेके बाद वह सोचता है कि यदि मैं और आगे बढता ही चला जाऊगा तो पता नही कितना भूल जाऊ, और फिर मुझे भूल निकालनेका मौका भी नही आय—एसा सोचकर वह रुक गया और वही रात व्यतीत करने का निश्चय कर लिया। पर चिंता लगी हुई है कि मैं कितना भूल गया ? अब मुझे कहासे जाना है, कहाँ रास्ता मिलेगा ? इसी भूलमे पडा पडा वह देखता है कि एक क्षणिक बिजली चमकी। उसने देख लिया कि सामने सडक है जिससे मुझे जाना होगा। अब वह निशक हो गया। एसा निशक होकर वह सोचता है कि मैं रास्ता भूल तो गया हू पर इतनी ही भूलमे पडा हू। यह भूल या ही मिट जाया करती है तो मिट जायगी। सबेरा हुआ तो सामने देखा कि थोडी दूरपर सडक है सडक पर लोग चल रहे है। वह भटक गया था, पर सतोष किए हुए था। इसी प्रकार यदि ज्ञानी विषयोमे भटककर अपने ज्ञानको भूल गया है तो कुछ भी विवेक हो तो वह इस भूलको न बढायगा, रुक जायगा। कभी उसका ज्ञान सच्चाई को लेकर आता है तो वह समझ जाता है कि यह आत्मदर्शनका मार्ग है जिसपर हमे चलना है। देखो भूलका मिटना व ज्ञानका होना दोनो एक साथ होते हैं। इसमे ज्ञानका तो उत्पाद है और अज्ञानका व्यय है। यह सब धर्मपालन एक इस आत्मापर ही निर्भर है। क्या आनन्द भी आयगा ? हा आनन्द भी इस आत्मामे आयगा। आनन्द तो आत्माका स्वभाव ही है। जब भूले हुए पथिकको ज्ञान होता है तभी यह उत्साह बढता है कि अब मैं अपनी भूलसे उऋण हो रहा हू, मैं अपने सही मार्गमे जा रहा हू। अब वह ऐसे उत्साहसे चलता है कि जो पगडडिया सडकसे मिला देंगी उन्ही पगडडियोंसे समझकर चलता है। अब सडकपर वह मुसाफिर पहुच जाता है तो उसे बडा सतोष होता है। अब तो करने योग्य जो काम था कर लिया, अब आनन्दमे बहता चला जा

रहा था। जहाँ जाना था। उस स्थान पहुच जाता है। पहुचकर वह विश्राम करता है। अब बिल्कुल निश्चित हो गया। इसी तरह जगतका प्राणी अज्ञानके अधेरेमे विषयकषायोकी गलियोमे भटक गया, वह अपने को भूल गया है। इस भूलमे बढनेमे बढकर भूल हो जाती है तो वह सोचता है कि इस भूलमे बढे मत, नही तो जितनी भूल बढ जायगी उतना ही वापिस होनेमे कठिनाई पडेगी। विषयकषायोमे मत फसो। तुम निर्णय कर शातिका मार्ग ढूढो। बस इसीमे प्रेम करना भक्ति होना है। यदि तूने विषयकषायोसे अपने को दूर रक्खा और शातिके मार्गका पता लगाया तो तुझे सतोष आयेगा, भक्ति आयगी। तो इन साधनोंके बीच रहते हुए कभी अतरमे बिजली चमकती है तो निर्मल अवस्थाका अवलोकन होता है और केवल ज्ञानमात्र स्वरूपका निर्णय करता है। शातिका मार्ग यही है। इसी तरहके मार्गसे जो आप चलना चाहे तो मोह और विषयोमे जो लग रहे हो उसको भूलकर सही मार्गका पता लगाओ। जब उस सही मार्गका पता लगा लोगे तब तुम्हे शाति प्राप्त होगी सतोष प्राप्त होगा। जब तू अपनी भूलोमे पड जाता है, विषयोंमे पड जाता है तो सतोष नही प्राप्त होता है। यदि अपनेको भुलावेमे डाल लिया तो शातिका असर उसके दिलमे नही होगा। यदि वह ज्ञानमे अच्छे मार्गमे आ जाता है तो वह सतोष प्राप्त करता है, क्योकि उसे भूलका पता लग गया।

यह स्वभावमात्र वस्तु हू, अन्य पदार्थ अपने अपने सत्तामात्र है। इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नही है। यह कल्पना बना लेनेसे कि यह परपदार्थ मेरे है उसकी शाति खतम हो जाती है, मोक्षमार्गसे हटता रहता है और ससारके जन्म मरणके चक्रमे फसा रहता है। उस मोही प्राणीकी यही स्थिति बनी रहती है। परन्तु यह मेरे नही है, ऐसी कल्पना जो बना लेता है उसे सतोष प्राप्त होता है और उसे जन्ममरणके चक्रसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पानीमे कमलका पत्ता पडा हुआ है, पानीसे वह पत्ता बिल्कुल भिन्न है, पानीका पत्ते पर कुछ असर नही, पत्ता गला है या सडा। उसमे तो पानी घुसता ही नही है। पत्ता तो सूखा ही सूखा होता है। निकालकर देख लो पत्ता सूखा ही निकलेगा। यह गृहस्थी प्राणी भी घरमे रहते हुए भी सुखी रहता है। कोई उसका पता लगाने वाला नही है। घरमे रहते हुए भी घर वालोका उसपर असर नही है। वह सदा सुखी रहता है। जो बाह्य पदार्थोंसे सतोष प्राप्त करता है वह इस भूले जगतसे हट जाय और अपने निज स्वरूपसे ही सतोष प्राप्त करे। जो प्राणी इस जगतके मोहमे पडकर भूल गए है वे यदि अपने निजस्वरूपको देखकर सतोष प्राप्त करें तो वे आनन्दमग्न हो जावें। जिस प्राणीको आत्म सतोष प्राप्त करना है, आनन्द मग्न हो जाना है उसे सारे आरभ परिग्रह त्याग न होगा। और उसे कुछ काम करना नही है। यदि यह महान पुरुषार्थ किया, सन्यास लिया और अपने आपसे प्रेम किया तो

जगतमे ग्रानन्दमग्न हो जाता है। अशुद्धिको दूर किया और शुद्धको प्रकट किया तो यदि इस मार्गसे चलनेपर तो निर्विकार मार्गमे पहुच जायगा। अपने आपको यदि अशुद्धिमे रक्खा तो विकारयुक्त होकर उसे असंतोष हो जाता है।

हे प्रभु, तुम कोई बडी गजबकी वस्तु नहीं हो। जानता हूं कि तुम अशुद्धिसे हटकर शुद्धिके मार्गमे अपनेको ले गए हो। हैरानी की बात कुछ नही है गजब कुछ नही है, किन्तु इसका स्वरूप बहुत महान है। कभी अद्भुत शक्तिका विकास है? इस अपने आपको देखनेमें भक्ति है और बातोंमे भक्ति नहीं है। यह भगवान है, बडा है बलशाली है इत्यादि बातोंमे भक्ति नहीं है। मुझे तो कुछ गजब ही नही दीख रहा है कि भगवान कोई गजबकी चीज है। जैसे बिरादरीमे कोई धनी है। कमा भी हो, बिरादरीका ही तो है। उसे कोई धनी नही दीखता। यहाँ हम बैठे है वहाँ वह धनी आदमी बैठा है। हम दोनोंमे कोई अंतर नही दीखता है। तुम्हारी नगर महापालिकाका उच्च अफसर, जो तुम्हारे बगलमें बैठे हैं वे तुम्हे गजबका काम करते हुए नही दीखते है। अरे वह शुद्ध प्रभु भी मेरी बिरादरीका है। जैसी वस्तु वह है तैसी ही मैं हू। उस शुद्ध प्रभुकी अशुद्धि मिट गई, विकार मिट गया, ज्ञानकी और दृष्टि हुई, ज्ञानमात्र हो गए, पर प्रभुमे गजब कोई नहीं दीखता है। अपनेसे अपरिचितको जरूर गजब दीखता है। क्या है, कैसे हो गया? बड़े गजबकी बात है, बडा अजब बना है। भगवान कोई और ही चीज हुआ करती होगी, ऐसे देखने लगते हैं, अरे हैरानीकी चीज नही। भगवानकी अशुद्धि मिट गई, विकार मिट गए। वह तो वहीके वही है। पर हे जगतके प्राणी! महत्ता तो तुम्हारी है। तुम्हारेमे बलशाली ज्ञान भरा हुआ है। उस अपने ज्ञानको बाहरी पदार्थोंमे लगा रहे हो और अपने परिणामोको अनतरूपोंमे बना रहे हो। हे प्राणी, अपने ही परिणामोंमे अपनेको अनन्त योनियोंमे डाल रहे हो। कही कीडे मकोडे बन गए, कही पेड बन गए, कही कुछ बन गए, कही कुछ। इस प्रकारसे जन्म मरणके चक्रमे डाल लिया। इसलिए हे प्राणी गजब तो तूने किया है।

यदि तू अपनेको अनन्तरूपोंमे न माने तो समझो कि ज्ञान आ गया। यदि केवल एक ही ज्ञानका प्रताप तुझमे पडा हुआ है तो सारे क्लेश दूर हो जावेंगे। हे प्रभो, आपके ज्ञानमे इतनी शक्ति है कि तीन लोकके समस्त पदार्थ आपके ज्ञानके एक कोनेमे पडे रहते हैं। यदि प्रभुके ऐसे विशाल ज्ञानका आदर है तो मेरे मनमे उनकी महानताका आदर है। मै भगवानमे गजब कुछ नही देखता हू। विकार हट गए, पवित्रता आ गई—ऐसी दृष्टिसे वह ज्ञानी पुरुष हो गए। जिनकी दृष्टि प्रभुताके निकट विराजमान हो गई—उनके ज्ञानमे अनन्त बल है। जो बल उस भगवानमें है वह अन्य प्राणियोंमे भी हो सकता है। अरे यदि मेरेमे ज्ञानबल नही है, पवित्रता नही आ गई है, विकाररहित नही हो गया हूं तो इससे मेरी पराजय है। यदि

मुझे अपना भान हो गया है तो जब चाहूं भगवानसे मिल सकता हूं। इस ज्ञानी पुरुषका यह भगवान अत्यन्त निकट है। अन्तरदृष्टिसे देखो तो वह विराजमान है। शुद्ध प्रभु जैसी स्थिति मेरेमे भी हो सकती है। इसमे कोई संदेह नही है। आत्मा तो दर्शन, ज्ञान, सुख, शक्तिका पिंड है। इस ज्ञानमे कोई सीमा नही है। हमने अपनी अज्ञानतासे ही इसमे सीमा डाल दिया है। वह अज्ञानकी मेड बीचमे पड जाती है इससे हमे क्लेश होते रहते है। मैं अज्ञानकी मेड को तोड डालूं। बाह्य पदार्थोंमे दृष्टि लगानेकी मेड तोड दी जाय तो सारा हो जायगा ज्ञान, एवं असीम हो जायगा, इसकी सीमा खतम हो जायगी। अरे अपने आपके शुद्ध अशुद्ध स्वरूप को और वीतराग बुद्धिके विकासको तो देखो। मैं वह हूं जो है भगवान। जो मैं हूं वह हैं भगवान। जलका स्वभाव और निर्मल जलमे कोई अंतर है क्या? निर्मल जल पहिचाननेमे झट आ गया और जलके स्वभावमे दिमाग लगानेका काम है। जैसा निर्मल जल मुझे मालूम पड रहा है वैसा ही जलका स्वभाव भी पडा हुआ है। उस कीचड वाले जलमे जल भी निर्मल है, कीचड मिला हुआ है, पर वह जल स्वच्छ है, निर्मल है। इसी प्रकार संसारकी नाना स्थितियोंमे पडे हुए इस मलीन आत्मामे भी स्वभाव वही है, वैसा ही स्वच्छ है। जैसा कि भगवान शुद्ध है वैसे ही यह आत्मा शुद्ध है। शुद्धिके विकासमे कोई अन्तर नही है। इसी प्रकार प्रभु अनंत ज्ञान दर्शन और अनंत शक्तियोंका पिंड है। इस ज्ञानके विकासके लिए सामर्थ्य तथा अन्तरदृष्टि इत्यादिकी आवश्यकता है। अपने को अपने सही रूपमे निरखकर स्वयं ही अपनेमें शांतिका मार्ग प्राप्त करें।

स्वरूप न सूझना और विषयकषायोंमे ही उपयोगको बनाए रहना यह बडा अंधकार है। यह अंधकार अज्ञानसे पैदा होता है। अज्ञान क्या वस्तु है? पदार्थोंका जैसा स्वरूप है वैसा न मानना अज्ञान है। प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, अपनी अपनी सत्ताको लिए हुए हैं, अपने ही रूपमे परिणमते हैं, किसीका किसीमे प्रवेश नही है। इनके खिलाफ ऐसा समझना कि मैं अमुक वस्तुको कुछ कर दूंगा या अमुक मेरे लिए कुछ कर देंगे। इस प्रकार स्वतंत्रता के खिलाफ विकल्प करना यह अज्ञान है। पदार्थ अपनेमे ही उत्पाद करते हैं अपनेमे ही अपनी अवस्थाको विलीन करते हैं। और खुद व खुद सदा बने रहते हैं। जैसे एक अंगुली है अभी सीधी है। इसको टेढी कर दिया तो टेढी बन गयी। वह अंगुली उस टेढी अवस्थामे उत्पाद वाली हुई और सीधी अवस्थामे उसका व्यय हुआ यानी सीधी अवस्था विलीन हो गई। और अंगुली वहीकी वही बनी हुई है। इसी प्रकार परपदार्थ अपने ही स्वरूपमे अपनी अवस्थाका उत्पाद करते हैं, अपने ही स्वरूपमे अपनी ही अवस्थाका व्यय करते हैं और अपने ही स्वरूपको बनाये रहते है। इसे कहते हैं त्रिगुणात्मक पदार्थ। पदार्थोंमे यह तीन गुण भरे हुए हैं। प्रथम अवस्थाका उत्पाद, द्वितीय पूर्व अवस्थाको विलीन करना, तृतीय वह

व खुद बनी रहे—ये तीन बातें पदार्थमें सदा चलती हैं। प्रत्येक पदार्थ प्रत्यकसे अलग है। जो खोटा रूप भी परिणमता है वह भी खुद ही परिणमता है। दूसरा उसके साथ मिलकर खोटा रूप नहीं परिणमता है। पर दूसरे पदार्थ, जिसका निमित्त पाकर खोटे भाव होते हैं उनके सम्बन्धमें ऐसा मानना कि वे ही करते हैं इसके मायने अज्ञान है। जो पदार्थ जिस रूप में है उनको वैसा न समझना अज्ञान है और जो जैसा है तैसा मानना ही ज्ञान है। इस ज्ञानके कारण विषयोंका अंधेरा समझमें आ जाता है। वस्तुकी स्वतन्त्रताका उपयोग करके जो वास्तविक आनन्द आता है तो उसमें आकुलता नहीं रहती है, उसमें परिणमन नहीं रहता है और अज्ञान रहता है, एकका दूसरेके साथ सम्बन्ध माननेकी बात रहती है। तो ऐसी स्थितिमें विषयोंको लगाए रहना प्राकृतिक बात है, बाह्य पदार्थोंमें खपना प्राकृतिक बात है। यह बड़ा अंधेरा है। विषयोंसे प्रीति होना यह बड़ा अंधकार है।

विषय ६ प्रकारके होते हैं—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द व संकल्पविकल्प। इन ६ प्रकारके विषयोंमें रति होना यह अंधकार है। अपने आपको टटोलना चाहिए कि हम अंधकारमें हैं या उजेलेमें हैं। स्पर्श विषयमें मुख्य तो वेद सम्बन्धी विषय है, फिर स्निग्ध रूक्ष ठंडा गर्म आदि जो ८ प्रकारके स्पर्श हैं वे हैं। स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, शीत, कड़ा नर्म, हल्का भारी ये ८ प्रकारके स्पर्श स्पर्शन इन्द्रियके विषय हैं। सो देखो निरन्तर ये प्राणी इनमें बहते ही रहते हैं। गर्मी लगती है तो ठंडी चीज चाहिए, ठंडा नहीं बना रहता है तो हवाकी जरूरत है, ठंडी लगती है तो गर्म चीज चाहिए इत्यादि। यह सब स्पर्श इन्द्रियके विषय हैं। वनमें रहने वाले अन्य पशु पक्षियोंमें हो तो क्या यह सहज न कर लिया जायगा? हम ही गरीब हो तो क्या इतनी ठंडी गर्म न सह लेते? रसना इन्द्रियका विषयमें मीठा होना, खट्टा होना, स्वादिष्ट होना ये रसनाइन्द्रियके विषय हैं। संसारके प्राणी कैसे इन रसोंमें रत होते हैं? कितनी तरहके व्यञ्जन बने, कितने प्रकारके खानेकी चीजोंका आविष्कार हुआ जिनका नाम लिया जाय तो ३०० ४०० नाम हो जावें। खानेकी चीजोंके नाम हम कहते हैं और वस्तुओंके नाम हम नहीं कहते हैं, फलोंकी बात नहीं कहते हैं। भोजन बनाये जाते हैं तो कितनी तरहके बनते हैं, मिठाइयाँ बनती, चाय बनती, नमकीन बनती इत्यादि अनेक वस्तुवें बनती हैं। यह सब क्या है? रसनाइन्द्रियके ही विषय हैं। सामने मिठाइयाँ, सेव रखे हैं, दाल रोटी रखी है। दाल-रोटी रखी है तो कोई दाल-रोटीमें ही संतोष कर ले तो समझो विजय है। वस्तुओंको देख लिया तो चख लिया, स्वाद लिया, यह सब क्या है? यह सब रसनाइन्द्रियके विषय हैं। रसनाइन्द्रियका जो विषय है वह भी अंधकार है।

एक अंगुल दो अंगुलकी इस नाकको खुश करनेके लिए कितने प्रकारके सुगंधित तेल हैं, कितने प्रकारके पुष्प हैं? इन सुगंधित पुष्पों तथा तेलोंसे इस नाकको खुश करते हैं। कहीं

फूल या इत्रका फोवा नाकमें घुसा है, कहीं कानमें घुसा है, कहीं इत्र लगा दिया, कहीं अन्य कोई सुगंधित तेल लगा दिया। यदि कोई तेल लगा दिया तो वह खुशबूदार होना चाहिए। ये सब रसनाइंद्रियके विषय है। विषय सेवते सेवते भी संतोष तो नहीं आता। जो है वह ठीक है। यह हुआ तो क्या हुआ, इत्र है तो उसको क्या हुआ ? यह सब अंधकार है। विषयोंका रस सुहाया, यह अंधकार है और इस अंधकारमें ही चुलबुल करता हुआ यह जगतका प्राणी छिन्न भिन्न बरबाद होता रहता है।

चक्षुरिंद्रियका विषय देखो। नेत्रोंने एक एक अगुलमें नए नए खेल देखा तो मन बढ गया। जो कुछ देखा वह वहींका वहीं है और खुद वहींका वहीं है, पर जो कुछ देखा उससे मोह कर लिया। इस मोहके कारण वह दुःखी रहता है। सिनेमा देखा, नाटक देखा, इनमें कुछ है क्या ? किसीका रूप देखा तो है क्या वह अपने शरीरमें देख लो ना, शक्ल हो तो अपने शरीरको तोड फोडकर देख लो। बरसातके दिन हैं तो शरीर अपनेको नही सुहाता। गर्मीके दिन हुए तो शरीर व कपडे नही सुहाते। कपडोंके साथ ही साथ शरीर भी नही सुहाता है। और भी जीव पदार्थोंको सुन्दर-सुन्दर रूप, ड्रेसज, आकार तथा अन्य नई नई चीजें वगैरा बनाना, नई-नई डिजाइनोंका बनाना, कहीं कुछ बनाना, कहीं कुछ बनाना। यह सब क्या है ? यह सब चक्षुइंद्रियके विषय है। नेत्रइंद्रियके विषयमें यह रत होता रहा है, पर यह यहीं तो बनेगा। गुरुजी सुनाते थे कि सागरमें एक कान्सट्रेबिल था। वह वेश्यामें आसक्त था। जो कुछ धन-दौलत उसके पास थी, सब वेश्याके पास पहुंच गयी। वह अब बडी अवस्थाका हो गया था। अब धन तो वेश्याके पास आ गया। अब उसे क्या परवाह है ? वह अपने घर न आने देवे उस सिपाहीको। कान्सट्रेबिल उसके घरके सामने ही रात दिन पडा रहा। किसीने पूछा—भाई साहब, तुम यहां क्यों पडे रहते हो ? कहा—पडा रहता हूं इसलिये कि रात दिनमें कभी तो घरसे बाहर निकलेगी ही, देख लूंगा। हाय, हाय, क्या मिल गया ? रात दिन पडे रहे। वह पदार्थ अपनी जगहपर है, आत्मामें आत्मा है, शरीरमें शरीर है। जो जहाँ है तहाँ ही रह जाता है, हाथमें कुछ आता नहीं है। यह क्या ? यह नेत्र विषयके रूपोंका अंधकार है।

कर्णका विषय देखो—कितनी तरहके राग हैं, अभी कोई शब्द सुन्दर गायन हो तो यह संगीत सुनने चला कि कुछ सुन लें। देहातोंमें रद्दी अलाप होते हैं उनको सुननेकी भी इच्छा होती है। सपेरा बीन बजाता है वह भी सुहाती है। हर तरहके जो सुहावने शब्द सुनाई पडते हैं वह भी सुहाते है। यह क्या है ? यह कर्णके विषयोंकी रति है। यह विषयोंका अंधकार है। मनको देखो उसका विषय सबसे बडा है। मन चाहता है कि इतना धन रहे इतना वैभव रहे, किसीसे पीछे न रहूं, आगे बढूं। यह सब मन सोचता रहता है

यह आत्मा ऐसी है कि धनके होनेके कारण अपनी सभी इज्जत मान रहा है, यह तो हुआ उसका घमंड। गरीबसे धनी हो रहे हैं, धनको और जोड़ना चाहते हैं। एक आदमी ऐसा है जो पूजा उपवास आदि धर्मका काम करके अपनेको धर्मात्मा जताता है। यह अधिक घमंड हुआ। धर्मके काममें छल कपट करना तीव्र माया है। धर्मके काममें लोभ करना तीव्र लोभ है। कोई पुत्र आदि बीचमें बीमार हो जाय। पांच सौ रु० मासिक उसमें निकल गए। ६ मास पड़े ही रहे। यह सब करनेसे वह मोह कर रहा है। अपने बच्चेके लिए दवा कर रहा है कि ठीक हो जावे। उसमें भी मोह है। किसीका मोह किसी जगहपर उतरता है और किसीका अन्य दूसरी जगहमें। लोभ परिवारमें हो जाता है। जितना भी करते हैं वह सब अपने परिवारके लिए करते है। वह अपने परिवारके लोगोंको ही सर्वस्व समझते हैं तो यह धर्म नहीं हुआ। इसमें लोभ है।

हे आत्मन्! तेरा स्वरूप शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है। अपने ज्ञानानन्दस्वभावको देखो। एक पुरुष पिताके खूब गुण गाता है पर पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता है, पिताके भीतर होने वाली इच्छाओंका आदर नहीं करता है। और एक पुरुष वह है जो अपने पिताका गुणानुवाद नहीं करता और पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए वह तैयार है। तो बतलाओ कि कौनसा पुरुष अच्छा है व भक्त है? पुरुष वही अच्छा है जो पिताका गुणानुवाद तो नहीं गाता है, परन्तु आज्ञाका पालन करनेके लिए तैयार है।

एक आदमी ऐसा है जो भगवानकी १० बार पूजा करता है, भगवानको हैरान कर डालता है और एक ऐसा है जो केवल भगवानका स्मरण मात्र कर लेता है। शुद्धस्वभावका ध्यान करता है और भगवानका हुक्म मानता है। तो बताओ कौन अच्छा है? भक्त वह है जो भगवानका हुक्म माने। भगवानका हुक्म यह है कि अपने आपको ज्ञानमात्र, सबसे निराला समझो। अब सोचो मैं इस अज्ञानमें उत्पन्न होने वाले अन्धकारको नष्ट कर ज्ञानमात्र आनन्दमय अपने आपको देख करके ध्यानरूप अग्निके द्वारा इन कार्योंको जलाऊं और निष्कलंक होकर अपने आपमें अपने आप सुखी होऊँ।

यह रागादि भाव अज्ञानीको बड़ी पीड़ा दिया करते है। ये पीड़ा देते हैं तो दें, कब तक देंगे? यह तब तक ही पीड़ा देंगे जब तक कि मैं ज्ञानसागरमें डूब न जाऊं। यह कब तक जीवोंको सताते है जब तक कि वे ज्ञानसागरमें नहीं डूब जाते। जैसे धूपसे पीड़ित मनुष्यको गर्मी तब तक सताती है जब तक ज्ञानसागरमें वह डूबता नहीं। जब तक ज्ञानमें ज्ञान नहीं प्रवेश करे तब तक संतोष कैसे उत्पन्न हो सकता है? जब तक ज्ञानसागरमें डूबे रहे तब तक रागादिमें संताप नहीं हो सकते। ज्ञान दो किस्मके है—एक आत्माका ध्यान, दूसरा परवस्तुओंका ध्यान। परवस्तुओंकी कल्पनाओंमें दुख होता है और अपने स्वरूपका ध्यान करने

यह आत्मा ऐसी है कि धनके होनेके कारण अपनी सभी इज्जत मान रहा है, यह तो हुआ उसका घमड । गरीबसे धनी हो रहे है, धनको और जोडना चाहते हैं । एक आदमी ऐसा है जो पूजा उपवास आदि धर्मका काम करके अपनेको धर्मात्मा जताता है । यह अधिक घमड हुआ । धमके काममे छल कपट करना तीव्र माया है । धमके कामम लोभ करना तीव्र लोभ है । कोई पुत्र आदि बीचमे बीमार हो जाय । पाच सौ रु० मासिक उसमे निकल गए । ६ मास पडे ही रहे । यह सब करनेसे वह मोह कर रहा है । अपने बच्चेके लिए दवा कर रहा है कि ठीक हो जावे । उसमे भी मोह है । किसीका मोह किसी जगहपर उतरता है और किसीका अन्य दूसरी जगहमे । लोभ परिवारमे हो जाता है । जितना भी करते हैं वह सब अपने परिवारके लिए करते हैं । वह अपने परिवारके लोगोको ही सर्वस्व समझते हैं तो य धम नही हुआ । इसमे लोभ है ।

हे आत्मन् ! तेरा स्वरूप शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है । अपने ज्ञानानन्दस्वभावको देखो । एक पुरुष पिताके खूब गुण गाता है पर पिताकी आज्ञाका पालन नही करता है, पिताके भीतर होने वाली इच्छाओका आदर नही करता है । और एक पुरुष वह है जो अपने पिताका गुणानुवाद नही करता और पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए वह तैयार है । तो बतलाओ कि कौनसा पुरुष अच्छा है व भक्त है ? पुरुष वही अच्छा है जो पिताको गुणानुवाद तो नही गाता है, परन्तु आज्ञाका पालन करनेके लिए तैयार है ।

एक आदमी ऐसा है जो भगवानकी १० बार पूजा करता है, भगवानको हैरान कर डालता है और एक ऐसा है जो केवल भगवानका स्मरण मात्र कर लेता है । शुद्धस्वभावका ध्यान करता है और भगवानका हुक्म मानता है । तो बताओ कौन अच्छा है ? भक्त वह है जो भगवानका हुक्म माने । भगवानका हुक्म यह है कि अपने आपको ज्ञानमात्र, सबसे निराला समझो । अब सोचो मैं इस अज्ञानमे उत्पन्न होने वाले अवकारका नष्ट कर ज्ञानमात्र आनन्द मय अपने आपको देख करके ध्यानरूप अग्निके द्वारा इन कार्योंको जलाऊ और निष्कलक होकर अपने आपमे अपने आप सुखी होऊँ ।

यह रागादि भाव अज्ञानीको कभी पीडा दिया करते है । ये पीडा त है तो दें, कब तक देंगे ? यह तब तक ही पीडा देंगे जब तक कि मैं ज्ञानसागरमे डूब न जाऊ । यह कर्म तब तक जीवोको सताते है जब तक कि वे ज्ञानसागरमे नही डूब जाते । जसे धूपसे पीडित मनुष्यको गर्मी तब तक सताती है जब तक ज्ञानसागरमे वह डूबता नही । जब तक ज्ञानमे ज्ञान नही प्रवेश कर तब तक संतोष कसे उत्पन्न हो सकता है ? जब तक ज्ञानसागरमे डूबे रह तब तक रागादिके सताप नहीं हो सकते । ज्ञान दो किस्मके है—एक आत्माका ध्यान, दूसरा परवस्तुवोका ध्यान । परवस्तुवोकी कल्पनाओमे दुख होता है और अपने स्वरूपका ध्यान करा

से दुःख दूर हो जाते हैं। लेना देना कुछ नहीं है, केवल परिणामोंकी बात है। सुखी होना, आनन्द होना केवल भावोंके परिणामकी बात है। देखो इतनी बड़ी समस्या, इतनी बड़ी प्रोबलम केवल एक विचार परिवर्तनमें ही हो जाती है तथा हल भी हो जाती। कम धन होनेसे दुःख होता है, रोजिगार करते हैं यह करते हैं वह करते हैं कितने ही यत्न करते हैं पर उससे यह समस्या हल न होगी। घर आदिकी समस्या बाह्य साधनसे हल न होगी। लड़कोंको सुखसे रखना, कुटुम्बको बाँधकर रखना, परिवारमें रहना, इन सबसे घरकी समस्या हल नहीं होगी। किसीको भी अच्छा करें, बुरा करें, कुछ भी कर लें, पर यह समस्या हल नहीं हो सकती है। इस समस्याका हल विकारके तिरस्कारसे तथा स्वभावके दर्शनमें होगा। स्वभावदर्शन क्या है? जैसा खुदका स्वरूप है वैसा ही उपयोग बन गया यही स्वभावदर्शन है, इसीसे सब समस्याएं हल होंगी।

कैसा है यह अपना स्वरूप? पहले तो सबसे निराला, किसीसे मिला जुला नहीं, अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने वाला, अपने आपके स्वभावको अपने आपके अस्तित्वसे लिए हुए है। वह भाव मात्र है। उसमें कुछ खटपट नहीं, उसमें कोई झंझट नहीं। इस मुझमें लेनेके देनेके दो नहीं मिलेंगे। मैं केवल भावमात्र हूं, ज्ञानभावमात्र आनन्दमात्र हूं सबसे निराला हूं, ज्ञान और आनन्दमात्र हूं। रंच भी दूसरे पदार्थोंके साथ सम्बंध नहीं है। मगर जहाँ मोह उठता है तो वह सारा का सारा कैसा मालूम पड़ता है? यह मेरा लड़का है, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, ऐसा उधम उठाकर रहता है। विपदाओंका कारण यह मोह ही है, नहीं तो मैं आनन्दानुभव वाला तथा जो सबसे निराला हूं आत्मा स्वयं ज्ञानघन है, आनन्दमय है पर मोह ऐसा गंदा विष है कि अहोनीको होनी बना देना चाहता है। मोह ही तेरे दुःखका कारण है। दूसरा तेरा दुःखका कारण क्या है यह बतला? और दुःखका कारण दूसरा नहीं। यह मोह ही दुःखका कारण है। यह मेरा है यह उसका है। यह क्या है? यह मोह ही तो है। पर यदि यह मोह हट जावे तो दुःख भी हट जावेंगे। ये सब यहीं के यहीं रह जावेंगे, जिनसे तू मोह कर रहा है ये भी नहीं रहेंगे तू भी नहीं रहेगा। रहेगा तो केवल हमारा स्वरूप ही हमारे साथ रहेगा। यदि तू अपने इस शुद्ध स्वरूपका उपयोग बना ले तो तेरे साथ यह स्वरूप सम्हाल रहेगा। रागादि भाव पीड़ा देते हैं तो दें। पर यह पीड़ा ही क्यों देंगे? यह तेरेको तभी पीड़ा दे सकते हैं जब कि तू ज्ञानसागरमें डूबकर प्रवेश न कर जाए। तू जिसको जान रहा है उससे ही तुझे दुःख होते हैं। अरे तू इनको न जानकर अपनेको जान। परिवारके होनेका क्या दुःख? अगर परिवार आज नष्ट हो गया तो क्या दुःख होंगे और यदि मेरा ज्ञान यों ज्ञानसागरमें डूब गया तो सुखी रहेगा। दुःख तो तुझे तब होंगे जब तेरा लगाव, तेरा मोह इनमें होगा। जैसे कहावत कहते हैं कि तुम्हें आम खानेसे काम कि

भेड गिननेमे । तुझे आनन्दसे काम है या लडको बच्चोसे काम है । तुम्हे यदि लडको बच्चोसे आनद मिलता है तो उनसे ले लो या अपने आपसे मिलता है तो अपने आपसे ले लो । आनद तो इस आत्मामें है । यदि आत्मामे ही दृष्टि रहे, आत्मामे ही झुकाव रहे तो सुखी रहेगा । और दुःख तो तब है जब तेरा झुकाव परमे होगा, मोहमे होगा, कुटुम्ब परिवारमे होगा । यदि तू अपने ख्यालको अपने कुटुम्ब, परिवारसे छोड दे तो दुःख कैसे होगा ? यदि अपना लगाव कुटुम्ब, परिवार, धन-वैभव आदिमे होगा तो तुझे दुःख होंगे । देखो भया ! बाहरी बातोमे क्या रखा है ? यदि तू धनी है तो ज्यादासे ज्यादा यह होगा कि दो चार मोही पुरुष यह कह देंगे कि यह बहुत धनी है । करोडोका धन जोड लिया और उसका फल क्या मिला कि केवल दो-चार मोही यही कहेगे कि यह बडा धनी है । अरे तुझे तो पेट भरना है और दो कपडा पहिनना है । इतना ही तो यहाँका काम है, इसमे ज्यादा और कौन काम है ? तूने इतना श्रम करके, मिथ्या बन करके करोडोका धन एकत्रित कर लिया है और उसका परिणाम केवल इतना है कि दो चार मोही यह कह देंगे कि यह धनी पुरुष है । इतना फल है, जितनी मेहनत की, रात दिन चिंताएं रही, विपदाए रही । यह चिंताए और विपदाए केवल इस प्रयोजनपर रही कि ये मोही पुरुष दो शब्द बोल दें । वह मोही ऐसे हैं जिन्हे अपनेका ख्याल नही है, जो गदे है, मोही हैं, ससारमे घूमने वाले हैं, ससारका पता भी नही है और ममत्वमे फसे हुए हैं । ऐसे दो चार व्यक्तियोके द्वारा उसे प्रशसा मिलती है इतना परिश्रम करनेपर ।

हे ससारके प्राणी ! तेरेमे अपनी बेसुधीकी ही भूल भरी रहती है, नही तो धर्मका मार्ग गृहस्थोको बिल्कुल सीधा है । अपनी दिनचर्यामे ६ घटेका काम करने को दिया है या ज्यादा से ज्यादा ८ घटे तक काम करो । अपनी दुकानमे इतना ही समय दो और जो कुछ पुण्यके अनुसार मिल जाये उसका ही हिसाब लगाकर न्याय कर सतोष प्राप्त करो । जो कुछ आमदनी हो जाय उसीसे सतोष रखो । चाहे चना नमक खाने भरको ही हिस्सेमे आवें उससे ही सतोष प्राप्त करना चाहिए और उसी स्थितिमे ही अपनी धुनको धर्ममे लगाना चाहिए । इतनी हिम्मत हो कि न्यायसे काम करेगा चाहे कुछ मिले अथवा न मिले । अपने सादे कपडे पहिनकर धर्मके गुणानुवादमे स्वरूपके ध्यानमे अगर मन लगाता है तो वह सुखी है । उसे चाहे खराब दिन भी आवें तो परवाह नही है । यह उत्साहसे काम करेगा व आनदमग्न होगा । यदि इन लटोरा घसीटोंमे ही उपयोग बना रहा तो दुःख होगा । यह तो सब लटोरे घसीटे खचाडे हैं । इन सबमे तू अपना उपयोग न बना । नही तो तुझे दुःख होगा ।

यहाँ जो कुछ आया है वह सब मिट जायगा । यह मालूम होते हुए भी यह मोही प्राणी केवल उन दो चार मोही प्राणियोंके दो शब्दोको सुनना चाहता है । उन्हींके

वह अनेक विपदाएँ सहन किया करता है, अपनको पीडा दिया करता है। यह धनका राग उसे दुख देता है, उसमे क्लश उत्पन्न कर देना है।

जसे कोई बच्चा अपनी माँ के पास बैठा हुआ है। बच्चा अपनी मा से यह कहता कि वहाँ चलो, वहाँ बठे, वह खावो, इस तरहसे बच्चा कहता है और यदि माँ नही करती है तो बच्चा अपना मुँह घुमा लेगा, रोवगा, जमीनमे लेट जायगा। केवल इतनी बातपर कि मेरी बात नही रही कि माँ ने कहना नही माना, माँ से वहाँ चलनेके लिये कहा—नही गई। केवल इतनी ही बात है। बच्चा न कुछ कल्पनासे कितना उपद्रव करता है? इसी प्रकारसे यह मोही प्राणी मायामे पडकर दूसरोसे दुश्मनी कर डालत है। अर कौनसी बातका असर है जो दुश्मनी कर डाली? निजी चीज जिसे माना वह भी निजी नही, यदि पूछा जाय कि दुश्मनी क्यो कर डाली तो यही कहग कि मरी बात नही रही। य रागादि विकार करके दुखी होते हैं। यह रागादिक विकार कब तक दुखी करेंगे जब तक कि ज्ञानसागरमे हम डूब जावें।

राम, लक्ष्मण, सीता इत्यादि महान् आत्माओके जीवन-चरित्रको देखते हैं कि जब तक इन्होने सन्यास नही धारण किया है, त्याग नही किया है तब तक य दुखी रहे है, परन्तु अतिम जीवनमे उन्होंने त्याग किया, सन्यास किया तो उनका जीवन सुखी हुआ। आज उन्ही की महिमाका गुण गाया जाता है। जब तक कि इन आत्माओका जीवन घरमे ही व्यतीत हुआ है तब तक उनकी कोई कीमत नही थी। परन्तु अपने अतिम एक चौथाई जीवनमे ही सन्यास धारण कर अपने जीवनको सफल बनाया। जब तक य अपने घरसे न निकले थे, पालनेमे झूला झूलते थे तब तक उनके गुणोका गान न होता था, परन्तु जब अपने घरसे निकलकर सन्यास किया तो उनके गुणोका गान हुआ और वह मोक्ष गए। इस कारण पुराना जो घरेलू जीवन था उसके चरित्रके भी गुण गाये जाते है। इसी तरह तीर्थंकर भी जब तक अपने घरमे रहते थे तब तक उनके गुणोका वणन भगवानके रूपमे नही होता था। परन्तु बादमे चरित्र निमल हुआ, अपने आपमे रमें, अपने घर द्वार स्त्री आदिसे विमुख हुए और अपने जीवन को सफल बना सके, निर्वाण पधार तब पुराना सारा जीवन प्रभुभक्तिकी पद्धतिमें आ गया। इस जगतके प्राणीका इतना जीवन गुजर गया और इतने जीवनमें बहुत सी बातें रही। उन उन बातोंमें क्यो रोते है? अब हम अपने इतने ही जीवनको सभाल लें तो कल्याण है।

राजा वक पहले तो माँसभक्षी थे। अजन चोर आदि वेश्यामें आसक्त थे। अत्यन्त दुराचारी थे। बादमें उन्ह ज्ञान मिला। उस ज्ञानके कारण ही वह तर गए। अनेक लोग उनके गुण गाने लगे और कहने लगे कि देखो यह कितना मासाहारी थे और तर गए। बाद

में उनकी महिमाका गुणानुवाद हुआ। उदयमुदर अपनी वज्रभानु स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त था। वह मोहमायामें अत्यन्त लीन था। वह रास्तेमें मुनिमात्रमुद्राके दर्शन करके विरक्त हो गया, तबसे ही उसके गुणोंका गान किया जाता है। लोग बादमें कहने लगे कि वाह वह कैसे अशुद्ध थे और शुद्ध बन गए। अच्छा चरित्र बनने पर पहिले चरित्र भी किसी रूपमें गुणानुवादमें आ जाते हैं। हे आत्मन्! तू अपने रागादिसे उत्पन्न दुःखोंसे क्या रोता है? तूने ही तो इन दुःखोंको बनाया है। यह तेरे रागादि भाव तब तक तुझे पीडा देंगे जब तक तेरी आत्मामें ज्ञान प्रविष्ट नहीं होगा। तू अपनी आत्मामें ज्ञान प्रविष्ट कर अपने आनन्दस्वरूपको निरख। इसीसे तेरे समस्त क्लेश समाप्त हो जावेंगे। यदि तुम्हें आत्मस्वरूपमें आनन्द मिलता है तो उसमें झुको और यदि दुनियाके परपदार्थोंमें आनन्द मिलता है तो परपदार्थोंमें झुको। यदि तू अपने निजस्वरूपमें आनन्द प्राप्त करेगा तो तुझे आनन्द प्राप्त होगा और शांति मिलेगी। पर यदि बाह्य पदार्थोंसे आनन्द प्राप्त किया तो उसमें अशांति ही अशांति रहेगी। जिस कामसे दो चार वर्ष तक टोटा ही टोटा रहे उसको बुद्धिमान व्यापारी बदल देता है। इस बाह्य आनन्दमें ही यदि तू पडा रहा तो शांति नहीं मिलेगी तो तू ऐसे रोजिगारको बदल दे। अपने आपके आत्मस्वरूपमें यदि आनन्द प्राप्त किया तो उससे शांति मिलेगी। इसलिए तू ऐसा ही व्यापार कर। यदि तूने एक आत्माकी बात सही जान ली तो करने योग्य २० बातें खुद ही जान लेगा। १० बातोंको बतानेकी जरूरत नहीं। एक घटना है कि तुर्दलखण्डमें एक राजा रहता था, वह राजा गुजर गया। उसका पुत्र नाबालिग था। अब वह लडका २० २१ वर्षका हो गया। उसकी माँ ने कहा कि मेरे लडकेको राज्य सौंप दिया जाय। उसकी माँ ने उसे समझा दिया कि जो बादशाह पूछे उसका यो उत्तर देना। यदि यह प्रश्न पूछे तो यह उत्तर देना, यह प्रश्न पूछे तो यह और यह प्रश्न पूछे तो यह उत्तर देना। इस तरहसे १० बातें माँ ने उसे समझा दी। उस राजकुमारने कहा कि यदि इन १० बातोंमें से एक भी न पूछेंगे तो क्या कहेंगे? माँ बोली कि कुछ अपने आप उत्तर दे सकते हो। राजकुमारने कहा कि क्या मुझे कल्पना भी अपनानी होगी। माँ बोली कि यह तो बडी बुद्धि और प्रतिभाकी बात है। राजकुमार बादशाहके सामने बुलाया गया। बादशाह कुछ नहीं बोला। उस लडकेके दोनों हाथ पकड लिया और कहा कि अब तुम पराधीन हो गए, विवश हो गए, अब तुम मेरा क्या कर सकते हो? राजकुमारने कहा कि अब क्या है, अब तो मैं सब कुछ कर सकता हूँ और अब मैंने सब कुछ कर लिया। जब स्त्रीके साथ शादीमें हथेलवा होता है तो एक हाथ पकड लेनेसे स्त्रीकी जिन्दगीभर रक्षा करनी पडती है। एक हाथके पकडनेसे जिन्दगीभर रक्षा करनी पडती है तो दोनों हाथोंके पकडनेपर क्या कहना है? हम तो अब बिल्कुल स्वतन्त्र हो गए। यह सुनकर बादशाह प्रसन्न हो गया और उस राजकुमारको राजगद्दी दे दी गयी। इस कमण्डलको

कैसे उठाना है, कैसे कथा करना है आदि बातोंको क्या सीखना है। यदि इस यथार्थ बातको समझ लिया तो इतना ही क्या है? बीसो बातें अपने आप समझमे आ जावेंगी। यदि अपनी ज्ञानस्वरूपकी प्रतिभा जग जाय तो सारी बातें आ जाएं।

यहाँ उपद्रव करने वाले भाव बहुत हैं। मगर ज्ञानस्वभावमें प्रवेश करने पर वे कुछ नहीं। गगा नदीमे पानीमे एक जानवर था। आराम करनेके लिए मुह उठाकर पानीके बाहर थोडा सा गोता निकालकर जाता है। चारो तरफसे सकडो पक्षी उस जानवरपर हमला करनेके लिए आते हैं। पर यदि वह थोडासा पानीमे खिसक जाता है। तो वे सारे पक्षी बेकार बेकार होकर भाग जाते हैं। रागादिक भाव नाना प्रकारके विकल्प, नाना प्रकारके विचार इस ज्ञानगगा जीवनके बाहर मडरा रहे है, सब हमारे ऊपर हमला कर रहे है। यदि हम जरासा इन रागादिक भावोसे विलग हो जावें व ज्ञानगगामे मग्न हो जावें, फिर निरविय तो ये हमारा कुछ नही कर सकते हैं। जिस प्रकारसे गगा नदीमे जीवके दब जानेसे सारे पक्षी व्यर्थ हो जाते है, सारा उन पक्षियोका परिश्रम बेकार हो जाता है उसी प्रकार इन रागादिक भावोंको जो कि हमे पीडा देते है, हम अपने मोहको ज्ञानमे दबा लें तो ये रागादिकभाव हमारा कुछ नही कर सकते हैं। जब तक ज्ञानस्वरूपमे ध्यान नही है तब तक ये रागादि पीडा देते है। सो अब मैं उन मोहियोके दो शब्दोसे हटकर, ज्ञानमें ही डूबकर, मग्न होकर, ज्ञानके स्वरूपको ही ज्ञान से देखकर जहाँ ज्ञान ही जानने वाला है, ज्ञान ही जिसमे जाना जाने वाला है याने ज्ञेय होता रहता है और वह ज्ञान जानकर ज्ञानमात्र ही रहता है। इसी प्रकार ज्ञानी, ज्ञान और ज्ञेयमे भेद नही रहता है। जिसमे भेद नही है उसमे ही यह अद्भुत परम आत्मानुभवका आनन्द है। जानने वाला तो मैं हू और ज्ञेय बना रहता हू। दुनियाके अनेक पदार्थ जहाँ है वहाँ तो आकुलता रहेगी और जिसका जानने वाला मैं हू वहाँ मैं ही ज्ञेय बना रहता हू। ज्ञेयको ज्ञान मे जानें, यह है सबसे अच्छा रोजिगार। जिसमे तीन लोकका नाथ बना दे यह है विलक्षण व्यापार। किसलिए जान रहे है? जान रहे है, इसलिए जान रहे हैं। इस जाननेके आगे और कुछ प्रयोजन नही। तो अब ज्ञानमे ही प्रवेश करके मैं अपनेमे अपने आप सुखी होऊ। ये रागादि उपद्रव तो तब तक होंगे जब तक इस ज्ञानसागर निज आत्मतत्त्वमे अपने आपका प्रवेश न हो जाय। यही ज्ञानयोग ज्ञानियोका, योगियोका एक मात्र काम है। इसही से आत्मा महात्मा होते व महात्मासे परमात्मा हो जाते है। केवल एक ज्ञानानुभव ही है। सो अब ज्ञानमे ज्ञानका अनुभव करके मैं अपनेमे अपने आप आनन्दस्वरूप होऊ। ॐ शान्ति

आत्माका स्वभाव सिद्ध बननेका है। सिद्ध कहते है उसे कि जिसने अपने आपके गुणोकी प्राप्ति कर ली है, अपने आपमे सब कुछ कर लिया, जो अपना गुण है, अपनी शक्ति है उसको लेनेका इस आत्मामे स्वभाव है अथवा पूर्ण विकासरूप बन जाने

का इस आत्माका स्वभाव है, अनन्त ज्ञानी अनन्त द्रष्टा अनन्तसुखी अनन्त शक्तिमान हो जाने का स्वभाव है। यह ही इस आत्माका विक्रम है, पराक्रम है वस्तुतः, शूरवीरता है, पर अन्य इसमें जो पर्याय उत्पन्न होते हैं जैसे गतिमार्गणामें नारक, तिर्यञ्च, देव व मनुष्य हो, इन्द्रिय मार्गणामें एकइन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचइन्द्रिय बनाया गया है। अन्य कषाय असंयम आदि जो कहा गया है वह किसके विक्रम है? ये कर्म के विक्रम हैं। जैसे निर्मल शुद्ध काच है वह शुद्ध बना रहे स्वच्छ बना रहे तो कांचका ही विक्रम हुआ। जब कांचको किसीके सामने कर दो या कांचके सामने कुछ आ गया, हाथ आ गया, लो छाया आ गयी, उसमें वस्तुतः किसकी चल गई? हाथ की। तो वह हाथ निमित्त हुआ। हाथका विक्रम हुआ, हाथकी ही कलाएँ है। यह एक दृष्टि है इसी दृष्टिसे देखना। इसी प्रकार जीवमें शुद्धज्ञानरूप बर्ताव केवलज्ञान मात्रमें रहना, ज्ञाताद्रष्टा रहना, यह तो हुआ आत्माका विक्रम और इसमें क्रोध, मान, मोह माया, लोभ आदि जो कुछ भी विभाव पर्यायें होती हैं वे सब कर्मके विक्रम है। यहां यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि जो मेरा विक्रम है उस विक्रमको करूँ और कर्मके जो विक्रम हैं उनकी उपेक्षा करूँ। मेरा तो काम है ज्ञाता, द्रष्टा रहना। यह चीज कठिन है, ऐसा जानकर इसलिए निरुत्साही नहीं होना चाहिए कि बहुत दिनोंसे पढ़ते आए, सुनते आए, कुछ लाभ नहीं दिखता अन्तर नहीं आता। भाई बात तो कठिन है। जिस दिन ठीक होना होगा, ठीक हो जायगा। कोशिश करते रहना है, उपयोग बनाए रहना है। जब होना होगा ठीक हो जायगा।

एक बाबूने एक कोरीको पायजामा दिया। वह नहीं जानता था कि कैसे पहिना जाता है। तो वह उस पायजामेको कभी कमरमें लपेटता, कभी हाथमें डालता तो कभी गले मे डालता था। इस तरहसे उसने बहुत बहुत काम किया। एक समयमें उसने पायजामेका एक पर पैरमें डाला और दूसरा पायजामेका पैर भी दूसरे पैरमें डाल लिया, अब झट बन गया। उसकी समझमें आ गया कि ऐसे पहिना जाता है। इसी तरह जो पढते हैं, सुनते है, कोशिश करते है तब भी बात फिट नहीं बैठती है। बात यदि फिट नहीं बैठती है तो नहीं सही, कोशिश करना बंद न करो। किसी दिन परद्रव्यकी उपेक्षा हट जायगी और अपने आपमें सहज विश्राम पाने लगोगे। अपने आपका सहज अनुभव हो जायगा कि यह बात है, यह प्रभु के स्वभावका मर्म है। मैं तो अपना विक्रम करूँगा। चींटी चढती है, चढती ही चली जाती है, कभी कभी गिर जाती है, फिर भी हिम्मत नहीं हारती है, वह ऊपरको चढती ही चली जाती है। बार बार करनेके लिए काम यह है कि परम उपेक्षा और आत्म मे दृष्टि हो और कुछ करने लायक काम नहीं है। धन कमाया है वह जायगा या अन्तमें मृत्यु हो जायगी। एकका भैया मर गया, पढा लिखा था। दूसरे लोग आकर पूछते हैं, महापुरुष दिखाते है,

कैसे परिणामोसे तुम्हारा भाई मरा ? लड़का बोलता है कि क्या बनावें—क्या बतायें यार क्या कारोनुमाया कर गए। बी ए किया नोकर हुआ पेन्सन मिली उर मर गये ।। भाई नौकरी करता था, बादमें पेंसन मिलती थी और अब मर गया। जगतके सभी जीवोंको ऐसा होता है कि नौकरी किया, धन वैभव जोड़ा, मर गए और चले गए जीवनको छोड़कर। आत्मप्रभुके, आत्मस्वभावके दर्शन हो तो परिश्रम सफल है। आत्मस्मरणसे जो आत्मसंस्कार बनता है उसका संस्कार तेरा भला करेगा, अन्य वासनादि भला नहीं करेंगी। कितनी दृष्टि फसी हुई है ? घरके चक्कर, परिवारके चक्कर, यह काम वह काम इत्यादि अनेक प्रकारसे दृष्टि फसी हुई है। ये सब तेरे रक्षक नहीं। तेरा तो रक्षक अन्तःस्वरूपका दर्शन है। जैसे रोते हुए बालकको किसी खिलौनेमें रमा दें तो उसका रोना बन्द हो जाता है। इसी तरह दुःखी होते हुए इन प्राणियोंको जब कभी अपना खिलौना मिल जाय, चैतन्यस्वभावके दर्शन हो जाए तो यही मोक्षका मार्ग है, शान्तिका मार्ग है। यह कोई कठिन बात नहीं है। इस ही स्वरूपमें इस तरहका उत्साह लग जाय, अपने खिलौनेमें लग जाए तो सारे क्लेशके रास्ते ही उसके बन्द हो जाते हैं। यह अमोघ उपाय है। जैसे रेल, मोटर चलती है तो उनके जो यन्त्र बनते है, घुमा दें, तेज चला दें, धीरे चला दें। जरासा दबा दें तो तेज चल देते हैं और यदि निःशङ्क होकर और थोड़ासा दाब दें तो और अधिक तेजीमें चल देती है। जो चलाने वाले यन्त्र है उनको जरासा स्टार्ट कर दे तो चल देते हैं। उनको चलानेके लिए जो प्रयत्न है वह व्यर्थ नहीं जाता है। इसी तरह आत्मस्वरूपका दर्शन भी ऐसा उपाय है कि अगर करें तो व्यर्थ नहीं जाता है। ज्ञानी ऐसा परिणाम तो करता, स्वभावमें दृष्टि तो करता, श्रद्धा तो बनाए है, प्रतीति तो बनाए है। मेरा तो रक्षक मैं ही हूं, मेरी शरण मैं ही हूं, दूसरा मेरा कोई रक्षक नहीं है। मैं अपने प्रभुको पहचानूं तो मेरा रक्षक मैं ही हूं, मेरा शरण मैं ही हूं।

मैं अपने परिणामोंको पहले देखूं। कर्म जो कुछ विक्रम करते है तो करने दो। मैं अपने विक्रम को करूँ। अपना पुरुषार्थ आप करो, कर्मका विक्रम कर्ममें होने दो। अपना पुरुषार्थ यह है कि अपना शुद्ध ज्ञायकस्वरूप देखो। कर्मका विक्रम कषायादिक है वह चारित्र-मोहमें होने दो। आत्मास्वरूप दृष्टिका काम कर, कर्म चारित्रमोह करे, जीवके विक्रम और कर्मके विक्रममें होड़ लगने दो। हे चारित्रमोह ! तू अपने उपद्रवको समाप्त कर। जब तू अपना उपद्रव समाप्त करेगा तभी तेरा कल्याण होगा। हे प्राणी ! तूने तो कल्पनाएं बना ली अपने परिवारको, अपने कुटुम्बको अपने सामने रख लिया और जन्ममरणका चक्कर ले लिया। मुझे तो अपने आपमें यह विक्रम लगाना है कि अपने आपको शुद्ध ज्ञायकस्वरूप, ज्ञानमात्र, जाननस्वरूप, जो केवल जानता है, जानन-जानन ही जिसका स्वरूप है, जो परपदार्थोंसे भिन्न

है, किसी अन्यमें सम्बन्ध नहीं है, ऐसे उपयोगमें हम लगना है। यह प्रथम चीज है। इसमें ही मेरेमें आनन्द आता है। इसके बिना गुणोंका विकास नहीं। इसी प्रकारका ध्यान बना कर ज्ञानी जीव अपनेको ज्ञाता द्रष्टा बनाये रहकर अपना विक्रम करते हैं। क्रोधका उदय वहाँ नहीं है, अन्य प्रकारके विकार भी वहां नहीं है। इसमें मोह नहीं है दुःखोंसे रहित है। जहाँ पर मोह है, क्रोध, मान, माया, लोभ है वहा पर विपत्तियाँ हैं। कम अपना विक्रम कर रहे हैं और यह मैं अपना विक्रम करूँ।

देखो एक जानवर होता है कछुवा। उसे कोई सताये तो वह अपनी चोंच भीतर दबा ले तो उसकी चोंच भीतर घुस जाती है। केवल ढाँचा पड़ा रहता है, मुंह भीतर पड़ा रहता है। कछुवेका बाकी शरीर तो कड़ा रहता है। उसको चाहे ठोकते रहो पीटते रहो, परन्तु वह सुरक्षित रहता है। यह तो उदाहरणकी बात है। इसी प्रकार हमारे ऊपर चाहे जितनी आपत्तियाँ आएँ, आने दो। हमारे पास तो ताकत है। अपना विक्रम करें। अपने विक्रमको हम भीतर ले जाएँ और ज्ञानस्वभावमात्र आनन्दस्वभावमात्र अपने स्वरूपको निरखें। यहा तो मेरा कुछ नहीं है, मैं ज्ञानमात्र हूं। क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि मेरेमें नहीं है पर हो जाते हैं। कर्मका विक्रम है। होने दो। मैं अपना विक्रम करूँ अर्थात् ज्ञाता द्रष्टा रहूं और अपने विक्रम करके अपने आप सुखी होऊँ। देखो भैया! करनेका काम एक ही यह है वह करनेमें आ ही नहीं रहा है। पर करना तो यही पड़ेगा। क्यों नहीं करनेमें आ रहा है? अपनी कमजोरीमें। अपने भावोंको ढीला कर दिया, मनको ढीला कर दिया तो हम स्वच्छन्द हो गए। अपने मनको नियंत्रित कर, स्वभावके दर्शन कर लिए तो उत्साह हो गया। क्या करना है, मैं तो कृतकृत्य हूं। मेरा तो कृतकृत्यत्वके अतिरिक्त कोई काम ही नहीं पड़ा है। कौनसा काम पड़ा है? अमुक अमुक। अरे वह तो मेरा काम ही नहीं है। प्रत्येक द्रव्य अपने आपमें परिणमते हैं। उनमें मेरा कुछ नहीं पड़ा है। मैं कृतकृत्य हूं। मैं जो कुछ करूँगा वह यही कि जानना चाहिए। चेतनाका चमत्कार है यह केवल जानता हूं प्रतिभास स्वरूप हूं, मैं इतना मात्र आत्माका मर्म हूं। अपनी शूरवीरतासे हटे तो दुनियाके सभी पदार्थोंसे मुझे दुःख है। हम दुःखके कारण बन जाएंगे और यदि हम प्रबल रहे तो दुनियाके कोई भी पदार्थ मुझे दुःखी नहीं कर सकते।

कभी देखा होगा जब बच्चे अथवा कोई भी कहते है कि पीठपर मुक्के लगाओ, जितने लगा सकते हो लगाओ। तो उस बच्चेकी हिम्मत बड़ी हो जाती है। वह कड़ी पीठ कर लेता है साँस भर लेता है। वह मुक्के लगवा लेता है, सह जाता है उसे क्लेश नहीं होता है। उनकी बात क्या कहें कि जो व्यायाम दिखाने वाले होते हैं अपनी छाती परसे हाथी को पार रखकर निकलवा देते हैं। वह भीतरमें तैयारी कर लेता है, इस

दुःख नही होता है। उनका दिल कडा बन जाता है, वे क्लेश महसूस नही करते हैं। इसी प्रकार यदि भीतरके मनको कडा बना लिया जाय, सयत कर लिया जाय तो यह जानना ही तो है ना। दृढतासे निणय होता कि अरे मैं तो जान गया, सो जानना ही तो मेरा स्वभाव है। मैं तो अपने आपके ज्ञानस्वरूपको जान गया। ऐसी बडी हिम्मत करलो तो जो विपदाए भी आती हैं वे चली जाती हैं। इन विपदाओका मुझपर असर नही होगा। अपने विक्रममे रहे तो कमके विक्रमका असर न होगा। ढीले ढाले बठे है, भीतरमे कोई तैयारी नहीं है और यदि कोई मुक्का लगा देवे तो अत्यन्त दुख होगा। इसी तरह ढीले ढाले शिथिल मन पडा हुआ है तो यह सब असर करता है। यह आत्मा खुद ही बाहरी चीजोको निमित्त पाकर अपने आपमे अपना असर डाल लिया करता है। जैसे कहते हैं कि खुद तो जगत नही, खुद तो स्वाधीन नही होते और कहते हैं कि स्टेशन लुटेरा है। अरे खुद जगते रहो कौन लूटेगा ? इसी तरह हम खुद स्वाधीन नही होते। नाम लगता है घरका, गृहस्थीका, धनका, वैभवका। इन इन चीजोने तो उसे लूट लिया, बर्बाद कर दिया, फाँस लिया। नाम बर्बाद करता है पर पदार्थको यो ही देखनेसे उस अज्ञानी को दुःख हो रहे हैं। दुःख तो कोई चीज ही नही है, दुःखोका नाम ही नाम है। ऐसी कल्पना करो कि जहाँ यह जचे कि दुःख कोई चीज नही है तो सुख होगा।

तीन चोर थे। चोरी करने जा रहे थे। रास्तेमे एक नया आदमी मिला। बोला कहाँ जा रहे हो ? बोले—चोरी करने जा रहे हैं। उसने कहा कि इससे क्या होगा ? बोले—धन लूटेंगे। अगर धन लेना है तो तुम भी चलो। नया व्यक्ति साथमे चल देता है। वह यह नही जानता है कि घरमे कैसे घुसा जाता है और कैसे बाहर निकला जाता है ? घरके अन्दर सब घुस गए। एक बूढे आदमी ने खास दिया। वे तीन तो भाग गए। अब वह नया आदमी भागना नही जानता था। उसने और कुछ न सोचा, घरमे जो ऊपर बडी लगी हुयी थी उस पर जाकर बैठ गया। गाँवके बहुतसे लोग एकत्रित हो गए। हल्ला मच गया। वहाँ दसों आदमी थे, दसों तरह के सवाल होते थे। घरके मालिकने कहा कि हम सब बातोको क्या जानें, ऊपर वाला जानें। उसके कहनेका तात्पय भगवानसे था कि भगवान जाने, पर उस छिपे हुए नए चोर ने यही समझा कि यह मेरे लिए कह रहा है। उसने सोचा कि मैं पकडा न जाऊ इसलिए बोला कि क्या मैं ही जानू ? वे तीन आदमी क्यो नही जानें। अब वह नया चोर पकड लिया गया। बाँधा गया, मारा पीटा गया। बन्द हो गया। यहाँ पर उसने केवल कल्पना ही तो कर लिया था कि यह मेरे लिए कहा जा रहा है इसलिए पकडा गया, मारा गया और बद किया गया। अब मुझे अपने आपको उठाना है। कमके विक्रम यदि चलते हैं तो मैं अपने विक्रमको करूँ, ज्ञाता दृष्टा बनूँ। इसके आगे हमे कुछ नही चाहिए, क्योकि

कुछ मिलेगा नहीं परमें, उनका परिणमन उनमें है, हमारा परिणमन हमारेमें है। जो कुछ मुझे ज्ञान होता है वह मेरेमें मेरेमें होता है, किसी परसे नहीं होता है। जो मुझको आनन्द प्रकट होता है वह आनंद मेरेमें मेरेमें प्रकट होता है। दूसरा निर्णय नहीं दूसरा न्याय नहीं। फिर किस बातकी परसे आशा करते हो? अपनी अन्तरदृष्टि बनाओ कि जैसी उसकी प्रतिभा है तैसी मेरी प्रतिभा है। सब अपनेमें हैं मैं अपने में हूं। इस प्रकारसे वस्तु के स्वरूपको निरखना यह ही पुरुषार्थ है, यही विक्रम है। एक शुद्ध ज्ञानका पुरुषार्थ करके अपनी इन सब वासनाओंको दूर करो। जो जो संस्कार भरे हुए हैं, जो जो वासनाएं जो जो कर्म क्रोध, मान, माया लोभ इत्यादि भरे हुए हैं उन सबको अपने पुरुषार्थसे अपने विक्रमसे दूर करो।

एक सांप था। उसने यह विचार कर लिया था कि मैं किसीको सताऊंगा नहीं। वह शांत था। सुबह उस घरमें बच्चेको एक कटोरा दूध दिया जाता था। वह बच्चा अपने सामने कटोरा रखे हुए दूध पी रहा था। इतनेमें वह सांप आया और उस कटोरेसे दूध पी लिया। उस बच्चेने सांपके कई थप्पड़ मारा पर सांपने सहन कर लिया। खूब दूध पीकर मस्त हो गया। इसी तरहसे वह नित्य प्रति दूध पीकर मस्त हो रहा था। दूसरे सांपने कहा कि क्या बात हो कि मोटे तगड़े हो रहे हो? उसने कहा कि तुम इसकी कला नहीं जानते हो। मैं नित्य प्रति बच्चेको पिलाया जाने वाला दूध पी लेता हूं। बच्चा मुझे मारता है और मैं क्षमा करता रहता हूं और थप्पड़ सहन करता रहता हूं, खूब दूध पीता हूं। बोला कि मैं भी ऐसा ही करूंगा। कहा कैसे करोगे? बोला कि मैं सौ थप्पड़ तक क्षमा कर दूंगा। सबेरा हुआ बच्चेके लिए दूध आया। दूसरा सांप बच्चेका दूध पीने लगा। बच्चेने एक थप्पड़ मारा, दो थप्पड़ मारा, दस थप्पड़ मारा, बीस थप्पड़ मारा, पचास थप्पड़ मारा, ९९ थप्पड़ मारा और १०० थप्पड़ मारा। सांप सब सहन करता गया। जब उस बच्चेने एक थप्पड़ और मारा तो तो झट उस सांपने फुंकार मारी। अब उस फुंकारको सुन सब लोग उसके ऊपर टूट पड़े और उन्होंने उसे मार डाला तो वह सांप मनमें वासना भरे हुए था कि मैं १०० थप्पड़ तक सहन करूंगा, आगे नहीं। इस वासनाके ही कारण वह मारा गया।

अंतरमें विषय कषाय जो भरे हुए हैं वे सब परेशान करते हैं। लोग कहते हैं कि जब जाप करते हैं तो दसों जगह मन जाता है और अगर अपनी दूकानपर रहते हैं तो केवल एक ही जगहपर मन रहता है। इसलिए जापसे अच्छी तो मेरी दूकान है। अरे दोनों एक ही जगह हैं। संस्कारसे कर्मबन्धन करते हैं। यह न समझें कि दुकानपर बैठनेमें उपयोग दस जगह नहीं जाता सो कर्मबन्ध नहीं होता। जैसी वासना है वैसा बंध है। बात तो बल्कि यह अच्छी समझनी चाहिये कि जो नाना विषयकषाय भरे हुए हैं उनको जापका प्रसंग

बतला देता है। अब ज्ञानोपयोग करके उन विषयकषायोंको निकाल दो। अब यह करना चाहिए कि अपने ज्ञानस्वभावका, ध्यानका, मननका, चिंतनका, विचार तो करना चाहिए और वासनाओंका, कषायोंका तिरस्कार करना चाहिए। यही मेरा विक्रम है कि मैं ज्ञानस्वरूप रहूं और अपना विक्रम मानूं। यदि मैंने यह विक्रम कर लिया तो मैं अपनेमें अपने लिए आनन्दस्वरूप हो सकता हूं।

इस लोकमें इस संयोगजन्य दृष्टिके द्वारा जो-जो कुछ संयोगजन्य पदार्थ मालूम हो रहे हैं सो न तो यह संयोगजन्य दृष्टि मैं हूं और न संयोगजन्य पदार्थ मैं हूं। मैं देख रहा हूं। किसको देख रहा हूं? इन संयोगजन्य पदार्थोंको अर्थात् परमाणुवोंके संयोगमें बने हुए इन ढांचोंको देख रहा हूं। कमंडल है, यह भी संयोगजन्य पदार्थ है, अपनी स्वतंत्र सत्ता रखने वाला पदार्थ नहीं है, क्योंकि यदि यह अपनी स्वतन्त्र सत्ता वाला है तो यह मिट नहीं सकता। जो सत् है वह त्रिकाल है। यह मिटा नहीं करता है। दरी है, चौकी है, शरीर है यह सारे के सारे संयोगजन्य पदार्थ हैं, स्वयं सारभूत नहीं हैं। इसीलिए यह मायारूप हैं, परमार्थ नहीं हैं। जो कुछ भी दीख रहे हैं ये कुछ परमार्थ नहीं हैं, वे सब संयोगजन्य हैं, मायारूप हैं, मिट जाने वाली चीजें हैं। वास्तविक बात तो कुछ और हो, परन्तु रूप कुछ और बन गया हो। यही तो माया है। ये इन्द्रजाल हैं। इन्द्रजाल कहते किसे हैं? इन्द्रजाल इन्द्र याने जीव उसका जाल सो इन्द्रजाल। यही जीवका जाल है, यही इन्द्रका जाल है यह ईश्वरकी लीला है खाली जीव, खाली ईश्वरसे यह लीला नहीं बनती, यह कर्म उपाधिमें बनती है, यह प्रकृतिके निमित्तसे बनती है, सो प्रकृतिकी चीज है। किसी भी तरफ देखते जावो यह सब मायामय वस्तु हैं, संयोगजन्य पदार्थ हैं, परमाणु रूप नहीं हैं। तो मोहमें मैं क्या बन रहा हूं? यही सब मैं हूं। मैं और कुछ नहीं हूं और ये असारभूत मायामय पदार्थ मायाकी वस्तुयें हैं, प्राकृतिक हैं याने प्रकृतिविकार हैं। ईश्वरकी लीला किन्हीं भी शब्दोंमें कह—जो कुछ माया दीख रही है इसके देखने वाला कौन है? किसके द्वारा हम देख रहे हैं? इस एकके द्वारा नहीं। दृष्टि नेत्रके द्वारा देखते हैं, यह दृष्टि ही संयोगजन्य होती है। जिसकी ओर देख रहे हैं वह भी मायामय वस्तु है। केवलके द्वार दीखते नहीं है यह दृष्टि केवल पुद्गल ही है, केवल जीव भी नहीं है ऐसा देखनेका काम करते हैं। दिखने वाले तो वे पुद्गल हैं वे सब कुछ नहीं देखते हैं। पुद्गल देखे तो मुर्दा शरीर भी देखे, जीव देखे तो ऐसी गंदी दृष्टि सिद्धकी भी हो जाय, ऐसा देखना न केवल आत्माका काम है, न केवल पुद्गलोंका काम है और दोनोंका मिल करके भी काम नहीं है और काम होता रहता है। देखो यह दृष्टि भी गजबकी माया है। मायामय चीजें हैं तो मायामय ही दिखाई पड़ती हैं। सो न मायामय चीजें मेरी हैं और न मायामय दृष्टि मेरी

है और न यह दोनों मैं और न ये दोनों मेरे। इस कारण इन दोनोंको समाप्त करके, त्याग करके अपनमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

त्याग कहते किसे है? यथार्थ ज्ञान कर लेना, इसीके मायने त्याग है। जैसे कहते हैं ना कि तुम्हारी इसीसे दोस्ती है और दोस्तीका त्याग कैसे होगा? जब अहितपनेकी कल्पनाएँ बना लेंगे तो दोस्तीसे त्याग हो जायगा और यदि हितपनेकी कल्पनासे, उसीको ढँगसे जान लिया तो इसीके मायने दोस्ती है। इसको मेरेसे अंदर विरोध है इसी जाननेके मायने त्याग है। मित्रता करता तो ग्रहण कुछ करता नहीं, परन्तु कल्पनाओं द्वारा मित्र बना लिया। तो जैसी ही कल्पना होगी वैसी ही मित्रता होगी और वैसा ही त्याग होगा। इसी तरह यह धन-वैभव बना हुआ है तो यह कुछ मायने नहीं रखता। वे भी भिन्न पदार्थ हैं। उनका लेना-देना आत्मामें नहीं है। बस मान लिया कि मेरे पास धन है। यदि यह कल्पना बनी कि मेरे पास धन है तो यह धनी बन गया और यदि यह मान लिया कि मेरे पास धन नहीं है तो गरीब बन गया। इस जीवमें पूर्ण सामर्थ्य है। यह जैसा अपनेको माने वैसा हो जायगा। जो जो कुछ दिखते हैं वे सब संयोगजन्य पदार्थ हैं। खास, यथार्थ परमार्थमें कुछ भी तत्त्व नहीं दिखता। जिस जीवसे प्रीति होती है, मोह होता है वह पदार्थ अत्यन्त भिन्न है। उसकी प्रीति करके उन पदार्थोंमें कुछ असर बदल नहीं जाता, कुछ अपने हो नहीं जाते। जैसे देखा होगा कि और बहुतसे मनुष्य हैं जिनसे बोलनेमें भी प्रसंग नहीं होता और आपका मोह और प्रीति उत्पन्न हो जाती है तो मोह और प्रीतिका कारण तो तुम्हीं हो। केवल अपने अन्दर कल्पनाएं मोह और प्रीतिकी भर ली हैं। अब तुम्हीं दुःखी रहो वह तो जो है सो है। जैसे किसीको बुरा लग जाय तो कहते हैं कि तुम्हारे पेटमें दर्द चुरने लगा। जो बुरे संकल्प कर, बुरे विचार कर तो वह अपने अन्दर घुस जाता है, मिट जाता है, बरबाद हो जाता है। जो खोटे भाव करेगा वह स्वयं मिट जायगा। नश्वर मायामय वस्तुओंका संग्रह करनेके उद्देश्यसे अपने आपकी रुचि छोड़कर झूठ बोलना आदि करे तो यह अपने आपपर बहुत बड़ा अत्याचार है। और यदि अपने ईमान और सच्चाईपर दृढ़ होकर और फिर अपने बलमें धमस स्खलित न होकर देखो तो परमात्म एक चमत्कारसा बैठा हुआ आनन्द उत्पन्न होता है। ये कुछ नहीं। इन मायामय चीजोंको मायामय दृष्टिसे निरखकर मायामय प्रयोगके द्वारा इनकी कल्पना बना लें तो उत्थान नहीं होगा।

मंदिरमें भगवानकी मूर्तिके सामने ध्यान करते हैं तो किस बातका करते हैं? उस प्रभुकी मूर्तिकी मुद्रा ऐसी है कि मानो वह कह रही है कि हे आत्मन्! तू समस्त जंजाल छोड़कर कुटुम्ब परिवार इत्यादिका तू त्याग कर, मुझ जैसा विश्राम पा, तेरा किसीसे प्रयोजन नहीं है। तू अपना प्रयोजन किसीसे न रख। तू अपने आपमें ध्यान करके शान्त होगा

और अपने आपके स्वरूपमे मग्न होगा। केवल तू शुद्ध अपने आप रहेगा और आनन्दमग्न हो जायगा। हे भगवन्! आप तो शुद्ध रहे, अपने आपमे आनन्दमग्न हो गए। धन्य है तुम्हे भगवन! यही आपकी महत्ता है। हे आत्मन्! ऐसी महत्ताका तू विचार कर, ऐसा ही अपने आपको निरखकर आनन्दमग्न हो जा। किमीसे तेरा प्रयोजन न रह और स्वयमे विचार करके आनन्दमग्न हो जा तो तेरी स्थिति उस भगवानसरीखी हो सकती है।

तू मदिरमे मूर्तिको देखकर इस प्रकारसे ध्यान कर कि उस मूर्तिको देखनेमे तुझे शाति की शिक्षा मिले, त्यागकी शिक्षा मिले। यही वास्तविक मूर्तिकी पूजा है। और यदि मूर्तिको खूब सजाए, ऊंचा आसन बनाए, सिंहासन बनाए और उस मूर्तिको बैठाए और यदि उस मूर्तिसे शिक्षा न ले सके तो वास्तविक पूजा नही कही जायगी। उस मूर्तिसे तुम्हें त्यागकी शिक्षा प्राप्त होगी, शाति एव धैर्यकी शिक्षा प्राप्त होगी।

हे आत्मन्! त्याग ही सार है। तू त्यागको ही अपना। यदि तू त्यागको अपनाता है तो आत्माको क्लेश नही है और यदि त्यागसे विमुख होकर इस प्रकारके दूषित वातावरण मे पडे तो आजीवन क्लेश रहेंगे। मूर्ति जो कि मन्दिरके अदर होती है उसकी मुद्रा त्यागमय है। हे जगतके प्राणी! यदि परिग्रहका त्याग नही, स्त्री पुत्रासे वैराग्य नही और उस पटाग बठनेका ही काम रहा तो आजीवन क्लेश होंगे। अरे अपनमे विराजमान साक्षात् परमात्म तत्त्वको देखो और अपने समस्त मायामोहोको त्यागो। यदि यह भाव उत्पन्न होता है तो तुझे सुख है। तेरे सुखी बननेका अच्छा उपाय है कि जैसी शात मूर्ति है वैसा शान्त बननेकी कोशिश करो। उस मूर्तिके दर्शनसे जो शिक्षा मिलेगी वह तेरे लिए कल्याणकारी है। देखो जिनमे फसे हुए हो वे सब मायामय पदार्थ है। तू उन समस्त मायामयी पदार्थोंसे प्रीति मत कर। सावधान! ये जर है। यह सब जरम है। तू परसे प्रीति मत कर। यदि परकी प्रीतिमे फस गया तो तुझे क्लेश हैं। प्रीति करते समय तो वह सब अच्छा लगता है। स्त्री बडी उत्तम है, बडी गुणवान है, बडी रूपवान है, पुत्र बडे अच्छे हैं, मित्र बडे सच्चे हैं। पर ये तेरे नही हो सकते है। ये सब तेरे लिए जजाल है। इनसे तेरा हित कुछ नही, अहित ही रहेगा। यह गृहस्थी बनाई गई है, गृहस्थधर्म बताया गया है, पर स्त्री पुत्रोंसे आनन्द प्राप्त करो ही को नही बताया गया है। इसलिये यह गृहस्थ धर्म है कि हे भाई! तेरा काम तो यह है कि अपने सारे आरम्भ परिग्रहका त्याग करके अपने अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य व आकिञ्चन्यमे आ करके आत्मयोगी बनकर मोक्षमे पधारो, किन्तु जो कोई कायर है, कम-जोर है, कुछ कर नही सकता है तो उसे बताया है कि इस प्रकारकी गृहस्थचर्या धारण करके, तुम धर्मके कार्योंमे लगो। यदि धर्मके कार्योंमे लगोगे तो तुम्हारा कल्याण निश्चित है। यह गृहस्थी इसलिये बसाई है कि तुमसे महाव्रत नही पल सकता तो एक स्त्री व छोटी गृहस्थीमे

सतोष करके बाकी सब पापोसे दूर रहो।

हे आत्मन्! शत्रुता बनाए रहना और झंझटोमे पडा रहना यह गृहस्थोका धर्म नही है। इसलिए तू इन समस्त झंझटो एव शत्रुताग्रोसे विलग होकर अपने आपमे रमो। जब अपने आपमे रमोगे तभी गुजारा होगा अन्यथा नही। जो बच्चा अच्छी तरहसे नही चल सकता है उसके लिए माता अगुलीका सहारा देती है। इसी प्रकारसे जो सयोगदृष्टिसे देखते है यह मैं नही हू, वह मेरा नही है, इसलिए मैं इन सबको त्याग देता हू, त्यागना क्या है—यह मान लो कि यह भिन्न है, भाव सत् है। मेरा इनसे कुछ सम्बध नही है। मैं तो एक ज्ञानानन्द भावात्मक वस्तु हू, स्वय ज्ञान दस्वरूप हू, परिपूर्ण हू, अधूरा नही हू। कमी नही है। हमे बनना नही है हम बने बनाए हैं। मेरेमे सब वभव भरा है सब तैयार है। केवल ऊपरकी ढकी हुई अज्ञानकी चद्दरको उठानेकी जरूरत है। जस भोजन भीतर सब तैयार है। किन्तु उस थाली पर छन्ना ढका है तो सिद्ध है कि छन्ना उठने की जरूरत है। आत्मामे ज्ञान आनन्द सुख इत्यादि समस्त तैयार भर पडे हुए हैं। केवल जानने भरकी जरूरत है। अज्ञान का छन्ना पडा हुआ है उसे हटा लो पूरी सावधानी करके अपने जौहरको देखो और उसका आनन्द लूटो। इन त्यागे जाने योग्य पदार्थोमे पडनेसे कभी कुछ पूरा नही पडेगा। अत मैं इन सयोगजन्य पदार्थोका त्याग करूँ और अपनमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

यह मैं आत्मा अन्य किसी जगह नही हू। मैं मुझमे ही हू। यह मैं आत्मा किसी अन्यका नही हू। मै मेरा ही हू। यह मैं आत्मा कभी नष्ट नही हुआ और न नष्ट हूगा। मैं ध्रुव हू। यह मैं आत्मा अपनेमे बाहर कभी नही गया जो मुझको अपनेको ढूँढनेकी हैरानी करनी पडे क्योकि यह ज्ञानस्वरूप आत्मा यहीका यही विराजमान है। तीन लोकके अधिपति बननेका उपाय अकिञ्चनस्वरूप आत्माका दर्शन है। एक जगह गुरुभद्र स्वामी ने कहा कि—

अकिञ्चनोहमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवे।
योगिगम्य तव प्रोक्त रहस्य परमात्मन ॥

गुरु जी अपने शिष्यसे कहते हैं कि आजसे तुम्हे परमात्मा बनने का रहस्य बतलाऊँ तो शिष्यने कहा कि हाँ हा गुरु जी बतलाग्रो। गुरुजी ने कहा देखो मैं अकिंचन हू मेरा कहीं कुछ नही है, मेरा मैं ही हू। मेरेसे बाहर मेरा न तो गुण है, न पर्याय है, न असर है, न लगाव है और कुछ भी नही है, ऐसा मानकर टनाकर बैठ जावो, ऐसा अपने मनमे जिद बना कर ठहर जावो तो तुम तीन लोकके अधिपति हो जावोगे। देखो यह परमऔषधि पदार्थ है। देखो सब कष्टोंके मिटनेकी सबसे परमऔषधि है अकिञ्चन की भावना। जैसे कोई रोग हो जाय तो कही उस डाक्टरसे इलाज करवाया, कही उस डाक्टरसे इलाज करवाया। सबसे इलाज करवाया परन्तु किसीसे भी आराम नही हुआ तो जिसको वह ज्यादा

समझता है उसके लिए आखिरीमे इलाज करवानेके लिए कहता है और उसीमे इलाज करवाएगा। अरे अब आखिरी एक इलाज तो करवा लो। इसी तरह ससारके दुःख दूर करने हैं, इलाज कई तरहका बहुत कराया। धन, वैभव हो जाय, कुटुम्ब परिवार हो जाय, लड़के बच्चे हो जाएँ बहुत यत्न किये इलाज किये किन्तु लड़के बच्चे हो जाएँ। बहुत यत्न किये, इलाज किये, किन्तु इनमे नही दूर हुए। कितने भी उपाय कर डालो पर दुःख दूर नही होंगे इनसे। दुःख दूर करनेका इलाज तो यह है कि अपनेको अकिंचन मानो। बस ससारकी सारी चिंताए, सारे क्लेश समाप्त हो जावेंगे। अपनेको मानो कि मैं अकिंचन हू, मेरा तो मैं ही हू, अन्य कोई नही है। यही सबसे अच्छा इलाज है। सो भैया! अपने को अकिंचन मानकर अपने आपमे विश्राम तो कर लो। यदि अपनेको अकिंचन मान लिया और अपने आपमे ही विश्राम पाया तो त्रिलोकके अधिपति हो जाओगे। मैं यहाँ अपने आपमे हू, अपने ही स्वरूपको लिए हू, मेरेमे अनत आनन्द भरा हुआ है, मैं कैसा विलक्षण, सबसे निराला ज्ञानानन्दमय, परम-पवित्र पदार्थ हू? कही बाहर नही हू, अन्यत्र नही गया हुआ हू पर अपने आपको न निरखकर यह जीव शून्य बन जाता है, अपना पता ही नही रखता है और बाह्यपे दृष्टि रखता है अपने को अकिञ्चन भावके लगता। इसीसे उसे क्लेश हुआ करते है। हम अपने आपको समझें कि मै अकिंचन हू। मेरेसे बाहर मेरा कुछ नही है और जो कुछ मुझमे है वह कही बाहरसे नही आता है। मेरेमे तो मेरा स्वरूप चतुष्टय विद्यमान है, यह मैं ज्योतिर्मय पदार्थ हू। देखो लोकव्यवहारम भी उस मनुष्यकी इज्जत बढ़ती है। जो मनुष्य यह कहता है कि मैं कुछ नही हू, जीवनभर बड दानके भी काम कर लिए देश और समाजकी सेवाओका भी काम कर लिया तो उनकी प्रतिष्ठा भी बढ गई उनकी शोभा बढ गई, उनका सम्मान भी होता है। पर यह तब तक है जब तक वह अपनेको ना कुछ कहता है। उसने परमार्थसे भी देख लिया कि मै औरोके लिए कोई चीज नही हू, मेरा जगतमे कुछ नही है, मैं केवल अपना स्वरूपमात्र हू—यदि मैं अपनेको इस तरहसे समझूं तो अतरमे पारमार्थिक इज्जत हो जायगी। आनन्द चाहते हो तो आनन्दका उपाय इसी अमूततत्त्वका ही लेना है—मैं अकिंचन हू मेरा कुछ नही है।

एक साधु था। उसकी लगोटीको चूहे काट जाया करते थे। अब साधुको यह बहुत बडी हैरानी हुई। साधुने चूहोंसे रक्षाके लिए बिल्ली पाली। बिल्ली दूध पीती थी। अब उस बिल्लीको दूध पिलानेके लिए एक गाय पाली। उस गायको चराने वाला कोई नौकर या नौकरानी होना चाहिए। गायको चरानेके लिए एक नौकरानी रख लिया। कुछ समयके बाद उस दासीके कुसगिनी होनेसे लड़का पदा हुआ। उस साधुने देखा कि पहले बिल्ली थी, फिर गाय हुई, गायका बच्चा हुआ, फिर नौकरानी हुई, फिर लडका हुआ। इस तरहसे मेरा घर

तो भर गया। अब उह किसी गाँव जानेकी जरूरत पडी, क्योंकि घर तो भर गया था उसकी गुजर करनी थी। रास्तेमे एक नदी पडी। उस नदीसे सब निकलने लगे तो अचानक ही एक छोटीसी बाढ आयी जिससे सबके पर उखड गए सब बहने लगे। दासीने झट साधुकी लगोटी को पकडा, क्योंकि रक्षा करने वाले तो वही थे। इस तरहसे सब उस साधुकी शरणमे गए। बिल्ली भी गयी, गाय, गायका बच्चा तथा लडका इत्यादि भी सब उस साधुकी शरणमे गए। अब तो साधु भी डूबने लगा। अब वह साधु सोचता है कि अरे यह सारी बला तो केवल लगोटके कारण आई है। लगोटके ही कारण गाय, गायका बच्चा, बिल्ली, दासी दासीका लडका इत्यादिसे विडम्बना हो गई है। अब साधुने लगोटको झटकेसे निकालकर फेंक दिया और सत्य विचारने लगा कि ये जीव मेरे कुछ नही हैं इनसे मेरा कोई सम्बध नही है। उसे ज्ञान हो गया। देखो भैया! उस साधुने परसे सम्बध स्थापित कर लिया था तो उसे क्या क्या मुसीबतें उठानी पडी? जो अपनेको परसे मिला हुआ समझता है वह डूब जायगा। और जो अपनेको कुछ नही समझता है वह तिर जायगा।

किसी घरमे होता है कि बाप बडी उमरका हो जाता है। पाच सात बच्चे भी हो जाते हैं। बच्चोका रोजिगार भी अच्छा चलता है। बाप उन बच्चोके काममे दखल देता है। दखल देनेसे नुकसान हो रहा है। कही ४–६ महीनेको वह बूढा बाप न रहे, किसी जगह चला जाय तो बच्चे सुख शान्तिसे काम करते हैं। बाप तो यह समझता है कि हम काम कर रहे हैं पर बच्चे मुसीबत उठाते व नुकसान भी यदि बाप बच्चोसे काम न पूछे तो बाप खुश है और बच्चे भी खुश हैं। देखो ना हम जीवने भी इन शरीरवर्गणाओमे दखल दिया तो शरीर भी खराब हो गया व आत्मा भी खराब होगा। हम तो आत्मा हैं, वह तो बडा भला है, इस आत्माका जाननेका ही काम है। मेरेमे कोई भी विपदाएँ हो, कोई भी बाहरी विवाद हो दुःख नही पहुचाते है। किसी भी प्रकार की विपदाए इस आत्मामे नही आती हैं। इन आहारवर्गणाओमे जब यह दखल देता है तो यह भी बुरा होता है व शरीरवर्गणा भी बुरी होती है। यह जीव अकेला रहकर बडे आराममे बना रहता है। ये पुद्गल भी मांसादि रहित पवित्र बने रहते हैं।

इसीमे पुद्गलकी यह दशा हो गई। इसीसे जीवकी यह दशा हो गई। अच्छी युक्ती का बढिया लडडू है बढिया बना है, खूब मजेदार है, तबियत भी ठीक है, स्वास्थ्य भी अच्छा है यह आदमी भी अच्छा है। बस अब लडडू खाए। लडडू खानेसे लडडूकी क्या हालत हुई सो मुँह बाकर एनाम देख लो, चिपर चिपर हो रहा, यहाँ खानेमे आसक्त हुए पुरुषकी दशा देख लो, बीमारीने आक्रमण कर लिया। यह हुई खाने वालेकी दशा। खाने वाले की तो तबियत खराब ही जाती है और लडडू बेकार हो जाता है। यह हुई लडडू महाराजकी दशा। लडडू

अपनी जगह पर अच्छा था, आदमी अपनी जगहपर अच्छा था। अपनी जगह पर रहते तो दोनो मजेमे थे। य दुनियाके सार वैभव मित्रजन, कुटुम्ब, परिवार इत्यादि भी हो तो उनसे पूरा नही पडेगा। इन किन्हीसे भी हमारा पूरा न पडेगा खराबी ही रहेगी। जो पदाथ जहाँ जिसमे, जिस स्वरूपमे है बना रहने दे उसमे पडे तो यह भी खराबी है। यह अकिंचन भाव अमृत है। कितने ही कष्ट हो जरा अपनेको ज्ञानमे अकिंचन बना लो सब मिट जायेंग।

अरे भाई अपने को सबसे निराला समझो। यह समझो कि मैं अकिंचन हू, मेरा यही कुछ नही है। मैं अकिंचन हू तो आनन्दमग्न हू। यह अकिंचन भाव अच्छा है। यदि अकिंचन भाव अपनेमे न आया तो बडी बडी झझटें पड जावेंगी। जसे कि लौकिक झझटें बहुत पड गई हो बडी चितायें हो गई हो, इसमे २० हजार लगे इसमे ५० हजार लगे, इसमें ५ हजार लेना। टोटल किया तो ७५ हजारका नुकसान आया। अरे यह नुकसान मेरा कुछ नही है। हो जाने दो, इससे मुझे कुछ नुकसान नही पहुच सकता है--इस प्रकार या यदि विचार बन जावे तो लो दु ख मिट गया और यदि इसके विपरीत विचार बने तो क्लेश बढते ही चले जावेंगे। जसे सट्टा खेलते हैं। मिलता जुलता उसमे कुछ नहीं। केवल कहते हैं कि इतने पैसे लगे है। यह खरीदा वह खरीदा। खरीदना कुछ नही पडा, पैस कुछ नही लगाने पडे सट्टा खेलने हैं। इसका फल केवल यह हुआ कि पूरे रात दिन जगे। इसी तरह इन पदार्थोंमे हमे लेना देना कुछ नही। इनसे अपना सम्बन्ध कर लेने म नुकसान ही है। जसे सट्टा खेलनेका फल केवल पूरी रातका जागरण है इसी प्रकारसे परपदार्थोंसे सम्बन्ध स्थापित करना उनको अपना इष्ट, अनिष्ट मानना यह सब धोखा है, इसका फल क्लेश है, परन्तु यदि अपनेको अकिंचन मान लें तो तीन लोकके अधिपति हो जावें। अरे घरमें बच्चो मे कोई चीजका झगडा हो जाय। किसी चीजके वितरणमे कोई बच्चा यह कहे कि हम यह चीज नही लेंगे, और हमे कुछ नही चाहिए। माँ बाप कहते जाते हैं कि नही बेटा और ले लो। बेटा नही कर देता है। अब उस नही कर देनेके बदलेमे और और मिलता है जो शांत है, जिसने नही, नही कहा। सीधे सीधे शातिरूपसे तो उसे और और मिलता है, अगर वह कह देता है कि हमे और चाहिए तो उसके लिए मा बाप कह देंगे कि अब नही मिलेगा। इसी प्रकार हे आत्मन् ज्यो ज्यो परपदार्थोंसे बाहर होते जाओगे, उनके लिए यह कहोगे कि मुझे कुछ नही चाहिए तो पुण्य होता जायगा और त्रिलोकके अधिपति हो जाओगे। ज्यो ज्यो बाह्यमे हटोगे त्यो त्यो लो। हे जगतके प्राणी! परपदार्थोंमे न पडो ये सब गोरखधधे हैं। अरे तुम कहाँ अपना विश्वास कर रहे हो? अरे ये सब परपदाथ तुम्हारे लिए हितकर नही है। कौनसी ऐसी चीज है जिसमे पूरा पड जायगा? अरे पूरा पडने वाली कोई भी चीज नही है। यदि तू उनमे पडा तो तेरी दशा खराब हो जायगी। तू अपने को अकिंचन मान। ऐसा

अपने आपमे विश्वास कर कि मैं अपने आपमे हू, अन्यत्र नही हू, परिपूर्ण हू नष्ट नही हू। मैं बाहर नही गया हू—इस तरह सबकी ओर उपेक्षा कर रहे और जिसके केवल पर्यायबुद्धि के कारण भीतरमे लगाव होता है कि मैं यह इसान हू, मै अमुक हू, मैं अमुक चंद हू इत्यादि पर्याय बुद्धिके हो जानेसे मेरे ऊपर खोटे अभिप्राय बढ जाते है।

भैया! देखो—एक अपने आपसे परिचित न होकर जिन्दगी बेकार चली जा रही है। चाहे आकिञ्चन भावना हो, चाहे ज्ञानमात्र भावना हो प्रयोजन दोनोंका एक है। मै केवल ज्ञानमात्र हू, जानन एक विलक्षण भाव है जिसका उपाय दुनियामे कही नही मिलता है किसीको स्पष्ट नही दीखता है, उस जाननके पेट नही है पैर नहीं है, शक्ल नही है रूप रस, गध इत्यादि उस जाननमे नही हैं, ऐसा ही मै जाननमात्र हू आयकमात्र हू, इसके आगे मेरा लगाव नही है। यदि हम ऐसा अपनेको मानते हैं तो मौज है और यदि इसके विपरीत हम अपने को समझते हैं, तो हमे क्लेश हैं। हम अब तो अपने घरमे रहते ही नही, कितने कष्ट की बात है? अरे बाहर भी रहते हो तो घरमे दो चार घटको तो घुसा ही करते हैं। अनन्तकाल व्यतीत हो गए, बाहर बाहर ही दृष्टि रही और विपदाओके साधनोकी ओर ही दृष्टि रही। अरे ज्ञानघन आत्माको देखो, सोने चाँदीके ढेरोमे क्या रक्खा है? दौलतसे, धन वैभवसे तुम्हारा क्या विकास क्या उत्थान हो जायगा? हे जगतके प्राणी! तू अपनेमे ही सकल्प विकल्प करके दु खी होता है। तेरी आत्मामे तो दु खरूप है ही नही। वह तो आनन्द घन है, फिर तू क्यो दु खी हो रहा है? अरे इन सकल्पविकल्पोको टाल दो ता आनन्द उत्पन्न हो जायगा।

मेरा सुधार करने वाला, मेरा बिगाड करने वाला मै ही हू। मुझे अपनेका ज्ञान स्वरूप, जानन क्रमात्र निरखकर आनन्दमग्न होना चाहिए। यह प्रभु तो लो यहाँ विराजमान हैं, अतिनिकट क्या, यहा मैं हू। परमात्मतत्त्व कुछ अन्य वस्तु नही है। चेतनतत्त्व ही परमात्मा होता है। केवल यथार्थ समझ लने व न समझनेका ही सारा अन्तर हो जाता है। जिन्होंने अपना यथार्थस्वरूप समझा और इसी कारण द्रव्येन्द्रिय व विषयभूत वस्तुमे अपना प्रयोजन नहीं समझा सो तीनोसे उपेक्षा की और उपेक्षा करके अपने ज्ञानस्वरूपमे रत हुए तो परमात्मतत्त्व प्रकट हो जाता है। ऐसा ही स्वरूप मेरा है। उसका ध्यान कर सकलजाल मुक्त हो जानेका उपाय कर लेना ही परमविवेक है।

देखो भाई—ये विषय है जिनमे ससारी प्राणी अन्धा हो जाता है, विषय भी भयकर है। विष तो एक ही भवमे प्राणका हरण करता है परन्तु विषयोकी आसक्ति भव भव मूल प्राण चैतन्य प्राणका हरण करता है अर्थात् ज्ञानदर्शनका विकास नही होने देता। ससारके विभिन्न तिर्यञ्चोको तो देखो, ये तो देखनेमे आ ही रहे हैं—हाथी हथिनाके स्पर्शमे मग्न जगलमे बनावटी हथिनीके समीप दौडकर जाता है और उस स्थलपर बा

जाना है दुखी होता है और पराधीन हो जाता है। मछलियोंको तो देखो जरासे मांसखण्डके खानेके लोलुपी होकर धीमरके जालमें फंस जाती है। धीमर लोग फिर उनको पकड़कर अलग रख देते हैं वे मर जाती हैं या कहीं कहीं तो वे धीमर मछलियोंको जिन्दा ही आगमें भून डालते हैं। भ्रमर गंधके वशीभूत होकर पुष्पके भीतर ही निःश्वास हो जाते है। पतंगे तो रोशनीमें ज्वालापर पड़कर मर जाया करते हैं, यह तो प्रायः देखते ही रहते होंगे। साँप हिरण आदि शब्दके विषयमें मस्त होकर पकड़ लिये जाते है सपेरे व शिकारियों द्वारा। जब इन जीवोंकी एक एक इन्द्रियके विषयके वशमें हो ऐसी दुर्गति हो जाती है तो हाय यह मनुष्य कीट जो पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंका दास है, इसका क्या हाल होगा?

अतः भैया! पुण्यके उदयसे पाया तो सब कुछ समागम है, परन्तु उसके भोगनेसे पहिले कुछ विवेकका भी आदर कर लो अन्यथा पछतावा करना ही हाथ रहेगा। विषयोंको विषकी तरह अहितकारी समझकर और विषयोंके साधनभूत शरीरको आत्मासे पृथक् मानकर उन सबमें उपेक्षा करना—यह भाव ही धर्ममार्ग है। ये विषयभोग संसारमें परिभ्रमण कराते है, जन्म परम्परा बढ़ाते हैं। तब कर्तव्य क्या है कि इन विषयोंको छोड़कर और उन विषयोंके साधनभूत शरीर है सो इस शरीरको भी आत्मासे पृथक देखकर सबसे उपेक्षा कर दो। मैं अपने आपमें उपयोगी होऊँ।

इन्द्रिय विषयोंको जीतनेके लिए मुख्य उपाय ज्ञान ही है। घर छोड़ दें अथवा धर्मके नामपर किसीकी उपासना करनें, बड़े बड़े कार्य कर लें, ये सब ठीक है, परन्तु निर्विषय आत्मतत्त्वका दर्शन जब तक नहीं तब तक इन्द्रियोंका विजय नहीं। इन्द्रियविजय बिना मोक्षमार्ग नहीं। इन्द्रिय विषयोंको जीतनेके लिए हमें कैसा उपयोग बनाना है? इस सम्बंधमें समयसारमें श्रीअमृतचंदजी सूरि जो कहते है कि विषय भोगका सम्बंध तीन बातोंमें हुआ करता है—१—द्रव्यइन्द्रिय, २—भावइन्द्रिय और ३—विषयभूत पदार्थ। विषयभोगका सम्बन्ध इनका रहा करता है। द्रव्यइन्द्रियके निमित्तसे उनके विषयभूत इन्द्रियोंमें ज्ञान करके उनमें ही रम गया। इस तरहसे भोग भोगनेके लिए तीनसे वास्ता पड़ता है—द्रव्यइन्द्रिय, इन्द्रिय और विषयभूत पदार्थ। द्रव्येन्द्रिय तो शरीरमें दिखने वाले ये है। द्रव्यइन्द्रियके निमित्तसे ज्ञान द्वारा जानकारी होती है, यह जानकारी भावेन्द्रिय है और विषयभूत पदार्थ,ये जगतके सब पुद्गल पदार्थ हैं, जो विषय पांच प्रकारके होते है। स्पर्श तो स्पर्शनका विषय है, रस रसनाका विषय है, गंध घ्राणका विषय है, रूप चक्षुका और शब्द श्रोत्रका विषय है। चक्षुइन्द्रिय और रसनाइन्द्रिय तो दुनियामें कमाल कर रहे हैं, हम इन इन्द्रियोंके प्रति कैसा ज्ञान बनावें कि विषयोंसे हटकर अपने स्वभावमें लग जावें। कहते हैं कि इन्द्रिय क्या है? पुद्गल हैं, जानने वाली नहीं हैं, क्योंकि यह मैं आत्मा आत्मा हूं, चैतन्यस्वरूप हूं। जो जानता हूं, ज्ञानमय तत्त्व हूं। मैं सबसे

निराला हूं। मुझमें और इन पौद्गलिक इन्द्रियोंमें कितना अन्तर है? यह इन्द्रियाँ तो मैं हूं ही नहीं, ये तो मेरेसे भिन्न हैं। मिथ्या ज्ञान करके ही हम इन इन्द्रियोंके वशीभूत हो जाते हैं और इन इन्द्रियोंके वशीभूत होकर दुःख उठाते हैं।

इन द्रव्य इन्द्रियोंके द्वारा भोगभावन विषय हो जाते हैं क्लेश हो जाते हैं। तो हमें इनका विजय करनेके लिये इनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए। लोग कहते हैं कि भली मार कर तारको दिलसे दिया उतार। अरे इन इन्द्रियोंने जितना हमें कष्ट दिया है, अन्य ने नहीं दिया है। जैसे किसी परिवारमें प्रधान पुरुष तथा स्त्री पुत्रमें कुछ अनबन हो जाय। प्रधान पुरुष उन अधीनस्थोंसे उपेक्षा कर जाये, अलग रहे, उनसे बोलना ही छोड़ दे, स्त्रीको दुःख होगा और कहेगी कि बड़ी मार करतारकी दिलसे दिया उतार। वह सोचती है अरे पतिदेव हमसे विरक्त क्यों हो गए हैं? इससे अच्छा तो यह भी था दो चार दिन खाना न देते, मार देते, परन्तु हम दिलसे क्यों उतार दिया है? हममें वह स्नेह क्या नहीं करते हैं, हमसे बोलते नहीं। हैं, और हमारी ओर निगाह भी नहीं डालते हैं। अरे ऐसा ही इन इन्द्रियोंको दंड दो। इन्द्रियोंकी विजय करनेके लिये क्या जीभ काट डालो, नाक काट डालो, आँखें फोड़ दो। नहीं, इन्द्रियविजयका उपाय है उपेक्षा। किसी दूसरेकी ओर मुड़कर भी न देखो। अरे यह तो जड़ है, इनसे तू विरक्त है, तू तो एक चैतन्य पदार्थ है। तू इन्द्रियोंमें क्यों फंसा हुआ है? और इन इन्द्रियोंके वशीभूत होकर तेरा ज्ञान दब रहा है। इन इन्द्रियोंके कारण ही तो स्पष्ट बात भी समझमें नहीं आती है। अरे तू तो अपने आपको सोच कि मैं इन्द्रियोंसे अपना सम्बन्ध नहीं रखता। मेरी तो इन्द्रियोंकी ओर ज्ञानदृष्टि भी नहीं जाती। तू अपनेको ज्ञान विषे आत्मा स्वतन्त्र हूं। यदि तू अपने को इस प्रकारका बना ले तो यही हुआ इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करना। इन इन्द्रियोंके द्वारा ही नाना कषाय बढ़ते हैं। इन्द्रियोंके निमित्तसे जो ज्ञान होता है उसे कहते हैं भावइन्द्रिय। इन्द्रियोंके प्रति हमारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान है पराधीन ज्ञान है किन्तु मैं आत्मा तो अपूर्ण नहीं हूं यह आत्मा तो पूर्ण ज्ञान मय है। इन्द्रियोंके द्वारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान होता है। अरे परस्पर इन दोनों ज्ञानोंमें अन्तर है। मैं अपूर्ण ज्ञान नहीं हूं। मैं तो अपनेको इन्द्रियज्ञानसे भिन्न सहज ज्ञानमय रचता हूं क्योंकि वह तो अपूर्व ज्ञान है। मुझे तो चाहिए कि इन इन्द्रियोंके खण्ड खण्ड ज्ञान से मैं पृथक् अखण्डज्ञानमय आपको अनुभवूं, इन्द्रियज्ञानसे विलग होऊं।

रसनाइन्द्रियको तो देखो इसका विषय भावइन्द्रिय ज्ञानके द्वारा हो ज्ञान पाया है। कोई अंधेरेमें बैठा हुआ आम चूस रहा है। उसको पता नहीं कि आम कलमी है कि दशहरी है कि देशी है, केवल उस आमके रसको जब जिह्वामें रखता है तब उसे आमका पता चलता है कि आम है। फिर भी उसे आमके रूपका पता नहीं चलता है। उसे यह पता नहीं कि आम

किस रगका है, किस रूपका है ? देखो यह अपूर्ण ज्ञान हुआ था । आमके विषयमें पूर्ण जानकारी नहीं हो पाई । यह ही देखो इन्द्रियज्ञान है ।

भाई अपनेको इन इन्द्रियोंके उपयोगसे हटाओ । ये बाह्यपदार्थ जड हैं सग हैं परिग्रह है, पर यह मैं आत्मा चैतन्यस्वरूप हू, केवल हू, असग हू, किन्हीं अन्यपदार्थोंसे मेरा सम्बन्ध नहीं है । ये सब स्वरूप अपनी अपनी सत्तामात्रमें है, मैं अपनी सत्तामात्र हू—ऐसा भेद करके उन बाह्यपदार्थोंसे अपना सम्बन्ध न स्थापित करो, उनमें दृष्टि न डालो । केवल अपने आपको निरखो । अरे अपने इन विषयोंको जीतनेका क्या कोई और उपाय है ? इन्हे कुवेंमें डाल दो अथवा इन्हें तोड फोड दो । अरे इन इन्द्रियोंको बर्बाद कर दो, कान कतर दो, आँखें फोड दो । विषयोंमें विजय प्राप्त करने का क्या यही उपाय है ? अरे इन इन्द्रियोंका बहिष्कार कर दो, दिलसे उतार दो । इसी प्रकारसे विषयोंको दिलसे उतार दो, मोहको भुला दो । अरे ये सब भिन्न भिन्न रूपोंमें जन्ममरणके चक्रमें डालने वाले हैं, इन विषयकषायोंको त्याग दो । इन विषयोंके सारभूत शरीरको अपने स्वरूपसे पृथक देखो और अपने को ज्ञानमात्र, सबसे निराला समझो और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होवो । इस जगतमें जितने भी लोग पराधीन बने रहते है वे विषयोंके कारण ही पराधीन बन रहते हैं । अरे अपने विषयों को दूर करो । जो पराधीनता है, वह विषयोंमें ही है । इसलिये विषयोंसे छुटकारा प्राप्त करो । कोई किसीसे बधा है क्या ? अरे कोई किसीसे बँधा हुआ नहीं है । केवल खुद ही में कल्पनाएँ करके विकल्प बना लिया है । विकल्प बन जानेसे मोह हो गया है और मोहमें आकर ही वह फसे बध गया है ।

सुकौशल राजकुमार अपनी कुमार अवस्थामें विरक्त हो गया । वह घर छोडकर चल दिया । देखो राजकुमारकी अवस्था छोटी थी । अपनी मा व साम्राज्य सुखसे विलग हो गए थे । देखो मत्रीजनोंने उन्हें बहुत समझाया, अन्य लोगोंने भी बहुत समझाया, पर वह न माने । उन्हें ज्ञान हो गया था, वे अपनी आत्मामें ही लीन होना चाहते थे । तब फिर उनको रोकने वाला कौन था ? उनमें यथार्थज्ञान हो गया था तब फिर दूसरोंका असर उनके ऊपर किस प्रकारसे हो सकता था ? मन्त्रियोंने राजकुमारको बहुत समझाया कि आपकी स्त्रीके गर्भ है, बच्चा तो हो जाने दो, फिर बादमें चाहे चले जाना । बेटा उस बच्चेको राजतिलक दिए जावो । दुनियाको यह बता जावो कि मैं अपने बच्चेको राजतिलक दे रहा हू । इसलिए हे महाराज ! अभी इतना जल्दी न जावो । दो तीन माह बाद चाहे चले जाना । राजकुमार सुकौशल कहते हैं कि अच्छा गर्भमें जो सतान है उसे मैं तिलक किए देता हू । जो गर्भमें सतान है उसे मैं राजा बनाए देता हू । ऐसा कहकर कौशल राजकुमार विरक्त हो गए । ज्ञान ही सुख, आनन्द व शांति देता है और यदि ज्ञान नहीं है तो आजीवन क्लेश है । अत

मैं अपनी विषय कषायोंको त्यागकर अपनेमें ज्ञान उत्पन्न करूँ और अपने आपके ज्ञानसे आनन्द लूँ और सारे संकल्पोंसे मुक्त होऊं। शांतिके मार्गमें बढ़नेके लिए सबसे पहिला कदम है इन्द्रियविजय अर्थात् इन्द्रियोंके विषयोंपर विजय प्राप्त करना। यह इस उपायसे सम्भव है। इन विषयोंसे पृथक, विषयोंके ग्रहणके साधनभूत द्रव्येन्द्रियसे पृथक और विषयग्रहण विकल्परूप भावेन्द्रियसे पृथक ज्ञानमात्र अपने आत्मतत्त्वका मनन करें। इसके लिए हम सीधा इतना ही करें कि विषयके निमित्तको दूर करें और विषयोंके कारणभूत इस शरीरको आत्मासे अलग समझें। फिर इन विकल्पोंके दूर होनेपर आत्मामें परमविश्राम होगा, जिससे शान्तिके स्वरूप और शान्तिके मार्गका साक्षात्कार होगा। सुख इस ही स्वरूपमें है। अन्यत्र विषयोंमें सुख खोजना महामूढ़ता है।

जो आत्मामें हो उसको तो हाँ करना और जो आत्मामें नहीं है उसे ना करना। आत्मामें ज्ञान है सो ज्ञानकी हाँ करना और आत्मामें वर्ण नहीं, देह नहीं, जाति नहीं शरीर नहीं कर्म नहीं तो उसकी ना करना। ना को हाँ कर दे और हाँ को ना कर दे उसीका नाम मिथ्यात्व है। आत्मामें ज्ञान है, पर उसे ना कहने वाले बहुत हैं। कुछ दार्शनिक भी ऐसे हैं जो आत्माका स्वरूप ज्ञान नहीं मानते। बहुत बहुत बातें हैं। यहां कौन परखनेका ज्ञान स्वरूप मानता है? अरे विशुद्ध व्यवस्था नहीं है तो मैं हूँ क्या? जैसा ही जिसने कह दिया वैसा ही मान लिया और बहकाए गए तो हाल है संस्कार परिणामोंमें जैसा जिसने समझा दिया, जैसा जिसका जैसा संग मिल गया तैसा ही असर बना लिया। ऐसोंकी संख्या ज्यादा है जिनको हां का पता नहीं है और जिनको ना ना ही का भूत लगा है। उनकी तो चर्चा ही नहीं है यहां। और भीतर दर्शन शास्त्रमें चलें तो ज्ञानका निषेध करने वाले बहुत हैं। कोई दार्शनिक ज्ञानको आत्माका स्वरूप नहीं मानते, क्योंकि ज्ञानका स्वभाव आत्मासे नहीं मानते। ज्ञानके सम्बन्धसे आत्मा ज्ञानी है, आत्माका स्वरूप ज्ञान नहीं है ऐसा मानते हैं। और इसी तरह और और भी हैं। आत्मामें रूप है क्या कि आत्मा हरी है कि काली है कि सफेद है, कुछ भी नहीं, किन्तु मोही मानता है कि यह गोरा है, यह काला है, यह सफेद है। मैं गोरा हूँ, मैं काला हूँ, मैं गहूँए रंगका हूँ। अरे यह आत्मा अनेक रूप नहीं है। आत्मामें वर्ण है क्या, जातियां हैं क्या? अरे आत्मामें जातियां नहीं। आत्मामें वर्ण नहीं, वह तो चैतन्यस्वरूप, चैतन्यात्मा प्रभु सरीखी एक वस्तु है। वह आत्मा है, मेरी जाति नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इत्यादि कोई जाति आत्मामें नहीं है। विकार और अविकार भावोंकी तो बात ठीक है कि मेरी इस आत्मामें तो विकार है या अविकार विकार नहीं है। वह तो निर्विकार है, निर्विकल्प है, ज्ञानानन्दमय है, ज्ञानघन स्वरूप है। विकारोंका होना आत्माका काम नहीं है। वह तो चैतन्यपदार्थ है। यद्यपि करीब करीब परिणामोंके अनुकूल ही जातियोंमें विभाग है अर्थात् जितने प्रकारके परिणाम हों उतनी ही जातियां होंगी। परन्तु

जैसा मैं हू वैसा ही हू। मेरे अस्तित्वमे कोई जाति नही। जैसे आज मैं हिन्दुस्तानमे हू और हिन्दुस्तानी कहलाता हू और अगर मरकर और इगलण्डमे जाकर किसी अन्य योनिमे जन्म लेऊँ तो अगरेज बन जाऊँ और कहू कि मेरा देश इगलण्ड है। इस तरहसे मेरे स्वरूपमे कोई जातिया नही। जब तक जिन्दा हू तब तक तो हिन्दुस्तानी हू, अगरेज हू, फला हू इत्यादि विकल्पोकी बातें रहती हैं, पर ज्यो ही मृत्यु हो जाती है उसका विकल्प कहा जाता है ? देश का बात देखो, देशके परमाणुकी जात देशपे है, मेरा देश नही, मेरे विग्रह नही। सुख दु खका अनुभव तो चैतन्य प्रदेशमे होता है शरीरमे सुख दु खका अनुभव नहीं होता है। ज्ञान, शिक्षा की बात चैतन्य प्रदेशमे होती है शरीरादिमे नही होती। मेरे विग्रह नही, शरीर भी नहीं। मैं इनका नही और ये मेरे नही। मै तो केवल एक ज्ञानमात्र हू—ऐसी भावना ज्ञानी जीवके होती है।

भिन्नदर्शी भवेद्भिन्न सकरेपी च सकर।
तत्त्वत सवत प्रत्यक् स्या स्वस्मै स्व सुखी स्वयम् ॥

हे आत्मन्! तुझे जगतमे न्यारा बनना है या जगतसे भिचा (मिला) हुआ रहना है—पहले इसका निर्णय कर। जगतमे न्यारा रहनेकी स्थिति कैसी होगी तो देखो वहा न कुटुम्ब है, न समागम है, न शरीर है, न कर्म है न क्रोध है, न मान है, न माया है, न मोह है, न कषाय है, न इच्छा है, न व्याकुलता है, न आकुलता है, केवल ज्ञानमात्र निराकुल, शात सामान्य स्वरूप तेरी स्थिति होगी। यदि जगतसे मिला हुआ रहना है तो उसमे स्थिति कैसी होगी ? कुटुम्ब परिवार, मित्रजन, समागम, प्रशसा, निन्दा, कभी बडा बन जाय, कभी छोटा बन जाय और फिर मरकर मनुष्य हो सकता है और यदि मनुष्य न हो पाया तो कही नारकी हो जाय, कही तिर्यच हो जाय, कही कुछ हो जाय, कही निगोद हो जाय, कीडा-मकोडा बन जाय, उसका कोई भरोसा नही कि वह क्या न बन जावे ? निम्न शरीर मिला तो कुछ सोचने समझनेकी शक्ति भी नहीं मिलती है। जगतमे मिला हुआ रहने पर देखो भाई ऐसा हो जाता है। अब तो निर्णय कर लो कि इस ससारसे न्यारा रहना है या ससारसे मिलकर रहना है ? यदि तुझे जगतमे भिन्न रहना है तो अपनेको जगतसे भिन्न देख और यदि जगतसे अपनेको मिला हुआ रखना है तो अपनेको जगतसे मिला हुआ देख। यदि जगतमे मिला हुआ रहना है तो उसे सकर कहते हैं। तो तू अपनेको जगतसे भिन्न रखनेका प्रयत्न कर और जगतमे भिन्न रहनेका एक सरल उपाय यही है कि तू अपनेको जगतसे भिन्न देख। जो अपने को जगतमे भिन्न देखता है वह भिन्न हो जाता है और जो अपनेको सकर याने जगतमे मिला हुआ मानता है वह सकर अर्थात् जगतसे मिला हुआ रहता है।

भाई कल्याणका बडा सरल उपाय है। केवल अतरमे अपने आपको मानना है कि

मैं ज्ञानमात्र हू, निर्मल हूं, जगतमे सबसे निराला हू। भाई अपनी आपमे ऐसी दृष्टि बनाना कुछ कठिन है क्या ? अरे यह तो अत्यन्त सरल है, मगर अन्तरग सयम चाहिए। अपनी अन्तर आत्माको मथन कर सको, ऐसा ज्ञान चाहिए। देखो तू कमाने वाला है क्या ? हजार रुपया का मुनाफा मिलता है तो वह तेरी करतूत है क्या ? कभी कभी बडे बडे सेठ लोगोका देखा होगा कि उनके पास लाखो रुपयोकी सपत्ति होती है, वे दूसरोको क्षमा कर देते हैं। बतलावो कि उनके पास सपत्ति कसे आ जाती है ? अरे वे पहिले वे शुद्ध मार्गके प्रेमी थे व अब धर्मका काय करते है, दान करते हैं तो उनके पास करोडोका धन आ जाता है, उन्हे परिश्रम नही करना पडता है। और दूसरे वे लोग जो दूसरोको गाली देते है अधर्मका काय करते हैं वे लोग बडा परिश्रम करते है, फिर भी सम्पत्ति हाथमे नही आती है। धनका आना पुण्योदय पर निर्भर है। उन व्यक्तियोको देखा होगा कि वे अचानक ही अपने धार्मिक सत्सगके पास चले जाते है, अपने घर द्वार की फिक्र नही करते हैं, फिर भी उनको करोडो रुपयाकी आय हो जाती है। अरे अगर हम दुकानपर बैठे ही रहे तो क्या इतनेसे कमाई हो जायगी, नही होगी। कमाई तो पुण्यसे होती है। अपना कर्तव्य समझकर अथ पुरुषार्थका उचित समय पर काय करें और पुण्यका काय करें, धर्मका काय करे तो कमाई होती है। और वर्तमानमे भी पुण्यधर्मसे चलते है तो लम्बे समय तक सम्पत्ति साथ रहती है। लक्ष्मीके चिन्तनमे अपने को अधिक फसानेकी आवश्यकता नही है। गृहस्थको तो यह देखनेकी आवश्यकता है कि मेरे भाग्यसे जितना आता है उसके भीतर ही हम अपना गुजारा बनाए। जैसा गुजारा बन सके वसा बनावें। लोग इज्जत करते है तो इज्जत कर के लिए उनके पास पोजीशन चाहिए। और यदि पोजीशन नही मिलती है तो बात नही बनती है। लोग दूसरोकी इज्जत रखनेके लिए, देखनेके लिए, समझानेके लिए प्रयत्न करते है परन्तु उनकी इज्जत नही रहती इत्यादि प्रयोजन रखना अविवेक है। जिस किसी प्रकारसे यदि धन वैभव आता है उसपर यह विश्वास करना चाहिए कि भाग्यसे ही प्राप्त होता है। अत जो कुछ भाग्यवश प्राप्त हो जाय उस पर ही गुजारा करना चाहिए। बस इस तरहसे जो रहे और अपने आत्मकल्याण की ओर ध्यान रखे तो वह मजेमे रहेगा। हम कुछ दिनके लिए यहाँ हैं, सदा नही रहेगे। अचानक ही किसी दिन यहाँसे चले जाएगे।

यहाँके लोगोको क्या अपना मानें। अपना पूरा कैसे पडे तथा आनन्द कम अपनेमे भरे ? इसकी फिक्र तू करे तो तेरा भला होगा। यदि तू अपनेको जगतसे न्यारा रखे, शरीर से कषायोसे न्यारा रखे और केवलज्ञान और ज्ञान दर्शन दोनो ही तू प्राप्त करनेकी दृष्टि रखे तो तेरा भला होगा। अरे दूसरोसे मुहब्बत जोड जोडकर तू कब तक गुजारा करेगा ? यदि तूने इस प्रकारसे अपना गुजारा भी किया तो यह मोह है। किन लुटेरा सचाडो को तू अपना

मार रहा है ? वे अपने नही है। आगे देखो मोहका माहात्म्य कि जिनसे मोह होता है वे निकृष्ट भी है तो भी अच्छे लगते है, उनमे कुछ ज्ञान नही है उनमे दुगुण है, वे सब स्वार्थी है, खुदगर्जी है, उनमे अपना कल्याण नही है, फिर भी उनमे मोह है, आकुलताए हैं। उनको आकुलित होना निश्चित है जिनकी दृष्टि परमे ही होती है। उनमे तेरा क्या पूरा पडेगा ? अरे उन लतोडो खचोडोमे अपना सम्बध न स्थापित करो। उनसे तुम्हे कुछ नही मिलेगा। तुझे ससारी ही रहना है तो तू ससारी हो अपनेको देख। यदि तू सकरका चाहता है तो बाह्य पदार्थोमे ही तू अपनी रुचि बना। तू अपनेको बाह्य पदार्थोमे मिला-जुलाकर रख। यही तेरा ससारी बननेका मुख्य है। और भाई अगर अपनेको जगतसे न्यारा रखना है तो तू अपने को जगतसे न्यारा निरख। आनन्द तो तेरेमे ही है। तुझे आनन्द कही बाहरसे नही लाना है। तू अपनेको यह समझ कि मैं ज्ञानमात्र हू, इसके आगे मैं कुछ नही हू। इस ज्ञानमे ही सब कुछ आ गया। तू जगतके अन्य प्राणियोसे भिन्न हो जायगा। मैं कोई ऐसी चीज मुट्ठीमे ले लू और मुट्ठी बद करके कहू कि इसमे क्या है ? इस बातको मैं फिर बताऊगा कि इसमे क्या है ? मैं पूछूगा कि मेरी मुट्ठीमे क्या है ? मैं ही उत्तर देता हू कि मेरी मुट्ठीमे सब कुछ है। चौकी है, ताला है, चाभी है, बाल्टी है इत्यादि। लोग यदि कहे कि दिखलाओ तो मैं दिखलाऊँगा। हाथमे कौनसी चीज निकली ? स्याहीकी टिकिया। अरे उस स्याहीकी टिकिया मे ही सब कुछ है। क्या है ? अरे बिल्डिग है, बाल्टी है, समुद्र है चौकी है, सब कुछ है। उस स्याहीकी टिकियाको पानीमे घोल लिया, फिर उस स्याहीमे बिल्डिग बना लिया, बाल्टी बना लिया, समुद्र बना लिया इत्यादि। यह देखो एक स्याहीकी टिकियाने ही तीन लोककी रचना कर दी। बताओ ये सब कहाँसे आए ? अरे ये सब हाथमे ही आए। अत मेरे हाथमे वह चीज है कि इसमे सब कुछ है। यह एक विनोदकी बात है। मेरे हाथमे सब कुछ है। यहाँ प्रकृत बातपर आइये। मेरेमे क्या है ? मेरेमे सब कुछ है। मेरेमे ज्ञान है, वह ज्ञान ही सब कुछ है। ज्ञानकी कलामे ही तो देखो यहा राग है, मोह है, शोक है, ज्ञानका अधेरा है, ज्ञानका उजेला है। ये सब ज्ञानके ऊपर ही निर्भर है। ज्ञानसे ही विपदा है, ज्ञानसे ही सपदा है, सब कुछ ज्ञानपर निर्भर है। बडी बडी विपदाओके सामने यदि ज्ञानसे काम लें तो विपदाएँ दूर हो सकती है। ज्ञानके बिना आकुलताएँ, व्याकुलताएँ दूर नही होती है।

भैया ! कल्पनाएँ करके ही विपदा बना ली जाती है। देखो एक नौजवान लडका है। कोई अभी-अभी चार छ वर्ष शादीके हुए है। दोनोमे परस्पर प्रीति है। एक दूसरेका जीवन आनन्दसे व्यतीत हो रहा है यानी दोनो ही एक दूसरेके इष्ट बन रहे। और स्त्री यदि किसी कारणसे गुजर जाता है तो स्त्रीके पीछे उस पुरुषको कितना क्लेश होगा ? वह पुरुष यह समझ लेगा कि हाय मेरे लिए सब कोई मर गये। इस प्रकारसे वह व्यक्ति २४ घटे दुखी

होता रहता है। और यदि वह व्यक्ति अपना ज्ञान बनाले कि अथवा उस व्यक्तिका ज्ञान जग जाय कि अरे यह मेरे स्त्री, पुत्र वगैरा मेरे कुछ कुछ नहीं है, यह सब माया है, ये सब अलग अलग अपना अस्तित्व लिए हुए है, उनमे मेरा परमाणुमात्र भी सम्बन्ध नहीं है— ऐसा यदि यथार्थ ज्ञान जग जाय तो उसकी विपदाएँ समाप्त हो जावें। बाकी अन्य उपायोमे विपदाएँ खत्म नहीं हो सकती हैं। चाहे इसकी शादीकी बात चलने लगे, धन-दौलत मिल जाय, जेवर गहना मिल जाय, मारी चीजें मिल जायें, मगर जो इष्ट उसके दिलमे बस गया है उसकी कल्पना उसे दुःख देती रहती है। उसका केवल ज्ञान जग जाय तो ये सारी विपदाएँ समाप्त हो जायेंगी। रोजगारमे भी ऐसा ही होता है। कोई समय ऐसा आवे कि चारो तरफ से नुकसान हो जावे। चारो तरफसे नुकसान होनेपर उस व्यापारीको दुःख हो जाता है। हाय मैंने कितनी कमाई की? सब चला गया, नुकसान हो गया। अरे व्याकुल हो जानेसे क्या धन वापस लौट आता है? क्या उस नुकसान हो जाने वाले धनको कोई वापस कर जायगा? अरे कोई धन वापस नहीं दे जायगा। उल्टे लोग तो उसे लूटेंगे और सोचेंगे। दुःख दूर होनेका उपाय तो यहा भी ज्ञान है। ज्ञानमे जब आता कि वह सब तो भिन्न चीज है, तू उस धनकी चिंता न कर। अरे तुझे कोई शरण नहीं मिलेगी। तू परपदार्थमे शोक मत कर, व्यर्थमे मत घबडा। तेरे शोक करनेमे तुझे लाभ नहीं मिलेगा। अरे तुझे केवल तेरे ज्ञानसे लाभ मिल सकता है। ज्ञानको छोड़कर अन्य किसीसे कुछ लाभ नहीं प्राप्त हो सकता है। अरे मुझे पार कौन कर देगा? जिस भगवानकी हम उपासना करते हैं। क्या वह हमे पार कर देगा? भगवानकी उपासना करके अपने स्वरूपको पहिचानें अपने आपके स्वरूपको निर्मल बनावें तो यह भगवान हमे पार कर देगा और हम पार हो जावेंगे। मुझे पार करने वाला कोई नहीं है। कोई मुझे सुखी कर देगा। अरे मुझे सुखी कर देने वाला कोई नहीं है। जैसे माँ-बाप बटेको संतोष देते है कि बेटा तू तो राजा है। राजा कही पाप करता है। देखो यहाँ यथार्थ बात है। हमारे आचार्योंने हम लोगोकी करुणा करके ऐसा समझाया है कि तू तो पवित्र ज्ञानमात्र है तेरेमें तो कोई क्लेश हैं ही नहीं, तू तो सर्वोत्कृष्ट है। अरे तू दुःखी क्यो हो रहा है? अरे इन बाहरी पदार्थोंमे जिनमे तू दृष्टि डालता है वे सब असार हैं अहित करने वाले भिन्न हैं। इसलिए जब कभी भी परमें दृष्टि होगी तब क्लेश होंगे। वे परपदार्थ तेरे लिए शांतिके कारण नहीं होंगे। अरे तू उनके लिए क्यो मरता है? क्यो अपनेका बर बाद करता है? अरे अपना स्वरूपको तो देखो। तू तो परमार्थस्वरूप है। तू अपने आपको देख तो तू प्रभु हो जायगा।

भया! बतलाओ कि अपने आपको जगतमे सब पदार्थोंसे निराला मान लेनेमे क्या बिगाड़ हो जायगा? हे जगतके प्राणी! तू अपनेको सबसे निराला मान ले तो तेरे समस्त दुःख,

समाप्त हो जावेंगे। अरे तू ठीक ठीक ज्ञान कर ले तो सारे दुख दूर हो जावेंगे और यदि इसके विपरीत तूने अपनेमे ज्ञान न किया, भीतरमे ज्ञानका अँधेरा ही रहा तो आजीवन तुझे क्लेश रहेगा और तू जगजालमे फँसा रहेगा। तू अपनेको निर्मल देख, अपनेमे ज्ञान उत्पन्न करे तो तुझे जीवनभर सुख प्राप्त होंगे। यदि तू अपने ज्ञानस्वरूपको न सभाल सका, अपने आपको निर्मल न समझ सका तो आजीवन जगजालमे फसे रहेगा। भगवानकी वाणी एक, आध षट पढ़ लिया, सुन लिया और बाकी समय मोहियाके सगमे रहते है तो फिर व ही सोचें अपनेको कैसे सभाला जाय? अर उनको तो वह मोही प्राणी ही रखते है उनके लिए वही सब कुछ हैं। भयानक विपत्तिया जिनमे सामने है उनको ही वे मोही प्राणी दौडन हैं और जिनमें कुछ हित होगा, जिनसे अपना उद्धार होगा उनको पहिचानते भी नही है। जो अपनेको शुद्ध, आत्मतत्त्व रूप देखेगा वह शुद्ध बन जायगा और जो अपनेको अशुद्ध देखेगा वह अशुद्ध बन जायगा। मै मनुष्य हू, मैं अमुक चद हू, मैं फल हू—ऐसी दृष्टि अगर बन गई तो क्रोध, मान, माया इत्यादि बढ ही जावेंगे और अहकार भीतर आ ही जायगा। इस प्रकार से मैं अशुद्ध बन जाऊँगा। और यदि अपनेमे ऐसी भावना बन जाय कि मैं ज्ञानमात्र, शुद्ध, चैतन्यस्वरूप वस्तु हू तो मैं शुद्ध बन जाऊगा। हे आत्मन्! तेरे ऊपर कूडा लदा है। तू इस कूडेकी फिक्र मत कर। तू अपनेमे विद्यमान ज्ञानके उजेलेको सम्हाल, बस यही एक फिक्र कर। तू अपनेको देख कि मै सबसे निराला, ज्ञानमात्र हू, ज्ञानमय हू। तू अपनेको यदि ज्ञानमय देखे तो तेरे सारे क्लेश, सारी विपदाएँ, सारा कूडा खतम हो जायगा। तू अन्यकी चिंता न कर। तू तो केवल अपने भीतरको शुद्ध देखनेकी फिक्र कर। जो अपनेको शुद्ध देखता है वह शुद्ध हो जाता है और जो अपनेको अशुद्ध देखता है वह अशुद्ध हो जाता है।

भया, बहुतसी चीजें मिल जाएँ, फिर भी किसी जीवमे किसी दूसरी चीजका प्रवेश नही। एक बोरेमे गेहू, चना, मटर इत्यादि मिल गए हैं, फिर भी सब न्यारेके न्यारे है। समुदायको देखकर कहते हैं कि मिल गए है, परके स्वरूपको देखें तो सब न्यारे ही हैं। और भी चीजें देखें जैसे कि दूध और पानी मिल गया तो समुदायमे कहते हैं कि दूध और पानी मिल गया, पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूधमे दूध है और पानीमे पानी है। अब भी दूधमे पानी नही मिला और न दूधमे पानी मिलेगा। सब न्यारा न्यारा है। यद्यपि यहाँ जीव शरीरमें न्यारा नही रखा है, क्योंकि यदि हम चाहे कि शरीर तो यहीं रहे और मेरा आत्मा किसीके पास पहुच जाय तो आत्मा नही पहुच सकता। तो भी शरीरमे शरीर है और आत्मामे आत्मा है। केवल विवेक यत्र चाहिए। पता चल जावेगा। जैसे दूध और पानी को अलग अलग करनेका यत्र होता है। यत्रोंके द्वारा ही दूध और पानीको समझ लिया जाता है। इसी तरह मिले हुए शरीर और आत्माको समझनेका यत्र चाहिए। वह यत्र है—प्रज्ञा

स्वरूपकी दृष्टि और स्वलक्षणदृष्टि । इन्द्रिय सयम कर लो । इन्हीसे तो बरबादी होती है, इसको तू सयत कर । और अपनी आत्मामे चला जा, तू अपने आपका ध्यान कर, ऐसा निर्विकल्प ध्यान कर कि इस शरीरका ध्यान न रहे, इन इन्द्रियोका ध्यान न रहे तो अनुपम सुख प्राप्त होगा । तू इन्द्रियोको नि सकोच उपयोगसे त्याग दे । किसी भी इन्द्रियका रच भी ख्याल न रहे । तो तुझे स्वलक्षण साक्षात् ज्ञात हो जायगा कि जो केवलज्ञानका वतन है । अरे वही तो तेरा स्वरूप है । तू अपने स्वरूपको पहिचान ले तो तू प्रभु हो सकता है, तू जगतसे भिन्न हो सकता है । जिन्होने जगतसे भिन्न अपनेको देखा है वह जगतमे भिन्न होकर भिन्न ही चलता रहेगा । और जो अपनेको मिला हुआ देखता है, मैं प्रमुख हू, मै साधु हू मैं ऐसा बलिष्ठ हू, यह गृहस्थ है, यह साधु है, यह मनुष्य है, घरमे रहता है, श्रावक है इत्यादि, तो वह इस जगतसे मिला हुआ ही चलता रहेगा और आजीवन उसको क्लेश ही रहेगे । जो व्यक्ति अपनेको सबसे मिला हुआ समझता है वह सबसे बोलता चालता है, देखता है, सुनता है, सबसे मिलता है, सबसे सावधानीसे मिलता है, पर आत्मकल्याणकी फिक्र उसको नही रहती है । इसी कारण वे जीवनभर दुखी रहते हैं । अगर भीतरके सत्मे स्वय निरखें कि मैं तो सबसे निराला, केवल ज्ञानमात्र, शुद्ध हू । तो हमारी यह दृष्टि वह चिनगारी है जो कि विपदाओंके कर्मोंके पहाड़ोंके पहाडोको जला सकती है । है एक छोटी दृष्टि, सूक्ष्मदृष्टि, मगर वह इतनी चमत्कारिणी है कि सारे पहाडोको भस्म कर सकती है । यदि इतनी अपनी बातको छोडकर चलोगे तो जगतमे रुलना पडेगा । और यदि इतनी बातको सम्हाल लिया कि मैं जगतमे सबसे निराला, ज्ञानमात्र, अपनी स्वरूप सत्तामात्र त्रैकालिक शक्तिको लिए हुए हू तो हे प्रियतम ! तू प्रभु बन जायगा ।

देखो एक शब्दकी बात—पतिके कितने नाम हैं, प्रीतम बोलते हैं, खसम बोलते है, बालम बोलते हैं, सैया बोलते हैं पिया भी बोलते है, मगर ये सब क्या है ? ये सब आत्माके नाम हैं । जो पतिके नाम रख दिये हैं वे सब आत्माके नाम है । पिया वह कहलाता है जो प्रिय है । मगर यह बताओ कि तुम्हारा पिया कौन है ? अरे तुम्हारा प्रिय तुम्ही हो । अगर कोई जानपर आफत आ जाय तो यदि हाथमे लडका हो तो अपनी जान बचानेके लिए लडका भी फेंक दिया जावेगा । लडकेकी फिक्र नही रहेगी । लडकेका पता नही क्या होगा, परन्तु उसको भी फेंक दोगे । इसलिए तेरा पिया दूसरा नही है, तेरी अपनी आत्मा ही अपना पिया है, दूसरा नही है । प्रीतम शब्द बना है प्रियतमसे । जो ज्यादा प्रिय है । जैसे गुड, बटर, वस्ट रूप बनते हैं तारतम्यमे वैसे ही प्रीतम, प्रिय, प्रियतर, प्रियतममे है । प्रियतम शब्द के माने हैं जो अधिक प्रिय हो । तेरा प्रीतम कौन है ? तेरा प्रीतम तेरी आत्मा है । आत्मा को छोडकर अन्य कोई तेरा अधिक प्रिय नही है । कितने [illegible] धमके खातिर सब कुछ छोड

समाप्त हो जावेंगे। अरे तू ठीक ठीक ज्ञान कर ले तो सारे दुख दूर हो जावेंगे और यदि इसके विपरीत तूने अपनेमे ज्ञान न किया, भीतरमे ज्ञानका अँधेरा ही रहा तो आजीवन तुझे क्लेश रहेंगे और तू जगजालमे फँसा रहेगा। तू अपनेको निमल देख, अपनेमे ज्ञान उत्पन्न करे तो तुझे जीवनभर सुख प्राप्त होंगे। यदि तू अपने ज्ञानस्वरूपको न सभाल सका, अपने आपको निमल न समझ सका तो आजीवन जगजालमे फसे रहेगा। भगवानकी वाणी एक आध घंट पढ लिया, सुन लिया और बाकी समय मोहियोके सगमे रहते है तो फिर वे ही सोचें अपनेको कैसे सभाला जाय ? अरे उनको तो वह मोही प्राणी ही रुचते है उनके लिए वही सब कुछ है। भयानक विपत्तियाँ जिनमे सामने है उनको ही ये मोही प्राणी दौडते है और जिनमे कुछ हित होगा, जिनसे अपना उद्धार होगा उनको पहिचानते भी नही है। जो अपनेको शुद्ध, आत्मतत्त्व रूप देखेगा वह शुद्ध बन जायगा और जो अपनेको अशुद्ध देखेगा वह अशुद्ध बन जायगा। मै मनुष्य हू, मैं अमुक चद हू, मै फल हू—ऐसी दृष्टि अगर बन गई तो क्रोध, मान, माया इत्यादि बढ ही जावेंगे और अहकार भीतर आ ही जायगा। इस प्रकार से मैं अशुद्ध बन जाऊँगा। और यदि अपनेमे ऐसी भावना बन जाय कि मैं ज्ञानमात्र, शुद्ध, चैतन्यस्वरूप वस्तु हू तो म शुद्ध बन जाऊगा। हे आत्मन्! तेरे ऊपर कूडा लदा है। तू इस कूडेकी फिक्र मत कर। तू अपनेमे विद्यमान ज्ञानके उजेलेको सम्हाल, बस यही एक फिक्र कर। तू अपनेको देख कि मैं सबसे निराला, ज्ञानमात्र हू ज्ञानमय हू। तू अपनेको यदि ज्ञानमय देखे तो तेरे सारे क्लेश, सारी विपदाएँ, सारा कूडा खतम हो जायगा। तू अन्यकी चिंता न कर। तू तो केवल अपने भीतरको शुद्ध देखनेकी फिक्र कर। जो अपनेको शुद्ध देखता है वह शुद्ध हो जाता है और जो अपनेको अशुद्ध देखता है वह अशुद्ध हो जाता है।

भैया, बहुतसी चीजें मिल जाएँ, फिर भी किसी जीवमे किसी दूसरी चीजका प्रवेश नही। एक बोरेमे गेहू, चना, मटर इत्यादि मिल गए हैं फिर भी सब न्यारेके न्यारे है। समुदायको देखकर कहते है कि मिल गए ह, परके स्वरूपको देखें तो सब न्यारे ही हैं। और भी चीजें देखें जैसे कि दूध और पानी मिल गया तो समुदायमे कहते हैं कि दूध और पानी मिल गया, पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूधमे दूध है और पानीमे पानी है। अब भी दूधमे पानी नही मिला और न दूधमे पानी मिलेगा। सब न्यारा न्यारा है। यद्यपि यहाँ जीव शरीरसे न्यारा नही रखा है, क्योकि यदि हम चाहे कि शरीर तो यही रहे और मेरा आत्मा किसीके पास पहुच जाय तो आत्मा नही पहुच सकता। तो भी शरीरमे शरीर है और आत्मामे आत्मा है। केवल विवेक यत्र चाहिए। पता चल जावेगा। जैसे दूध और पानी को अलग-अलग करनेका यत्र होता है। यत्रके द्वारा ही दूध और पानीको समझ लिया जाता है। इसी तरह मिले हुए शरीर और आत्माको समझनेका यत्र चाहिए। वह यत्र है—प्रज्ञा-

स्वरूपकी दृष्टि और स्वलक्षणदृष्टि। इन्द्रिय सयम कर लो। इन्हीसे तो बरबादी होती है, इसको तू सयत कर। और अपनी आत्मामे चला जा, तू अपने आपका ध्यान कर, ऐसा निर्विकल्प ध्यान कर कि इस शरीरका ध्यान न रहे, इन इन्द्रियोंका ध्यान न रह ता अनुपम सुख प्राप्त होगा। तू इन्द्रियोको निसकोच उपयोगसे त्याग दे। किसी भी इन्द्रियका रच भी ख्याल न रहे। तो तुझे स्वलक्षण साक्षात् ज्ञात हो जायगा कि जो केवलज्ञानका वतन है। अरे यही तो तेरा स्वरूप है। तू अपने स्वरूपको पहिचान ले तो तू प्रभु हो सकता है, तू जगतमे भिन्न हो सकता है। जिन्होने जगतमे भिन्न अपनेको देखा है वह जगतमे भिन्न होकर भिन्न ही चलता रहेगा। और जो अपनेको मिला हुआ देखता है, मैं अमुक हू, मैं साधु हू मैं ऐसा बलिष्ठ हू, यह गृहस्थ है, यह साधु है, यह मनुष्य है, घरमे रहता है, श्रावक है इत्यादि, तो यह इस जगतसे मिला हुआ हो चलता रहगा और आजीवन उसकी क्लेश ही रहग। जो व्यक्ति अपनेको सबमे मिला हुआ समझता है वह सबमे बोलता चालता ह, देखता है, सुनता है, सबमे मिलता है, सबमे सावधानीसे मिलता है, पर आत्मकल्याणकी फिक्र उसको नही रहती है। इसी कारण वे जीवनभर दुखी रहते है। अगर भीतरके मनमे स्वय निरखें कि मैं तो सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र शुद्ध हू। तो हमारी यह दृष्टि वह चिनगारी है जो कि विपन्नभारे कर्मोंके पहाड़ोंके पहाड़ोंको जला सकती है। है एक छोटी दृष्टि, सूक्ष्मदृष्टि, मगर वह इतनी चमत्कारिणी है कि सारे पहाड़ोको भस्म कर सकती है। यदि इतनी अपनी बातको छोडकर चलागे तो जगतमे रुलना पडेगा। और यदि इतनी बातको सम्हाल लिया कि मैं जगतमे सबसे निराला, ज्ञानमात्र, अपनी स्वरूप सत्तामात्र अचलित शक्तिको लिए हुए हू तो हे प्रियतम! तू प्रभु बन जायगा।

देखो एक शब्दकी बात—पतिके कितने नाम हैं, प्रीतम बोलते हैं, खसम बोलते हैं, बालम बोलते हैं, सखा बोलते हैं पिया भी बोलते हैं, मगर ये सब क्या हैं? ये सब आत्माके नाम हैं। जो पतिके नाम रख दिये हैं वे सब आत्माके नाम हैं। पिया वह कहलाता है जो प्रिय है। मगर यह बताओ कि तुम्हारा पिया कौन है? अरे तुम्हारा प्रिय तुम्ही हो। अगर कोई जानपर आफत आ जाय तो यदि हाथमे लडका हो तो अपनी जान बचानेके लिए लडका भी फेंक दिया जायेगा। लडकेकी फिक्र नही रहेगी। लडकेका पता नही क्या होगा, परन्तु उसको भी फेंक दोगे। इसलिए तेरा पिया दूसरा नही है, तेरी अपनी आत्मा ही अपना पिया है, दूसरा नही है। प्रीतम शब्द बना है प्रियतमसे। जो ज्यादा प्रिय है। जैसे गुड, खैटर, खेंट रूप बनते हैं तारतम्यमे वैसे ही प्रीतम, प्रिय, प्रियतर, प्रियतममे है। प्रियतम शब्द के माने हैं जो अधिक प्रिय हो। तेरा प्रीतम कौन है? तेरा प्रीतम तेरी आत्मा है। आत्मा को छोडकर अन्य कोई तेरा अधिक प्रिय नही है। कितने ही तो धमके खातिर सब कुछ छोड

दते है । सीता जी अग्निपरीक्षामे उत्तीण हो गयी । अग्निमे जब कूद रही थी तब क्या ऐसा विचार हो सकता था कि हम बच जावें तो फिर धर्म प्राप्त करें । उनके तो धर्ममे प्रीति थी, सब कुछ छोडकर एक आत्मधर्ममे रुचि थी । हमारा घर छूटा जा रहा है—इस विकल्पको तो सभावना भी नही, ऐसा सीता जी ने अपने धर्मको बचानेके कारण नही कहा । उनके लिए धर्म ही प्रिय था । वह सोचती थी कि यदि बच जाऊगी तो धर्ममे ही रहूगी । धर्मके माने है स्वभावरमण और दूसरी चीज नही है । सही स्वरूपको जानने व उसमे रमने का नाम ही धर्म है । प्रीतम तुम्हारा कोई नही है । तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा प्रीतम है । बालमको बल्लभ बोलते हैं । बल्लभका अर्थ प्रिय है । सैया बना है स्वामीसे । अब यह बतलाओ कि तेरी आत्माका स्वामी है कौन ? अरे तेरा स्वामी तू ही है । तेरा मालिक तू ही है । तेरा साइया तू ही है ।

देखो भगवानकी भक्तिमे भगवानको सब विशेषण लगते हैं । हे भगवान, हे प्रियतम, हे प्रिय, हे साइया । साइया तो भजनमे भी गाया करते हैं । भगवान और आत्मामे भेद क्या है ? कुछ नही । तो यह आत्मा ही तुम्हारा बालम है, तुम्हारा सैया है, तुम्हारा प्रिय है, तुम्हारा प्रियतम है, तुम्हारा सर्वस्व है । और हे आत्मन् ! इस दुनियामे तेरा कुछ नही है । सबसे निराला अपने आपको देखो । यदि सबमे निराला इस जगतमे तू अपने आपको नहीं देखता है तो तू इस ससारमे रुलेगा । अब देखो जिसकी कल्याणमे लगन लगी है उसको दूसरी चीज सुहाती नही है । हे आत्मन् ! तुझे तो कल्याण चाहिए । तेरा वैभव चाहे लुटता हो, परवाह न करना चाहिए । ज्ञानकी बातको ज्ञानी ही समझ सकता है, अज्ञानी नही समझ सकता है । ज्ञानी व्यक्ति मोही व्यक्तिको परख सकता है, पर मोही तथा अज्ञानी व्यक्ति ज्ञानी को नही परख सकते हैं । देखो ये दो भया भिण्डसे आये है जैसे कोई तो पर्वको घरसे निकलता फिर पर्वके बाद घर पहुच जाता है । किन्तु इनको तो सभी दिन पर्वका दिन है । अरे परवाह न करो । घरका काम तो चल ही जायगा । उसकी चिंता न करो । अगर तुम चिंता करोगे तो क्या तुम्हारे घरका काम नही चलेगा ? अरे चिंता न करो, घरका काम तो चलेगा ही । चिंताएं नही करनी चाहिएं । चिंताए करनेसे नुकसान है । भीतरसे जब आत्मकल्याणकी भावना रहे तो शाति प्राप्त हो सकती है ।

सुकुमार स्वामी मकानसे चले । जिसका शरीर तो सुकुमार था । कामलकी वासम पहुचने वाले चावल हो जिसके गलेमे निगले जा सकते थे, जिसको रोशनी देखते ही आंसू आ जाते थे, ऐसे सुकुमार जब विरक्त हुए, घरसे चले, नगे पैर चले जा रहे है, खून बह रहा है । अब उनके लिए वैभव वभव नही रहा । वे साधु हो गये, ध्यानमे बैठ गये । अब उनके शरीरमे केवल ढांचा ही रह गया था । ऐसी सुकुमार अवस्था थी, जब कि इन्होने

अपने शरीरका तपस्यामें ही गला डाला था और देखो अन्तमें उनको एक स्यारनीने खाया था। क्या उन्हें कष्ट था ? अरे भाई यह समझो कि कोई कष्ट नहीं है। यदि कष्ट मानते हो तो कष्ट है और यदि कष्ट न मानो तो नहीं है। अरे देखो रात दिन कितने कष्ट है ? गृहस्थीमें कष्ट नहीं मालूम होते हैं, पर धर्मके कामोंमें कष्ट मालूम होते हैं। जहाँ मन नहीं लगता वहाँ कष्टोंका नाम लगता है। धर्मका काम जहाँपर हो रहा हो वहाँ बैठनेमें ही हे आत्मन् ! तू परेशान हो जाता है। जरा थोड़ासा भी समय हो गया कहते हैं कि अरे एक घंटा हो गया, दो घंटा हो गया, पौन घंटेमें हो जाना चाहिए था। स्वाध्याय जल्दी खतम हो जाय तो अच्छा है। यद्यपि गृहस्थीके कामोंमें आरामसे घुटने टेके बैठे रहें कोई परेशानी नहीं है। कितनी ही प्रदक्षिणाएँ हों, फिर भी उनको परेशानी नहीं होती है। हे आत्मन ! अन्दाज कर लो कि जिसका जिसके ऊपर मन रमा है वहाँ चाहे जितने कष्ट हों कष्ट नहीं हैं और जिसका मन किसीके ऊपर नहीं है वहाँ यदि कष्ट भी नहीं है तो कष्ट कल्पनासे आ पड़ते हैं। कल्याणका उपाय सरल है। जरा अपनेको ज्ञानमात्र, सबसे निराला तो देखो। अपने भीतरके स्वरूपकी ओर देखो तो आत्मा भिन्न हो जायगी, परमात्मा हो जाओगे। यह मैं तो ऐसा ही हूँ इसलिए अब अपनेको सहज सत्यस्वरूपमें देखकर अपनेमें अपने आप विश्राम पाऊँ।

॥ इति आत्मपरिचयन ॥



देते है । सीता जी अग्निपरीक्षामे उत्तीर्ण हो गयी । अग्निमे जब कूद रही थी तब क्या ऐसा विचार हो सकता था कि हम बच जाय तो फिर घरमे आन दसे जावें । उनके तो धममे प्रीति थी, सब कुछ छोडकर एक आत्मधममे रुचि थी । हमारा घर छूटा जा रहा है—इस विकल्पकी तो सभावना भी नही, एमा सीता जी ने अपने धर्मको बचानेके कारण नही कहा । उनके लिए धम ही प्रिय था । वह सोचती थी कि यदि बच जाऊगी तो धममे ही रहूगी । धमके माने हैं स्वभावरमण और दूसरी चीज नही है । सही स्वरूपको जानने व उसमे रमने का नाम ही धम है । प्रीतम तुम्हारा कोई नही है । तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा प्रीतम है । बालमको बल्लभ बोलते हैं । बल्लभका अथ प्रिय है । सया बना है स्वामीमे । अब यह बतलाओ कि तेरी आत्माका स्वामी है कौन ? अरे तेरा स्वामी तू ही है । तेरा मालिक तू ही है । तेरा सइया तू ही है ।

देखो भगवानकी भक्तिमे भगवानको सब विशेषण लगते हैं । हे भगवान, हे प्रियतम, हे प्रिय, हे साइया । साइया तो भजनमे भी गाया करते है । भगवान और आत्मामे भेद क्या है ? कुछ नही । तो यह आत्मा ही तुम्हारा बालम है, तुम्हारा सैया है, तुम्हारा प्रिय है, तुम्हारा प्रियतम है, तुम्हारा सर्वस्व है । और हे आत्मन् ! इस दुनियामे तेरा कुछ नही है । सबसे निराला अपने आपको देखो । यदि सबसे निराला इस जगतमे तू अपने आपको नहीं देखता है तो तू इस ससारमे रुलेगा । अब देखो जिसकी कल्याणमे लगन लगी है उसको दूसरी चीज सुहाती नही है । हे आत्मन् ! तुझे तो कल्याण चाहिए । तेरा वैभव चाहे लुटता हो, परवाह न करना चाहिए । ज्ञानकी बातको ज्ञानी ही समझ सकता है, अज्ञानी नही समझ सकता है । ज्ञानी व्यक्ति मोही व्यक्तिको परख सकता है, पर मोही तथा अज्ञानी व्यक्ति ज्ञानी को नही परख सकते हैं । देखो ये दो भैया भिण्डसे आये हैं जैसे कोई तो पवको घरसे निकलता फिर पवके बाद घर पहुच जाता है । किन्तु इनको तो सभी दिन पवका दिन है । अरे परवाह न करो । घरका काम तो चल ही जायगा । उसकी चिंता न करो । अगर तुम चिता करोगे तो क्या तुम्हारे घरका काम नही चलेगा ? अरे चिंता न करो, घरका काम तो चलेगा ही । चिंताएँ नही करनी चाहिएँ । चिंताए करनेसे नुकसान है । भीतरसे जब आत्मकल्याणकी भावना रहे तो शाति प्राप्त हो सकती है ।

सुकुमार स्वामी मकानसे चले । जिसका शरीर तो सुकुमार था । कमलकी वासमे पहुचने वाले चावल ही जिसके गलेमे निगले जा सकते थे, जिसको रोशनी देखने ही आंसू आ जाते थे, ऐसे सुकुमार जब विरक्त हुए, घरसे चले, नगे पैर चले जा रहे है, खून बह रहा है । अब उनके लिए वैभव वभव नही रहा । वे साधु हो गये, ध्यानमे बैठ गय । अब उनके शरीरमे केवल ढांचा ही रह गया था । ऐसी सुकुमार अवस्था थी, जब कि इन्होने

अपने शरीरको तपस्यामें ही गला डाला था और देखो अंतमें उनको एक स्यारनीने खाया था। क्या उन्हें कष्ट था ? अरे भाई यह समझो कि कोई कष्ट नहीं है। यदि कष्ट मानते हो तो कष्ट है और यदि कष्ट न मानो तो नहीं है। अरे देखो रात दिन कितने कष्ट हैं ? गृहस्थीमें कष्ट नहीं मालूम होते हैं, पर धर्मके कामोंमें कष्ट मालूम होते हैं। जहां मन नहीं लगता वहां कष्टोंका नाम लगता है। धर्मका काम जहांपर हो रहा हो वहां बैठनेमें ही हे आत्मन्! तू परेशान हो जाता है। जहां थोड़ासा भी समय हो गया कहते हैं कि अरे एक घंटा हो गया, दो घंटा हो गया, पौन घंटेमें हो जाना चाहिए था। स्वाध्याय जल्दी खतम हो जाय तो अच्छा है। यद्यपि गृहस्थीके कार्यमें वे आरामसे घुटने टेके बैठे रहें, कोई परेशानी नहीं है। कितनी ही अड़चनें हों, फिर भी उनको परेशानी नहीं होती है। हे आत्मन्! अन्दाज कर लो कि जिसका जिसके ऊपर मन रमा है वहां चाहे जितने कष्ट हों कष्ट नहीं हैं और जिसका मन किसीके ऊपर नहीं है वहां यदि कष्ट भी नहीं है तो कष्ट कल्पनासे आ पड़ते हैं। कल्याणका उपाय सरल है। जरा अपनेको ज्ञानमात्र, सबसे निराला तो देखो। अपने भीतरके स्वरूपकी ओर देखो तो आत्मा भिन्न हो जायगी, परमात्मा हो जाओगे। यह मैं तो ऐसा ही हूं इसलिए अब अपनेको सहज सत्यस्वरूपमें देखकर अपनेमें अपने आप विश्राम पाऊँ।

॥ इति आत्मपरिचयन ॥



ब्रह्मचर्य–विंशतिका

ब्रह्मचर्यं परं दानम्, ब्रह्मचर्यं परं तपः ।
ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानम्, ब्रह्मचर्यं परं महः ॥१॥

ब्रह्मचर्यं परं यानम्, ब्रह्मचर्यं परं हितम् ।
ब्रह्मचर्यं परं ध्यानम्, ब्रह्मचर्यं परं सुखम् ॥२॥

ब्रह्मचर्यं परं तेजः, ब्रह्मचर्यं परं बलम् ।
ब्रह्मचर्यं परं श्रेयः, ब्रह्मचर्यं परं फलम् ॥३॥

ब्रह्मचर्यं परं सत्यम्, ब्रह्मचर्यं परो यमः ।
ब्रह्मचर्यं परं तत्त्वम्, ब्रह्मचर्यं परो वृषः ॥४॥

ब्रह्मचर्यं परा क्रान्तिः, ब्रह्मचर्यं परं व्रतम् ।
ब्रह्मचर्यं परा कीर्तिः, ब्रह्मचर्यं परं ऋतम् ॥५॥

ब्रह्मचर्यं परा भक्तिः, ब्रह्मचर्यं परो गुरुः ।
ब्रह्मचर्यं परा शक्तिः, ब्रह्मचर्यं परो गुणः ॥६॥

ब्रह्मचर्यं परं ज्योतिः, ब्रह्मचर्यं परा छविः ।
ब्रह्मचर्यं परं वृत्तम्, ब्रह्मचर्यं परं हविः ॥७॥

ब्रह्मचर्यं परं ब्रह्म, ब्रह्मचर्यं परं श्रुतम् ।
ब्रह्मचर्यं परं धाम, ब्रह्मचर्यं परं श्रितम् ॥८॥

ब्रह्मचर्यं परं रत्नम्, ब्रह्मचर्यं परा लयः ।
ब्रह्मचर्यं परं भद्रम्, ब्रह्मचर्यं परो जयः ॥९॥

ब्रह्मचर्यं परा शान्तिः, ब्रह्मचर्यं परा निधिः ।
ब्रह्मचर्यं परा क्षान्तिः, ब्रह्मचर्यं परा विधिः ॥१०॥

ब्रह्मचर्यं परं मन्त्रम्, ब्रह्मचर्यं परो जयः ।
ब्रह्मचर्यं परं तन्त्रम्, ब्रह्मचर्यं परं वपुः ॥११॥

ब्रह्मचर्यं परा सिद्धि , ब्रह्मचर्यं परा गति ।
ब्रह्मचय परा ऋद्धि , ब्रह्मचर्यं परा नति ॥१२॥

ब्रह्मचर्यं परो योग , ब्रह्मचर्यं परो दम ।
ब्रह्मचर्यं परो भोग , ब्रह्मचर्यं पर शम ॥१३॥

ब्रह्मचर्यं पर शीलम्, ब्रह्मचर्यं पर क्रतु ।
ब्रह्मचर्यं पर सत्त्वम्, ब्रह्मचय पर सुहृद् ॥१४॥

ब्रह्मचर्यं पर स्वास्थ्यम्, ब्रह्मचर्यं पर पदम् ।
ब्रह्मचर्यं पर क्षेमम्, ब्रह्मचर्यं पर वरम् ॥१५॥

ब्रह्मचर्यं पर यज्ञम्, ब्रह्मचर्यं पर शिवम् ।
ब्रह्मचर्यं पर दुर्गम्, ब्रह्मचर्यं पर धनम् ॥१६॥

ब्रह्मचर्यं पर सारम्, ब्रह्मचय परा शुचि ।
ब्रह्मचर्यं पर साम्यम्, ब्रह्मचय परा रुचि ॥१७॥

ब्रह्मचर्यं पर हृदयम्, ब्रह्मचर्यं परो रस ।
ब्रह्मचर्यं पर माध्यम्, ब्रह्मचर्यं पर वच ॥१८॥

ब्रह्मचर्यं पर स्थानम्, ब्रह्मचर्यं परा धृति ।
ब्रह्मचर्यं पर मानम्, ब्रह्मचर्यं परा रति ॥१९॥

ब्रह्मचर्यं पर वीर्यम्, ब्रह्मचर्यं पर रह ।
ब्रह्मचर्यं पर वित्तम्, ब्रह्मचर्यं पर यश ॥२०॥

आर्या

आचरन्ति ब्रह्मचय मनसा कायेन यो नर सततम् ।
भजत युगम स्वास्थ्य सहजानन्दात्मक पद नियमात् ॥२१॥

॥ इति श्री ब्रह्मचर्यविंशतिका ॥

ब्रह्मचर्य-विंशतिका

ब्रह्मचर्यं परं दानम्, ब्रह्मचर्यं परं तपः ।
ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानम्, ब्रह्मचर्यं परं महः ॥१॥

ब्रह्मचर्यं परं यानम्, ब्रह्मचर्यं परं हितम् ।
ब्रह्मचर्यं परं ध्यानम्, ब्रह्मचर्यं परं सुखम् ॥२॥

ब्रह्मचर्यं परं तेजः, ब्रह्मचर्यं परं बलम् ।
ब्रह्मचर्यं परं श्रेयः, ब्रह्मचर्यं परं फलम् ॥३॥

ब्रह्मचर्यं परं सत्यम्, ब्रह्मचर्यं परो यमः ।
ब्रह्मचर्यं परं तत्त्वम्, ब्रह्मचर्यं परो वृषः ॥४॥

ब्रह्मचर्यं परा क्रान्तिः, ब्रह्मचर्यं परं व्रतम् ।
ब्रह्मचर्यं परा कीर्तिः, ब्रह्मचर्यं परं ऋतम् ॥५॥

ब्रह्मचर्यं परा भक्तिः, ब्रह्मचर्यं परो गुरुः ।
ब्रह्मचर्यं परा शक्तिः, ब्रह्मचर्यं परो गुणः ॥६॥

ब्रह्मचर्यं परं ज्योतिः, ब्रह्मचर्यं परा छविः ।
ब्रह्मचर्यं परं वृत्तम्, ब्रह्मचर्यं परं हविः ॥७॥

ब्रह्मचर्यं परं ब्रह्म, ब्रह्मचर्यं परं श्रुतम् ।
ब्रह्मचर्यं परं धाम, ब्रह्मचर्यं परं श्रितम् ॥८॥

ब्रह्मचर्यं परं रत्नम्, ब्रह्मचर्यं परा लयः ।
ब्रह्मचर्यं परं भद्रम्, ब्रह्मचर्यं परो जयः ॥९॥

ब्रह्मचर्यं परा शान्तिः, ब्रह्मचर्यं परा निधिः ।
ब्रह्मचर्यं परा क्षान्तिः, ब्रह्मचर्यं परा विधिः ॥१०॥

ब्रह्मचर्यं परं मन्त्रम्, ब्रह्मचर्यं परो जयः ।
ब्रह्मचर्यं परं तन्त्रम्, ब्रह्मचर्यं परं वपुः ॥११॥

ब्रह्मचर्यं परा सिद्धि, ब्रह्मचर्यं परा गति ।
ब्रह्मचर्यं परा ऋद्धि, ब्रह्मचर्यं परा नति ॥१२॥

ब्रह्मचर्यं परो योग, ब्रह्मचर्यं परो दम ।
ब्रह्मचर्यं परो भोग, ब्रह्मचर्यं पर शम ॥१३॥

ब्रह्मचर्य पर शौचम्, ब्रह्मचर्यं पर प्रभु ।
ब्रह्मचर्यं पर सत्वम्, ब्रह्मचर्यं पर सुहृत् ॥१४॥

ब्रह्मचर्यं पर स्वास्थ्यम्, ब्रह्मचर्यं पर पदम् ।
ब्रह्मचर्यं पर क्षेमम्, ब्रह्मचर्यं पर वरम् ॥१५॥

ब्रह्मचर्यं पर यशम्, ब्रह्मचर्यं पर शिवम् ।
ब्रह्मचर्यं पर दुर्गम्, ब्रह्मचर्यं पर धनम् ॥१६॥

ब्रह्मचर्यं पर सारम्, ब्रह्मचर्यं परा शुचि ।
ब्रह्मचर्यं पर साम्यम्, ब्रह्मचर्यं परा रुचि ॥१७॥

ब्रह्मचर्यं पर श्रेयम्, ब्रह्मचर्यं परो रस ।
ब्रह्मचर्यं पर साध्यम्, ब्रह्मचर्यं पर वच ॥१८॥

ब्रह्मचर्यं पर स्थानम्, ब्रह्मचर्यं परा धृति ।
ब्रह्मचर्यं पर मानम्, ब्रह्मचर्यं परा रति ॥१९॥

ब्रह्मचर्यं पर वीर्यम्, ब्रह्मचर्यं पर रह ।
ब्रह्मचर्यं पर वित्तम्, ब्रह्मचर्यं पर यश ॥२०॥

आर्या

आचरति ब्रह्मचर्य मनसा वचसा यो नर सततम् ।
भजत युग्म स्वास्थ्य महज्ज्ञानदात्मर पद नियमात् ॥२१॥

॥ इति श्री ब्रह्मचर्यविंशतिका ॥

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावा, प्रापुर्लभन्त अचलं सहजं सुशमं ।
एकस्वरूपममलं परिणाममूलं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमन्त्रं, ॐ मूर्ति मूर्तिरहितं स्पृशति स्वतन्त्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलयं विपदो विकल्पा, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरं, शुद्धं चिदस्मि परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योतिः परं स्वरसमकर्तृ न भोक्तृ गुप्तं, ज्ञानिस्ववेद्यमचलं स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियतं सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यं, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितानं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंशं, भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनन्दशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमिं, नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधिः ।
यद्दर्शनात्प्रवहति प्रभुमोक्षमार्गः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्वं स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं यः ।
सहजानन्दसुवन्द्यं स्वभावमनुपर्ययं याति ॥९॥